



# आईने-अकबरी

खंड १, अंक ४

Vol. 1, fasciculus 4

भाषान्तरकार तथा सम्पादक

रामलाल पाण्डेय

1 Every fasciculus of the Hindi-translation of *Ain-i-Akbari*, covering 64 pages of royal-octavo plus illustrations, is published in two editions—royal and popular—on 40 and 28 lbs paper respectively. Four such fasciculi make one volume (*khand*).

2 Those paying Rs 100/- or more in advance will get each fasciculus of the *Ain* post-free as and when it is issued. And the names of such donors will be published.

3. Rates of subscription will be as follows —

(i) For Patrons as in para 2 above—Rs. 100/-.

(ii) For permanent subscribers per volume —

	By M O	Per V P P
Royal ed	Rs. 7/-	Rs 7/4/-
Popular ed	Rs 4/8/-	Rs 4/12/-.

(iii) For purchasers of each fasciculus separately —

	By M O	Per V P P.
Royal ed	Rs 2/-	Rs 2/5/-
Popular ed	Rs 1/4/-	Rs 1/9/-.

Manager,

VIDYA-MANDIR,

CAWNPORE

प्रकाशक—

विद्या-मन्दिर, कानपुर

## वीर सेवा मन्दिर दिल्ली



क्रम मर्यादा

कानन

स्वयं

## कों से

के प्राहको का पहले खंड का मूल्य  
15 ( साधारण ) दोनों संस्करणों के  
खंड का मूल्य पेशगी भेजने की कृपा  
० पी० से भेजने की पत्र-द्वारा सूचना  
हू नहीं भेजे जायेंगे ।

मैनेजर

## खर्च की सम्मति

ज्ञान असून तीं जुनीं मालीं आहेत.  
प्रकबराचीं चरित्रं लिहिलीं गेलीं आहेत,

पण आईने-अकबरीचें नवें यथाथे भाषांतर कोणत्याहि देशी भाषेत अद्यापि झालेलें नव्हतें. ही उणीव कानपूरचे पं० रामलाल पाण्डेय यांनीं भरून काढण्याचें योजिलें आहे. आईने-अकबरी हा ग्रंथ मुलांत फार मोठा असून त्याची भाषा बरीच क्लिष्ट समजली जाते. पण पाण्डेय यांनीं गेलीं दहा वर्षां तां ग्रंथ समजून घेऊन सरल हिंदी भाषेत उतरविल्याचा यत्न चालविला होता. पाण्डेयजा स्वतः पशियन भाषेचे उत्तम विद्वान असून अबुल फाजलच्या पारिभाषिक अथवा समकालीन शब्दांचें लोकांस योग्य विनचूक ज्ञान होण्यासाठीं शेंकडा इतर ऐतिहासिक व प्राचीन ग्रंथ चालून त्यांनीं आपल्या भाषांतराला टिपी जोडल्या आहेत. गेल्या ५० वर्षांमध्ये मोगल बादशाहांच्या कारकीर्दीचें जें संशोधन झालें तें पाण्डेयनी आपल्या भाषांत-सस जोडल्यानें एक प्रकारें त्यांचा ग्रंथ आजतागायत संपूर्ण होईल हें निरालें जाणावयास नको. एकदम समग्र ग्रंथ छापणें शक्य न झाल्यामुलें रॉयल आका-राच्या ६४ पानांचे अंक दर तिमाहीला प्रसिद्ध करून ग्रंथ पुरा करावा, अशी पाण्डेयजीची योजना आहे. लोकाश्रय भरपूर मिळाल्यास ग्रंथ जलदीनें प्रकाशित होईल. पाण्डेयजींच्या भाषान्तराचा पुरस्कार सर तेजबहादुर सप्रू, डॉ. राधाकुमुद मुकुर्जी, सर रास मसूद, डॉ. रामप्रसाद त्रिपाठी, सर अबदुर्रहीम, डॉ. वेणी-प्रसाद, मौ. हसरत मोहानी, श्री सुन्दरलाल, डॉ. ईसरीप्रसाद अशा निरनिराळ्या विद्यापीठांतील नामांकित इतिहासकार्यांनीं व पुढाऱ्यांनीं आणि विद्वानांनीं केला असल्यामुलें पाण्डेयजींच्या कामाची योग्यता व महती वेगळी येथें नमूद करण्याची गरज नाही. निव्वल इतिहासज्ञानाकरतांच नव्हे तर हिंदी राजकीय भवितव्याच्या दृष्टीनें हिंदु-मुसलमानांच्या सहकारी साहचर्याचें ज्ञान होण्याकरितां अशा पुस्तकाचें बाबत अवश्य आहे.

जो वस्तुएँ एक ही समय में आजाती हैं, वे मूल्यानुसार क्रमबद्ध की जाती हैं। अनुभवी कर्मचारी सदा पदार्थों की दूरे मालूम करते रहते हैं, और वे नए और पुराने भावों पर विचार करते हैं। थोड़े ही समय में उनके निरखे सब लोग जान गये और वस्त्रों के मूल्य घट गये। जैसे गयास नक़्शबन्द का दस्तबाफ़, जो पहले

वे सिलाई जानते ही न थे, परन्तु कितने ही ऐतिहासिक इसे नहीं मानते, क्योंकि वेदों में सिलाने के साधनों का उल्लेख हुआ है। ऋग्वेद में सुई का नाम 'सूची' (सीव्यत्वप सूच्याच्छिद्यमानया—ऋ० मण्डल २, सूक्त ३२, मंत्र ४) और कैची का नाम 'भुरिजी' (ऋ० ८, १६) मिलता है। सुगुप्त सूत्रस्थान अ० २२ में बारीक डोरे से सोने (सीव्येत सूच्येण सूत्रेण) का आदेश है। वैदिक काल में रेशमी चोगा 'ताप्य' (वस्मान्ताप्यं चर—अथर्व, कांड १८, अनुवाक ४, मंत्र ३१) और ऊनी कुर्ता 'शामूल' (जैमिनीय उपनिषद्) कहलाता था। एक सिला हुआ वस्त्र 'द्रापि' (ऋ० १, २२, १३) था, सायण के विचारानुसार वह युद्ध के समय पहना जाता था। मध्यकाल में महिलाएँ प्रायः अन्तरीय अर्थात् साडी पहनती थीं, और उसका आधा हिस्सा ओढ़ती थीं। बाहर जाते समय उत्तरीय या डुपट्टा भी डालती थीं। नाचने के समय स्त्रियाँ 'पेशस' (ऋ० १, ६, ३,) नामक ज़री के काम का लैहगा जैसा वस्त्र पहनती थीं। इस कथन की पुष्टि वर्तमान काल में पुराने समय के पाये गये चित्रों से भी होती है। मथुरा के ककाली टीले के पास की शिला पर एक रानी और उसकी दासियों के चित्र हैं। उनमें रानी लैहगा पहने हुये और ऊपर साडी डाले हुये हैं (Smith, Muttra Antiquities, plate XIV)। इसी प्रकार दो जैन आबक और तीन आबिकाओं की मूर्तियों

के चित्र हैं, इनमें तीनों आबिकायें लैहगे धारण किये हुये हैं (ibid plate 85)। अजयपुर गुफा के एक चित्र में एक स्त्री बधे की गोद में लिए हुए है वह बहुत ही सुन्दर



छूट का सिला हुआ शलूका पहने हुये हैं। वह शलूका आधी बाँह का कमर के नीचे तक है (Smith Oxford Students' History of India P. 159, 1919)।

उल्लिखित चित्र हर्ष के पहले के हैं। इसमें सिद्ध है कि भारतीय सिलाई बहुत प्राचीन काल से जानते थे और उसका उपयोग भी आवश्यकतानुसार करते थे, किन्तु उसका प्रचार ऐसा नहीं था, जैसा कि आजकल है।

१—“तज्ञकिरण ताहर नसीराबादी” के अनुसार गयास नक़्शबन्द का जन्म यज़्द (फ़ारस का एक प्रान्त है)। यज़्द में रेशम की उत्पत्ति तथा बुनाई का काम उत्तम होता है। भारतवर्ष के साथ उमका

सौ मोहर को मोल लिया जाता था, अब पचास मोहर को मिलता है। अनेक जिन्सों का मूल्य तीस के स्थान में दस और चालीस के बजाय भी दस ही रह गया है। सम्राट् की हार्दिक उदारता के कारण प्रत्येक समुदाय अपनी इच्छानुसार वस्त्रों से अपने को सुसज्जित करता है और कोई रोक-टोक नहीं होती।

यह विषय बहुत विस्तृत है, अतएव बाध्य होकर, जो वस्त्र सम्राट् स्वयम् धारण करता है, उनमें से ही कुछ का हाल लिखता हूँ।

१, टकौचिया—यह हिन्दुस्तानी तर्ज का एक पर्त का जामा है। अगले समय में इसका दामन चाक ( खुला हुआ ) और तनी बाईं ओर को होती थी। पर सम्राट् ने इसको गोल दामन का बनवाया और बन्धन दाहिनी ओर को लगवाये। यह ७ गज और ८ गिरह में बनता है, ५ गिरह का बन्द होता है। सादी सिलाई की मजदूरी एक से तीन रुपए तक है। जिस टकौचिया में बेल-बूटे बनाये जाते हैं, उसकी मजदूरी एक रुपए से पौने पाँच तक होती है। उसमें एक मिस्काल रेशम भी खर्च होता है।

२, पेशवाज़—उसी प्रकार का होता है, परन्तु बन्द सामने रहता है। कभी-कभी बिना तनी का भी बनवाया जाता है।

३, दुताही—६ गज ४ गिरह का उपजा, ६ गज का अस्तर, ४ गिरह के

व्यापारिक सम्बन्ध है।) में हुआ था। उक्त पुस्तक में उसकी यहाँ तक प्रशंसा लिखी है कि “ससार में वैसा बुननेवाला पैदा ही नहीं हुआ।” इसके अतिरिक्त वह कवि भी था। एक बार वह शाह अब्बास (१५८५-१६२६ ई०) के लिए एक ज़री का बेल-बूटेदार मुशजर खरीद लाया। उस वस्त्र में वृक्षों के चित्रों के बीच में एक भालू का भी चित्र था। एक दरबारी ने उस वस्त्र की प्रशंसा करते हुए रीझ की भी तारीफ़ की। ग़ायस ने उसके व्यंग्य पर निम्नलिखित शेर कहा,—

झाजा दर ‘ज़िस’ बेश मी बीनद,  
हरकसे नक़्शे-जेश मीबीनद।

अर्थात् सरदार रीझ ही अधिक देखता है, हर मनुष्य अपनी ही आकृति देखता है।

अनेक व्यक्तियों के विचार में भालू एक अशुभ पशु है। जैसा कि ‘बहारे-अजम’ की एक कहावत से प्रकट होता है—  
“ज़िस दर कोह बूझली सेना” पहाड़ पर रीझ ही दार्शनिक बूझली सेना है, अर्थात् मुखौंधिराजों में साधारण मूर्ख ही तत्त्ववेत्ता होता है।

१—अर्थात् सैकड़ों में ६६<sup>२</sup> और ७५ तक की कमी हो गई।

२—अकबर के समय में दर्ज़ियों का गज़ कितना लंबा था, इसका स्पष्ट उल्लेख ‘आईन’ में नहीं है। कदाचित् वह आज-कल की तरह १६ गिरह का ही था। ८७ और ८६ आईनों में अन्य नापों के गज़ों का बर्णन है, किन्तु दर्ज़ी के गज़ का



अकबर

किशोर यशदास

सन् चित्र एगिडिया-आक्सिस मे सुरचित १ ।



बन्द और ६ गिरह की संजाफ लगती है । सिलाई एक से तीन रुपए तक । १ मिस्काल रेशम भी खर्च होता है ।

४, शाह-आजीदा—इसके प्रत्येक गिरह में साठ नगदे<sup>१</sup> बनाये जाते हैं, इसलिए इसको शस्त-स्वत ( पष्टि-पंक्ति ) भी कहते हैं । यह अधिकतर दो अस्तर का होता है । कुछ लोग, उसमें रुई भी डालते हैं । एक गज मुकस्सर<sup>२</sup> की सिलाई दो रुपए होती है ।

५, सोज़नी—इसमें  $\frac{1}{4}$  सेर रुई और २ दाम रेशम व्यय होता है । बखियादार सिली हुई सोज़नी की मजदूरी आठ रुपए और आजीदादार सिलाई के चार रुपए होते हैं ।

६, कलमी— $\frac{3}{4}$  सेर रुई और १ दाम रेशम खर्च होता है । मजदूरी दो रुपए ।

७, क़बा—प्रचलित भाषा में इसको जामए-पुम्बादार ( रुईदार अंगरखा ) कहते हैं । इसमें १ सेर रुई और २ मिस्काल रेशम की आवश्यकता होती है । मजदूरी  $\frac{1}{4}$  रु० से १ रु० तक ।

८, गदर—यह एक अंगरखा है कबा से अधिक लंबा-चौड़ा और ज्यादा रुई वाला । हिन्दुस्तान में यह पोस्तीन<sup>३</sup> का काम देता है । ७ गज उपल्ला, ६ गज

नहीं । जो गज इलाही गज के नाम से अकबर ने उत्तर भारत में जारी किया था वह  $30\frac{3}{4}$  इंच लम्बा था । दक्षिणी किनारे के व्यापारिक केन्द्रों में इलाही गज इस्तेमाल नहीं किया जाता था । वहाँ कोवाड का चलन था, किन्तु उसकी भी लंबाई में अन्तर था । वहाँ सूती कपड़ों की नाप वाला गज लगभग २६ इंच का था, और ऊनी कपड़ों की नाप वाला लगभग ३२ इंच का ( Blochmann's trans, P 88, note 3, and Moreland's 'India At the death of Akbar,' P 54 ) ।

१—नगन्दा बखिया, आजीदा जामा और सोज़नी को कहते हैं (सैयद अहमद द्वारा सम्पादित फ़ारसी आइने-अकबरी,

पृ० ६६, नोट नं० २, १८६३ ई०) । किन्तु सोज़नी एक वस्त्र भी है, जिसमें बखिया और आजीदा दोनों प्रकार की सिलाइयाँ होती हैं ( देखिये वस्त्र नं० ५ ) ।

२—मुकस्सर का अर्थ घन है । किसी संख्या का उसी में दो बार गुणित होकर जो गुणनफल लब्ध होता है, उसे मुकस्सर कहते हैं, जैसे  $3 \times 3 \times 3 = 27$  । लम्बाई चौड़ाई और मोटाई अथवा ऊँचाई या गहराई के गुणनफल को भी घन कहते हैं । परन्तु यहाँ पर कदाचित् मुकस्सर से अभिप्राय एक वर्ग गज का है ।

३—समूर आदि गरम और मुलायम रोएं वाले पशुओं की खाल की बनी हुई पोशाक, जिसे तुर्किस्तान और मध्य एशिया



भितल्ला, ४ गिरह तनी, ६ गिरह मंजाफ, २ मेर रुई और ३ मिस्काल रेशम लगता है। मजदूरी आधे रुपए से डेढ़ रुपए तक।

९, फर्जी—बन्तनी की, सामना खुला रहता है। कुछ लोग इसमें घुंडी भी लगाते हैं। यह बहुधा जामे के ऊपर पहनी जाती है। इसमें अबरा (उपल्ला) ५ गज १२ गिरह, अस्तर ५ गज ५ गिरह, सजाफ १४ गिरह, १ सर रुई और १ मिस्काल रेशम भी खर्च होता है। मजदूरी  $\frac{1}{2}$  रुपए से १ रुपए तक।

१०, फर्गुल यह यापजी' से मिलता जुलता है, परन्तु उसमें अधिक मुखदायक और शोभायमान है। यह यूरोप से लाया गया था, पर आज के दिन छोटे-बड़े सभी पहनते और अपनी शान बढ़ाते हैं। लोग इसे तरह-तरह की काट-छाँट का बनाते हैं। इसमें उपल्ला ६ गज ६ गिरह, इतना ही अस्तर, रेशम ६ मिस्काल और १ सर रुई इस्तेमाल करते हैं। इसे एक तह का और दो तह का अर्थात् दोनों प्रकार का बनाते हैं। मजदूरी  $\frac{1}{2}$  रु० से २ रु० तक।

११, चक्रमन—यह बानान, ऊनी कपड़े यथवा मोमजामे का मिलाया जाता है। सम्राट ने इसे दारई मोमजामे का बनवाया है। यह बहुत ही हलका और मुहावना है। वर्षा का पानी उसमें नहीं छनता। यह ६ गज से तैयार होता है। ५ गिरह की तनी लगती है और २ मिस्काल रेशम खर्च होता है। बानाती चक्रमन की बनवाई २ रु०, ऊनी की  $\frac{1}{2}$  रु० और मोमजामे की  $\frac{1}{2}$  रु० होती है।

१२, शलवार—तरह-तरह के कपड़े का मिलाते हैं। एक पत का, दो पत का, और रुईदार भी तैयार कराया जाता है। इसमें ३ गज ११ गिरह कपड़ा

तथा अन्य कई देशों के लोग पहनते हैं। इसमें रंगटे अन्तर की ओर रहते हैं।

१—काट जा कि वर्षा ऋतु में इस्तेमाल किया जाता है। (Hutta Chigtau Dictionary)

२—“फर्गुल की व्युत्पत्ति मुझे याद नहीं है। अनेक शब्दों के नाम जो कि भारतवर्ष में प्रचलित हैं, पुर्तगाली हैं। जैसे भारतवर्ष, स्त्रीलण्डरी, गिर्जा (पुर्तगाली

इग्रीजा), कांची या गोभी (पुर्तगाली कुओवे), चाची या चाभी (पुर्तगाली चावे)”—(Blochmann's trans. P. 89, note 3)। इसी प्रकार अनेक मृत्ती वस्त्रों के अंगरेजी नामों की उत्पत्ति हिन्दुस्तानी शब्दों से हुई है—जैसे, ‘कालिको’ की कालीकट से, ‘क्रेमादजी’ की क्रीम (कीड़ा) से, ‘चिन्दुज’ की छोट से, ‘बैरडना’ की बैधना से और ‘शाल’ की माल से (Ency. Bri., Vol. 23 Ed. 14)।

लगता है। नेफा ६ गिरह, अस्तर ३ गज ५ गिरह, १ $\frac{1}{2}$  मिस्काल रेशम, और १ सेंर रुई दरकार होती है। १ रु० से १ $\frac{1}{2}$  रु० तक मजदूरी होती है।

इन पोशाकों में स हर एक अनेक प्रकार की होती है। चीरा ( पगड़ी ), फौता ( पटुका ) और दुपट्टे की कथा वर्णन नहीं हो सकती। उन बहुमूल्य परिवाना का वृत्तान्त—जो उत्सवों में सम्राट् स्वयम् पहिन्ता तथा वर्तमान समय के अमीरों को प्रदान कर उच्च पदस्थ बनाता है—कथन में नहीं आ सकता। खाने ( राजकीय वस्त्रालय ) के लिए प्रत्येक ऋतु में सब प्रकार के एक सहस्र पहनावे पूर्णतया तैयार कराये जाते हैं और एक सौ बीस वस्त्र बाग़दू पुलिदां में सदा तत्पर रखे जाते हैं। सामाजिक वस्तुओं में विरक्ति रखने के कारण सम्राट् ऊनी वस्त्रों से बहुत प्रेम करता और पहिन्ता भी हैं विशेषतः शाल। सम्राट् के प्रताप की यह विचित्रता है कि उसके वस्त्र नाटे और लम्बे अर्थात् हर प्रकार के डोल वाले मनुष्य के शरीर पर ठीक आजाते हैं। इसको देखकर छोटे-बड़े आश्चर्य करते हैं।

सम्राट् ने अनेक वस्त्रों के दूसरे नाम रखे हैं, और इस प्रकार कानों को नवीन और मनोरंजक ध्वनियों में परिवर्तित किया है। जामा का नाम **सर्वगती** अर्थात् सम्पूर्ण शरीर में होने वाला, रक्खा, इजार ( सुथना ) का **यार-पीराहन** ( अगरग्य का सार्था ), नीमटना ( शलूका ) का **तनज़ेब** ( शरीर-शोभा ); फाता ( पटुका ) का **पनगत**, बुकी का **चित्र-गुपित** ( चित्र-गुप्त ), कुलाह ( टापी ) का **सीससोभा** ( शीश-शोभा ), मृण्वाफ ( ऊनी फीता या पट्टी ) का **केशगहन** ( केश गहन ), पटुका का **कटि-जेब** ( कटि-शोभा ), शाल का **परमनर्म**; फद का, जो कि ऊनी वस्त्र का एक भेद है, **परमगर्म**; कपूर धूर का, जो कि तिब्बत में बुना

१—अबुलफ़ज़ल ने अनेक स्थलों प्राच्य देशों में उन सूत से अधिक शुद्ध पर सम्राट् को विरक्त सिद्ध किया है और उसमें वे गुण बतलाये हैं, जो उच्च कोटि के सक्रियों में पाये जाते हैं। सूफी का गन्धार्थ महात्मा और सूफी स्नान के प्रतिरिक्त प्रायः हर समय तथा पूजन और भोजन आदि में समर्थ गुरुस्थ भी ऊनी या रेशमी वस्त्र धारण करते हैं। आर्टन के अनुसार अकबर भी एक उदारागय और विशेषतः सूफी और किमी का विचार न आने दे तथा अपने 'विचारों' का मानने वाला था इसी लिए चित्त को भल विवेकादि में शुद्ध रखे। ऊनी वस्त्रों से उसकी अधिक अभिरुचि थी।

जाता है और बढ़िया होता है, कपूरनूर; और पायअफराज<sup>१</sup> का नाम चरनधरन रक्खा । इसी प्रकार उसने और बहुत से वस्त्रों को श्रेष्ठ नामों से प्रसिद्ध किया ।

## आईन ३२ ।

### शाल ।

कार्यकुशल सम्राट् ने इस विभाग की उन्नति चार प्रकार से की है । वह निम्नलिखित वस्तुओं में दृष्टिगोचर होती है<sup>२</sup> —

प्रथम, लूँस शाल—जो एक जंतु की ऊँत से बनाया जाता है, वह पशु इसी नाम का है । उसका प्राकृतिक रंग काला, सफेद और लाल बनलाया जाता है, परन्तु अधिकतर काले रंग का होता है । किसी-किसी का रंग शुद्ध सफेद भी होता है । ये शाल हलकेपन, गरमी और मुलायमियत में अद्वितीय होते हैं । मनुष्य उसकी सुन्दरता के कारण, दूसरे रंगों का नहीं लेते है । पर सम्राट् ने उसे कई रंगों का रंगाया है । आश्चर्य यह है कि उस पर लाल रंग नहीं चढ़ता । दूसरे, सफेद-अलूँचा—जिसका तरहदार भी कहते है । वह स्वभावतः रंगीन है । ऊँत का रंग सफेद या स्याह होता है । लोग अलूँच को तीन प्रकार का बुनते है—सफेद, काला और मिश्रित । पहले समय में ऊँत तीन चार रंगों से अधिक नहीं रंगी जाती थी, पर सम्राट् ने अनेक रंगों की तैयार कराई है । तीसरे, जरदोज़ी, कलाबतून, कशीदा, कलगा<sup>३</sup>,

१—ब्लाकमैन के मूल फ़ारसी 'आईन' तथा अंगरेज़ी अनुवाद दोनों में 'पाय-अफ़राज' पाठ है, किन्तु सैयद अहमद के फ़ारसीग्रंथ में 'पायअफ़राज' । सैयद अहमद ने हाशिये पर पायअफ़राज का अर्थ पापोश या कफ़्श अर्थात् जूती लिखा है (ब्लाकमैन, फ़ारसी एडिशन, पृ० १०३, Trans P 90 सैयद अहमद, फ़ारसी एडि० पृ० ६७) । पायअफ़राज शुद्ध है, (देखिये बहारे-अजम) ।

२—मूल में "शहरे-यार कार आगाह चहार गूना बरसाख्त" पाठ है, जिसका अर्थ, "कार्यकुशल सम्राट् ने चार भेद किये या चार प्रकार का बनाया", होता है । भाव के स्पष्टीकरण के लिए उपर्युक्त वाक्य की रचना की गई है ।

३—कलगाई—मुरगेशी अर्थात् रेशमी धागों और सोने के तारों से मिलाकर बनाया हुआ वस्त्र ।

बाँधन<sup>१</sup>, छींट, अल्ला<sup>२</sup> और पर्जदार<sup>३</sup> भी सम्राट् ही के हृदय के चमत्कार हैं, अर्थात् उसी के आविष्कृत हैं । चौथे, उसने कम अर्ज के कपड़ों को चौड़ा करवाया और उनको अंगरखों के योग्य बनवाया है ।

दिन, महीना, साल तथा मूल्य, रंग एवं तौल के विचार से शालों की श्रेणियाँ नियत करके क्रमानुसार लगाते हैं । प्रचलित भाषा में इस विभाग को मिस्ल<sup>४</sup> कहते हैं । मुशरिफ ( मांहरिंर ), श्रेणी का ध्यान रखकर, हर वस्त्र का दर्जा कपड़े के एक टुकड़े पर लिखकर उनके कानों में बाँध देते हैं । जो वस्तुएँ एक ही प्रकार की, फर्बर्दीन महीने में उरमुज्द के दिन ( पहले दिन ) कारखाने में आती हैं, और जिनके मूल्य में अधिकता होती है, सर्व प्रथम श्रेणी में रक्खी जाती है । यदि आई हुई चीजें मूल्य में समान होती हैं, तो उनकी श्रेणी की उत्कृष्टता और निकृष्टता दिनों<sup>५</sup> के आधार पर नियत की जाती है । यदि जिसो के आने के दिनों में समता होती है, तो ज्यादा हलके पदार्थ को उच्च पद दिया जाता है । अगर वे चीजें तौल में बराबर होती हैं, तो रंग की बड़ाई मानी जाती है । रंगों का क्रम इस प्रकार है —

तूस, सफ़ेद, अल्ला, लाल<sup>६</sup>, ज़री<sup>७</sup> नारजी, बिरजी<sup>८</sup>, क़िरमिज़ी<sup>९</sup>,

१—अनेक स्थानों पर बांध कर हर स्थान को भिन्न-भिन्न रंगों से रंगा हुआ वस्त्र ।

२—अल्ला—यह शब्द तुर्की भाषा का है । जो माल, जिस और दाम दूसरे का देश लूटने पर प्राप्त हो, उसे अल्ला कहते हैं । रेशमी अल्लवान को भी अल्ला कहते हैं ।

३—पर्जदार—वे कपड़े जिनके ऊपर घने रोंगटे होते हैं ।

४—मिस्ल का अर्थ समान, तुल्य और बराबर है । मिस्ल उसे भी कहते हैं, जो सब विशेषणों में समान हो, किन्तु उदाहरणों के लिए विशेषणों की सर्वाङ्गीण समता अनिवार्य नहीं है । किसी मुक़दमे या विषय से सम्बन्ध रखने वाले सब कागज़-पत्रों का समूह भी मिस्ल कहलाता है । किसी पुस्तक के छपे हुए फ़ार्मों<sup>१०</sup> को भी, जो कि मिलाई के लिए क्रम से लगाकर रखे गये हों,

मिस्ल कहते हैं । यहाँ पर मिस्ल से आशय क्रम या क्रम से लगाने वाला विभाग है ।

५—अकबर सनातनधर्मियों तथा पासियों के समान दिनों के शुभ और अशुभ होने पर विश्वास रखता था ।

६—लाल मणि के रंग के समान ।

७—सुनहला ।

८—पीतल का रंग ।

९—संस्कृत कृमिज शब्द से अरबी क़िर-मिज़ और क़िरमिज़ी शब्द बना है । कृमिज या क़िरमिज़ी क़िरमिज़ी का नाम है, जो क़िरि-मदाना नामक कीड़े से बनती है । ये कीड़े थूहर पर फैलते हैं । पाव भर में लगभग ३५००० कीड़े चढ़ते हैं । उन्हें सुखाकर पीस ढालते हैं । वह बुकनी क़िरमिज़ी कहलाती है ।

काही<sup>१</sup>, गुलेपुंजई<sup>२</sup>, सदली<sup>३</sup>, धादामी, अरगवानी<sup>४</sup>, उन्नाजी<sup>५</sup>, तोतकी<sup>६</sup>, असली<sup>७</sup>, सौमनी<sup>८</sup>, सजनी<sup>९</sup>, गुले-कासनी<sup>१०</sup>, सेवकी<sup>११</sup>, अलफ़ी<sup>१२</sup>, फिस्तकी<sup>१३</sup>, पुरगुन<sup>१४</sup>, गुलखारवरन<sup>१५</sup>, भोजपत्र, गुलाबी, आसमानी, कलगी<sup>१६</sup>, आबी<sup>१७</sup>, जैतूनी<sup>१८</sup>, जिगरी<sup>१९</sup>, ज़मुरदी<sup>२०</sup>, चीनी<sup>२१</sup>, वनफगई<sup>२२</sup>, चेहरई<sup>२३</sup>, अम्बीहई<sup>२४</sup>, मुश्की<sup>२५</sup>, फ़ास्तई<sup>२६</sup>। एक दिन की व्यवस्था से साल भर के प्रबन्ध का अनुमान लगाया जासकता है<sup>२७</sup>।

पहले समय में लोग शांतों का बंधा कश्मीर<sup>२८</sup> में समय-समय पर लाते

१—हरी घास के रंग के समान, कालापन लिये लिये हरा रंग।

२—करामा।

३—हलका पीला रंग।

४—गहरा लाल रंग।

५—कालापन लिए हुए लाल रंग।

६—सुआपरमी रंग।

७—शब्द जैसा रंग।

८—लाली लिए नीला।

९—रतनमजना के फूलों के रंग के सदृश।

१०—कायनी के फूल के रंग के समान।

११—वेध के रंग के समान।

१२—घाँटे की घास के रंग के तुल्य साधारण हरा।

१३—पिस्तई।

१४, १५—इन दोनों शब्दों के पाठ शुद्ध नहीं मालूम होते। अन्य मूल प्रतियाँ में व गुल, गुलखार, निर्जवरन गुलनारजी, परन, गुलखार, वरन पाठ है। ये शब्द काशा से टूटे नहीं मिलते।

१६—सुरगेश के फूल के रंग के समान।

१७—पानी के रंग के सदृश।

१८—पीलापन लिए हुए लाल रंग।

१९—कलजे के रंग के सदृश।

२०—नीलापन लिये लिये हरा रंग।

२१—चीनी मिट्टी के समान नीलापन लिये हुए रंग।

२२—देगनी नीला रंग।

२३—रतन हलका गुलाबी।

२४—ग्राम के रंग के समान।

२५—करहरी के रंग के समान।

२६—पट्टुनी के रंग के समान।

२७—'य अत्र हाल थक रोज अन्दाज़ण साल तबों पर फिरफ्त'—इस वाक्य का अनुवाद 'लाक़्मैन के अंग्रेजी भाषान्तर में नहीं है' (Blochmann's Gran P 92, आइन, २० १०४)।

२८—ऊना वस्त्र पुराने साधनों द्वारा विशेषतः कश्मीर और वस्त्र मुजफ्फरनगर में बुने जाते हैं। मुजफ्फरनगर के बंबल माट होते हैं, और सर्व-साधारण में उनका चलन है। परन्तु कश्मीर में ऊनी माल प्रायः उच्च कोटि का तैयार होता है। वह विदेशी माल में ख़ास तज़क़र लेता है। कश्मीर के दुशाले पुराने समय में प्रसिद्ध है। उनके उत्कृष्ट नमूने आज भी यूरोप, अमेरिका तथा अन्य देशों में और भारतवर्ष के राजा महाराजों के सप्रहालयों में सुरक्षित हैं। वे इतने सुन्दर हैं कि स्काटलैण्ड तथा अन्य विदेशों के नकली वस्त्रों में एक ज़रूरी में पहचाने जाकर प्रत्यक्ष किये जा सकते हैं। वहाँ की ऊनी कालीनों के लिए अमेरिका और फ़्रांस जैसे क्रेशन-प्रिय देशों से आर्डर आते हैं।

थे और मालदार एक को चार तहे बनाकर मुहत्तो तक ओढ़ते थे परन्तु आजकल छोटे-बड़े सभी बिना परत के उन्हे कंधा पर डालते हैं। सम्राट के

उन रथानों के दलों के सम्बन्ध में विशेष बात यह है कि ये पुरानी चाल के चप्पों और करघों तथा अन्य आवश्यक मावनों द्वारा तैयार किये जाते हैं। जिस ऊन से शाल, दुशाले, शाहतूस आदि बुने जाते हैं वह तूस नामक बकरी का रेशा है। यह जन्तु कश्मीर से लेकर मध्य एशिया में अल्ताई पर्वत तक पाया जाता है। इसके शरीर पर घने और मुलायम रोयों की बड़ी मोटी तह होती है, जिसकी भीतरी ऊन की कश्मीरी लोग तूस कहते हैं। ऊपर का ऊन मोटा होता है, उसमें पट्ट आदि बुने जाने और रस्सियां बनाई जाती हैं। किन्तु अन्दर के मुलायम ऊन से शाल या तूस बुने जाते हैं। इस ऊन पर वहाँ के जल-वायु का भी असर पड़ता है, जिसके कारण वह अधिक मुलायम, अनेक रंग वाला, गर्म और नफीस होता है। कश्मीर में भी बढ़िया ऊन यारकन्द का होता है, और लद्दाख होकर कश्मीर आता है और परम कहलाता है। कश्मीरी दूकानदार इसे मोटागरी से खरीद कर कातनेवाली स्त्रियों को बेच देते हैं। यह परम रुई के सदृश मुलायम होता और धुनकी से नहीं धुनका जाता, वरन् महीन और नम चावल के आटे की पुट देकर कधी से साफ किया जाता है। फिर २२-२२ इंच लम्बे ३५ धागे फिरकी से लपेट कर ताने और बाने के रूप में दूकानदारों को बेचे जाते हैं। ऐसे दूकानदार श्रीनगर के प्रत्येक मुहत्ते में हैं। हम धधे में स्त्री-पुरुष दोनों लगे रहते हैं। यह धधा कश्मीर-निवासियों के लिये वैसा ही है, जैसा शेष भारतीयों के लिए कृषि का उद्यम।

दुशालो या अन्य उत्तम वस्त्रों के तैयार करने के लिए चतुर्गुण-सम्पन्न शिल्पकारों की आवश्यकता होती है — एक खाका या ढाँचा बनानेवाला, दूसरा रंग देनेवाला, तीसरा बुनाई का पबन्ध-कर्ता, चौथा स्वयम् बुननेवाला। कश्मीरी शाल के बुनने में लगभग डेढ़ माल खर्च होता है। इन वस्त्रों की प्रायः पट्टियाँ बुनी जाती हैं, फिर वे इतनी कुशलता से जाड़ी जाती हैं कि जोड़ थिलकुल ही नही दिखाई पड़ता। यह बात किसी भी दूसरे देश में देखने में नहीं आती। स्त्रियाँ उन पर चित्ताकर्षक बेल-बूटे तैयार करती हैं। शाल का ताना बहुधा रेशम का होता है। बढ़िया बुनाई और सुई के सुन्दर काम के कारण शाल बहुत टिकाऊ और बड़ा चित्ताकर्षक होता है। पचास-साठ वर्ष के उपयोग के बाद भी वह नया सरीखा ही मालूम होता है। शाल और साड़ी दोनों पर इतना उत्तम पुष्टता काम होता है कि कभी-कभी पैरिस का काम फीका जचता है। आजकल भी ऐसे धान बुने जाते हैं जिनकी चौड़ाई ६३ इंच होता, रेशम से अधिक मुलायम होते और अंगूठी के छेद से निकल जाते हैं। खुदरग, सफेद व अलबान, ताफता, तूस, शाहतूस, शाल और उच्चकोटि के कोट का कपड़ा परम या तूस में तैयार होता है। सफेद अलबान १२ गज लंबा ५० इंच चौड़ा, और खुदरग अलबान तथा ताफता ७ गज लंबा ५० इंच चौड़ा होता है। तूस भुरा या तदःकू के रंग का होता है। इसका ताना बड़े डुपे पश्म का होता है, और इकहरे बाने में सर्व श्रेष्ठ क्रिम के तूस का मिश्रण रहता

आविष्कारा मे एक यह भी ईजाद है कि वह दोहरे शाल को, जो देखने मे बड़ा भला मालूम होता है, मिलाकर ओढ़ता है ।

हैं, जिसके कारण तुस और चीज़ों से अधिक मुलायम होता है । शाहतुस खालिस तूम से बनाया जाता है । ताना-बाना दोनों बटे होने के कारण दो सौ से पाच सौ रुपए तक बिकता है । इसका ७ गज का लबा धान तोल मे केवल तीन पाव होता है । परम का बना हुआ कोट आदि का कपड़ा बारीकी, उष्णता और दृढ़ता से विदेशी कपड़ों से कम नहीं होता ।

पट्ट, र्चीड और कम्बल तथा लोई मोटी ऊन से बनते हैं । कश्मीरी कारीगर पुरानी लोइयों को रफू करके और मलीदा मिलाकर उनको नए कोटों के काम का बना देते हैं । आजकल कश्मीरी पट्टियों के कोट, प्रायः पुरानी और कभी-कभी नई लोइयों से बनाये हुये पट्टुओं से ही, बनाये जाते हैं । नए या पुराने वस्त्र को फुलाकर और धुलाकर कश्मीरी साबुन लगाने, फिर उसे कठोता-नुमा बर्तन मे खूब सौदने है । ऊन जितना ही अधिक सौदा जाता उतना ही अधिक मोटा होता जाता है जैसे, १४ इंच वाले अर्ज के कपड़े को ४० इंच चौड़ा बनाने मे ६ घंटे सौदना पड़ता है । अधिक चमकदार और मुलायम पट्ट पुरानी लोइयों का ही बनता है । कश्मीरी आदि वस्त्र विदेशी होने पर भी कश्मीर के नाम से बिकते हैं ।

इसके अनिरिक्त भारतवर्ष के देहातों मे भी मोटी जाति के कम्बल बनाये जाते हैं । काशी आदि शहरों मे कालीन का काम अच्छा होता है ।

बम्बई, कलकत्ता, कानपुर, अहमदाबाद आदि नगरों में बुनाई के बहुत से

कारखाने हैं, जिनमें मशीनों के द्वारा सूती वस्त्र खास तौर से तैयार होते हैं । कानपुर और धारीवाल आदि में ऊनी वस्त्र बुनने के बड़े-बड़े कारखाने हैं । उनमें भी उत्तम वस्त्र तैयार होते हैं । विदेशों मे भी आवश्यकतानुसार वस्त्र आते हैं ।

भारतवर्ष में रेशम के वस्त्रों का उपयोग बहुत पुराने समय से होता आया है । टमर, मूगा और इडी जाति के रेशम के कीड़े तो यहाँ मुहत्तों से हैं, किन्तु कुछ लोगों का मत है कि शहतूत पर परवरिश पाने वाला कीड़ा कदाचित् पुराने समय का नहीं है । वह ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा १७वीं शताब्दी मे लाया गया और उन्नत हुआ । कीड़े पिल्लू कहलाते हैं और स्थान विशेषों के नाम मे प्रसिद्ध हैं, जैसे,— विलायती, मदरासी, कनाडी, चीनी, अराकानी, और आसामी इत्यादि । इनमें चीनी, बलू और बड़े पिल्लू का रेशम सर्वोत्तम होता है । ये कीड़े तितली की जाति के होते हैं । जब अंडा फूटता है, तो कीड़ा रंगता है और बड़े पिल्लू के आकार का होता है । शहतूत की पत्तियों का वह बड़े चाव से खाता है । बड़ा होने पर पिल्लू कोश बनाकर उसके अन्दर घुमा रहता है, उस समय वह कोया कहलाता है । कोश के भीतर ही भीतर वह रेशम नामक तन्तु निकालता है । जब अवधि समाप्त हो जाती है, तो वह कोश काट कर उड़ जाता है । इस कारण पालनेवाले उसके कोश से निकलने के पहले कोयों को गर्म पानी में डालकर कीड़े को मार डालते हैं और ऊपर का रेशम निकाल लेते हैं । उम्मी से अनेक प्रकार के

सम्राट् के प्रोत्साहन देने से कश्मीर में शाल-बुनाई के उद्योग ने बहुत उन्नति प्राप्त की है। लाहौर में भी इसके एक हजार में ज्यादा कारखाने हैं। वहाँ के तन्तुबाय, रेशमी ताने और ऊनी बाने से शाल के समान एक वस्त्र तैयार करते हैं, जिसे मायाँ कहते हैं। इन दोनों से चीरा और पटुका आदि तैयार होते हैं।

लोगों की अधिक जानकारी के लिए इस विभाग का कुछ हाल निम्नस्थ तालिका में लिखता हूँ —

### सोने के काम किये हुये कपड़े ।

नाम		मूल्य		
जरबफ्त—मखमल	यजदी१	प्रति थान	१५ मोहर से	१५० मोहर तक
"	फिरंगी२	"	१० " "	७० " "
"	गुजराती	"	१० " "	५० " "
"	काशी३	"	१० " "	४० " "
"	हिस्वी४	"	—	—
"	लाहोरी	"	१० " "	४० " "
"	बरसा५	"	३ " "	७० " "
मुतबबक६		"	२ " "	७० " "
मीलक७		"	३ " "	७० " "
जरबफ्त—	गुजराती	"	१० " "	६० " "

वस्त्र तैयार होते हैं। आजकल बनारस की ज़री के काम की करेब प्रसिद्ध है। भागलपुर, आसाम आदि में रेशमी वस्त्र तैयार होते हैं। बहुत से विदेशों कपड़े भी भागलपुरी और काशी मिलक के नाम से बिकते हैं।

१—यज्द की बनी हुई। यज्द खुरासान प्रान्त के दक्षिण-ओर एक प्रसिद्ध नगर है।

२—यूरोप की बनी हुई।

३—काशान की बनी हुई। यह फारस में है। यहाँ से रेशमी वस्त्र और गुलाब-जल बाहर को जाते हैं।

४—हिरान की बनी हुई।

५—इस स्थान का पता नहीं चलना। कदाचित् यह पोलैण्ड का वारसा हा, या उत्तरी इटली का बेरीज़ हो। पिछले स्थान में आजकल भी रेशम का अच्छा काम होता है।

६, ७—मुतबबक और मीलक दोनों वस्त्र क्रमशः तुर्किस्तान के झुल्लज़ और नौशाद से आते थे।

८—वह रेशमी कपड़ा, जिसकी बुनाई से सोने के तारों से या कलाबन्नु देकर बेल-वृत्ते बनाये जाते हैं।



## सोने के काम किये हुये कपड़े (शेषांश) ।

नाम	मूल्य
तास <sup>१</sup>	गुजराती प्रति धान १ मोहर से ३५ मोहर तक
नाराई बाफ <sup>२</sup>	" २ " ५० "
मुक्कैश <sup>३</sup>	" १ " २० "
शिरवानी	" ६ " १७ "
मुशज्जर <sup>४</sup> फिरंगी	प्रति गज १ , ४ "
देबा <sup>५</sup> फिरंगी	" १ " ४ "
देबा यज्जदी	" १ " १ १/२ "
खारा <sup>६</sup>	— ५ रूपए मे २ "
अतलस खताई <sup>७</sup>	— —
नवार खताई	— —
खज्ज <sup>८</sup>	— —
तफमीला जो कि मक्के मे आता है	— १५ रु० मे २० रूपए तक
कुर्तावार गुजराती	— १ मोहर से २० मोहर तक
मिदील	१ " १५ "

१—तास वह ज़रदाज़ी का वस्त्र है, जिसका ताना रेशम का और बाना बादले का होता है ।

२—वह रेशमी वस्त्र जो ग्यारनट के मद्दश होता है ।

३—मुक्कैश हिन्दी के केश शब्द का अरबी रूप है । मुक्कैश मे आशय उन सोने-चादी के तारों से है, जो बारीक गुथे हुये बालों के समान विशेष-रूप से काटे गये हो । ऐसे सुनहले और स्पष्टले तारों का बना हुआ वस्त्र । तमासी ।

४—एक प्रकार का रेशमी वस्त्र, जिसमे वृत्त और पत्तियों बनी हुई हो ।

५—एक प्रकार का बारीक रेशमी रेशमी कपड़ा ।

६—खारा या खारह एक बारीक और धारीदार रेशमी वस्त्र, जिसके सम्बन्ध मे प्रसिद्ध है कि धूप में रखने से वह टुकड़े-टुकड़े हो जाता है, जैसे कतान वस्त्र चन्द्र-प्रकाश से—गयामुल्लुगान ।

७—चीनी तातार ।

८—फारसी में इसका उच्चारण खज भी होता है । एक प्रकार का रेशमी कपड़ा । मूल-ग्रन्थ मे अतलस, नवार और खज का मूल्य नहीं लिखा है ।

## सोने के काम किये हुये कपड़े (शेषांश)।

नाम	मूल्य
चीरा	$\frac{1}{2}$ मोहर से ८ मोहर तक
टुपट्टा	६ रुपए से ८ रु० तक
फौता	$\frac{1}{2}$ मोहर से १२ मोहर तक
पलंग-पोश	१ " २० "

## रेशमी कपड़े।

नाम	मूल्य
मखमल फिरगी	प्रति गज $\frac{1}{2}$ मोहर से ४ मोहर तक
" कारी	प्रति थान २ " ७ "
" यज्जी	" २ " ४ "
" मशहदी <sup>२</sup>	" २ " ४ "
" हिरवी	" $\frac{1}{2}$ " ३ "
" खाफी	" २ " ४ "
" लाहोरी	" २ " ४ "
" गुजराती	प्रति गज १ रुपए से २ रुपए तक
" कतीफा <sup>३</sup> पूर्वी	" १ " $\frac{1}{2}$ "
" ताजा बाफ	प्रति थान २ मोहर से ३० मोहर तक
" दागई बाफ	" २ " ३० "
" मुनब्रक	" १ " ३० "
" शिरवानी	" $\frac{1}{2}$ " १० "
" मीलक	" १ " ७ "
" कमखात्र विलायती <sup>४</sup>	" १ " ५ "

१—ब्लाकमैन के भाषान्तर में ६ रुपए है, किन्तु मूलग्रन्थ में 'शश' अर्थात् ६ पाठ है।

२—मशहद की बनी हुई।

३—एक प्रकार की मखमल।

४—काबुल और फारस से।

## रेशमी कपड़े ( शेषांश )।

नाम	प्रति थान	मूल्य	
तवार <sup>१</sup>	२	रुपए से	२ मोहर तक
ग्वरी	"	४ "	१० रुपए "
मुशज्जर फिरंगी	प्रति गज	२ "	१ मोहर तक
" यज्दी	प्रति थान	१ मोहर	२ "
अतलस फिरंगी	प्रति गज	२ रुपए से	१ "
" हिरवी	प्रति थान	५ "	२ "
खारा	प्रति गज	१ "	६ रुपए तक
सिहरंग <sup>२</sup>	प्रति थान	१ मोहर से	३ मोहर तक
कुतनी <sup>३</sup>	"	१ <sup>१</sup> / <sub>२</sub> रुपए से	२ "
कतान <sup>४</sup> फिरंगी	प्रति गज	१ <sup>१</sup> / <sub>२</sub> "	१ रुपए तक
ताफ्ता <sup>५</sup>	"	" "	२ "
अंबरी <sup>६</sup>	"	४ दाम से	२ "
दराई	"	१ रुपए से	२ "
सितीपुरी	प्रति थान	६ "	२ मोहर तक
कबाबद	"	६ "	२ "
टाट बन्दपुरी	"	२ "	१ <sup>१</sup> / <sub>२</sub> "
लाह	प्रति गज	१ <sup>१</sup> / <sub>२</sub> "	७ रुपए तक
मिम्मी	प्रति थान	१ मोहर से	१ मोहर तक

१—एक प्रति में नवार या नेवार पाठ है।

२—रंग बदलने वाला रेशमी वस्त्र। तिरगा।

३—ऐसा कपड़ा जिसका ताना रेशम का और बुना सूत का हो।

४—बहुत बारीक कपड़ा। अन्यधिक बारीकी के कारण चन्द्रगा के प्रकाश में

यह फट जाता है। अलसी के डठल में रेशे निकाळ कर रेशम की तरह बारीक काता और बुना जाता है—गयासुल्लुगात।

५—बटा हुआ एक प्रकार का रेशमी वस्त्र।

६—संस्कृत में अंबर वस्त्र को कहते हैं, अंबरी शब्द अंबर में ही बना है।

## रेशमी कपड़े (शेषांश)।

नाम	मूल्य				
मार	प्रति गज	१ १०	रुपय से	१ ५	रुपय तक
टसरः	प्रति थान	१ ३	"	०	"
अनलस सादी कुर्तीवार	प्रति गज	१ २	"	१	"
कपूरनूर, जो पहले कपूरधूर कहलाता था ।	"	१ ८	"	१	"
अल्चा	"	१ ५	"	०	"
तफमीला	प्रति थान	८	"	१२	"

१:—इसके कीड़े, छोटा नागपुर, मयूर-भंज, बालेश्वर, बीरभूम और मेदनीपुर आदि के जंगलों में, सागू, बहेड़ा, पियार, कुसुम और बेर हत्यादि के वृक्षों पर पलते हैं। इसका रेशम कड़ा और मोटा होता है। पालनेवाले कोश से निकले हुये कीड़े को जंगल में छाड़ आते हैं। वहाँ मादा के स्पर्श से उनकी वृद्धि होती है। मादा वृक्ष की पत्तियों पर सरसों के समान अंडे देती है, वे चोड़े होने के कारण पत्तियों में चिपक जाते हैं। दस-बारह दिन में ये सूड़ी के आकार के होकर निकल आते और पत्तियाँ चाट कर बढ़ने लगते हैं। पन्द्रह दिन में ये पूरे बढ़ कर बारह अंगुल तक लंबे होजाते हैं। ये भूरे, नीले, पीले और मटमैले अनेक रंगों के होते हैं। फिर ये

अपने मुख की लार से कोश बनाते हैं। यही लार सूख कर सूत होजाती है। बड़ा कोश साढ़े छे अंगुल तक लम्बा अंडाकार होता है। पूरा कोश बन जाने पर कीड़ा उसी के अन्दर बन्द हो जाता है। कोश कुतर कर उड़ जाने के भय से कीड़े पालने वाले उड़ जाने के पहले ही उनको लार के साथ गर्म पानी में उबाल कर मार डालते हैं। बिना उबाले हुए कीड़ों का टसर ज्यादा अच्छा होता है। एक कीड़ा तीन-चार दिन में ढाई सौ तक अंडे देता है। पालने वाले जंगल में इनको चींटियों और चिड़िया में बचाने हैं। ब्लाकमेन ने लिखा है कि आजकल टसर विशेषकर बरहामपुर और पटना में तैयार होता है।

## सूती कपड़े ।

नाम	प्रति थान	मूल्य
खासा	३ रुपए से	१५ मोहर तक
चौतार <sup>१</sup>	२ " "	६ " "
मलमल	४ रुपए	
तनमुख	४ रुपए से	५ मोहर तक
मिरीसाफ <sup>२</sup>	२ " "	५ रुपए तक
गंगाजल <sup>३</sup>	४ " "	५ मोहर तक
भैरो <sup>४</sup>	४ " "	४ " "
महन <sup>५</sup>	१ मोहर	३ " "
भोना	१ रुपए से	१ मोहर तक
अटान	२ " "	१ " "
असावली	१ मोहर से	४ " "
बाफता	१ <sup>१</sup> / <sub>२</sub> रुपए से	४ " "
महमूदी	१ मोहर से	३ " "
पचतौलिया <sup>६</sup>	१ " "	३ " "
भोला	२ " "	२ <sup>१</sup> / <sub>२</sub> " "
सालू	३ रुपए से	२ " "
डोरिया	६ " "	२ " "
बहादुरशाही	६ " "	२ " "
गर्भ सूती	१ <sup>१</sup> / <sub>२</sub> मोहर से	२ " "

१—चौतार हवेली सहारनपुर में बुना जाता था ।

२, ४—मिरीसाफ और भैरों धरन-गांव, स्वानदेश में तैयार होते थे ।

३—एक बारीक सफ़ेद कपड़ा, जिसकी पश्चिम में अब भी पगड़ी बांधी जाती है, घोड़ाघाट बंगाल में बुना जाता था ।

५—एक बढ़िया रेशमी कपड़ा । गाढ़े की जाति का एक गफ़, चिकना सूती कपड़ा, जो मगहर में अच्छा तैयार होता है ।

६—पचतौलिया का उल्लेख द्वितीय ग्रंथ में संभवदा न० ३१६ गयासुद्दीन के जीवन-चरित्र के प्रसंग में हुआ है । नूरजहाँ ने ओढ़नी के स्थान में पंचतौलिया का चलन चलाया था ।

## सूती कपड़े (शेषांश)।

नाम	प्रति थान	मूल्य
दक्खिनी शोला	१ मोहर से	२ मोहर तक
मिहङ्कुल <sup>१</sup>	२ रुपए में	२ "
मिन्दोल	१ मोहर में	२ "
सरबन्द	२ "	२ "
दुपट्टा	१ रुपए से	१ "
कतानचा	१ "	१ "
फौता (पटुका)	२ "	६ रुपए तक
गोश-पेच <sup>२</sup>	१ "	२ "
छीट	प्रति गज	२ दाम में
गजीना	१ रुपए में	१ <sup>१</sup> "
मिल्ताहटी <sup>३</sup>	२ दाम में	४ दाम तक

## ऊनी कपड़े।

नाम	प्रति गज	मूल्य
मकलान, रुमी फिर्गी, पुर्तगाली	२ <sup>१</sup> रुपए में	४ मोहर तक
" नागौरी, लाहोरी	२ "	१ "
मफ मुग्गा	एक नग	४ मोहर में १५ मोहर तक

१—मिहङ्कुल इलाहाबाद में बना जाता था।

२—गोश-पेच एक कान का जेवर भी है।

३—अकबर के समय में सूती कपड़े जिम् रुई के बनते थे, उसके रेशों की लंबाई अनुमानतः  $\frac{3}{8}$  इंच तक होती थी। किन्तु आज-कल विभिन्न देशों में वे  $\frac{3}{8}$  इंच से  $1\frac{1}{2}$  इंच तक पाये गये हैं। (१) सी आइलैण्ड-काटन (Sea Island-Cotton) के रेशे १ से  $1\frac{1}{2}$  इंच तक लंबे होते हैं, और अमेरिका में चलते हैं। (२) मिस्री रुई (Egyptian-Cotton) का रेशा  $1\frac{1}{2}$  इंच होता है १ यह

मिस्र में पैदा होती है। (३) पेरुवियन-काटन (Peruvian-Cotton) का रेशा  $1\frac{1}{8}$  इंच होता और पैदायश पेरु में होती है। (४) अमेरिकन-काटन (American-Cotton) के रेशे १ इंच लंबे होते, और (५) भारतीय रुई (Indian-Cotton) के  $\frac{3}{8}$  इंच।

४—बानात।

५—बदायूनी ने लिखा है कि जो चीजें यूरोप से इस देश में आती हैं, उनमें बानात, चित्र, कुछ अद्भुत वस्तुएँ और बाजे जैसे, नक़्सीरी आदि हैं। सन् १६०० ई० से तम्बाकू भी आने लगी। रुमी से आशय 'तुर्की का' है।

## जनी कपड़े (शेषांश) ।

नाम	मूल्य		
सूफ मुखिरः	एक नग	३ रुपए से	१ $\frac{१}{२}$ मोहर <sup>२</sup> तक
परम नर्म	"	२ "	२० "
चीरा परम नर्म	"	२ "	२५ "
फौता	"	१ मोहर में	३ "
जामावार परम नर्म	"	१ "	४ "
गोश-पेच	"	१ $\frac{१}{२}$ रुपए में	१ $\frac{१}{२}$ "
सर-पेच	"	१ मोहर में	४ "
अगरी	"	७ रुपए में	२ $\frac{१}{२}$ "
परम गर्म	"	३ "	२ $\frac{१}{२}$ "
कतास	"	२ $\frac{१}{२}$ "	१० "
फूक	"	२ $\frac{१}{२}$ "	१५ रुपए तक
दुर्मा	"	२ "	४ मोहर तक
पट्ट ( पट्टट्ट )	"	१ "	१० रुपए तक
रेवकार	"	२ "	१ मोहर तक
मिस्त्री	"	४ "	४० रुपए तक
बुर्द यमानी ( यमन की )	"	५ "	३५ "
मांजी नमद	"	० "	१ मोहर तक
कंपक नमद	"	० "	१ "
तकिया नमद विलायती <sup>३</sup>	"	×	×

१—मूल ग्रंथ में इस शब्द के मजहज़, मुशजर, महजर, मुखेयर पाठान्तर हैं ।

२—ब्लाक्मेन के अनुवाद में १ $\frac{१}{४}$  मोहर है, जा अशुद्ध है ।

३—काबुल और फारस की ।

## ऊनी कपड़े (शेषांश) ।

नाम	मूल्य		
तकिया नमद हिन्दी (हिन्दुस्तान की बनी हुई)	एक नग	१/२ रुपए मे	५ रुपए तक
लोई	"	१४ दाम	४ "
कम्बल	"	१० "	२ "
कुलाह कश्मीरी	"	२ "	१ "

## आईन ३३ । रंगों की उत्पत्ति ।

रंगों में सफेद रंग और काला रंग मूल माने जाते हैं तथा एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी समझे जाते हैं । शेष रंग इन्हीं के अवयवों से बनते हैं । जैसे, जब

१—विश्लेषण करने पर प्रकाश में अनेक रंग पाये गये हैं । न्यूटन (Sir Isaac Newton, १६४२-१७२७) और उसके शिष्यों के मत में सात रंग मुख्य थे जो गढ़े हुये शब्द विद्युग्घोर (Vibgyor) के अन्तर्गत हैं, अर्थात् बैजना, नील आसमानी, नीला लाली लिए हुए, हरा, पीला, नारंगी, लाल (Violet Indigo, Blue, Green Yellow, Orange and Red) । किन्तु स्काटलैण्ड के फ्लास्कर मिडस्टर (Sir David Brewster, १७८१—१८६३ ई०) ने रंगों का अनुसन्धान करके केवल तीन ही रंग रखे, अर्थात् पीला, लाल और नीला । यङ्ग हेल्महोल्ट्ज (Young Helmholtz) और जार्क मैक्सवेल (James Clerk Maxwell, १८३१-७८) ने

इस सिद्धांत को सुवर्द्धित किया । उक्त सिद्धांत के अनुसार रंग का ज्ञान कराने वाली रेटिना (Retina, प्रकाशग्राही आन्ध्र के पीछे का पर्दा) की सतह के प्रत्येक सूक्ष्म भाग के तीन हिस्से हैं, जो कि क्रमशः लंबी लाल, हरी और छोटी नीली तरंगों की ही शीघ्रग्राहिणी हैं । इससे सिद्ध है कि शुद्ध मूल रंग तीन ही हैं, लाल, हरा और बैजनी नीला । शेष रंग इन्हीं के मिश्रण-स्वरूप हैं ।

वैज्ञानिकों के मतानुसार रंग प्रकाश की किरणों में होता है । वस्तुओं में भिन्न-भिन्न रासायनिक गुण हैं, इसी से वस्तुओं में उनका अनुभव होता है । किसी वस्तु के ऊपर प्रकाश पड़ने पर उस प्रकाश तरंग



अधिक सफेद रंग कुछ काले रंग से मिलता है, पीला रंग उत्पन्न होता है। परन्तु जब सफेद रंग और काला रंग समान अंशों में मिश्रित होता है तो लाल रंग प्रकट

या किरण के तीन भाग हो जाते हैं। पहला भाग परावर्तित हो जाता दूसरा वक्रित हो जाता और तीसरा उसी वस्तु के द्वारा सोख लिया जाता है। हमें जो रंग दिखाई पड़ते हैं, वे इन्हीं परावर्तित किरणों के होते हैं। जब सूर्य की किरणों किसी वृक्ष की पत्तियों पर पड़ती हैं, तो वे (पत्तियाँ) उनमें से हरे रंग की किरणों को छोड़ कर अन्य रंगों की किरणों को सोख लेती हैं, और हरे रंग की किरणें परावर्तित होकर मनुष्य के नेत्रों तक पहुँचती हैं। इसमें पत्तियाँ हरी दिखलाई पड़ती हैं। कितने ही पदार्थों में ये गुण समान मात्रा में नहीं होते। कुछ पदार्थों में प्रकाश केवल वक्रित होता या सोख लिया जाता है। किन्तु परावर्तित नहीं होता, जैसे,—निर्मल जल। ऐसे पदार्थों में कोई रंग दिखलाई नहीं पड़ता। जिन पदार्थों पर प्रकाश पड़कर सबका-सब परावर्तित हो जाता है वे सफेद मालूम होते हैं, और जो वस्तुएँ पड़े हुए पूर्ण प्रकाश को सोख लेती हैं वे या तो काली होती या काली दिखाई देती हैं।

सब रंगों के मिलने पर सफेद और सबके निकल जाने पर काला रंग दृष्टिगोचर होता है। यदि किसी चीज़ पर प्रकाश पड़े और उसमें लाल रंग की किरणों को छोड़कर शेष रंगों की किरणों को सोख लेने की शक्ति हो, तो स्वभावतः लाल रंग बच रहेगा, और वह पदार्थ लाल रंग का कहलायेगा। मारांश यह कि कोई भी पदार्थ उसी रंग का दिखलाई पड़ता है, जिस रंग की किरणों को वह परावर्तित तो कर सकता है किन्तु न वक्रित कर सकता और न सोख सकता है। यदि लाल रंग का

प्रकाश हरे और पीले रंग के साथ पहुँचे तो सफेद रंग दृष्टिगोचर होगा। अतएव लाल और हरे-पीले रंग एक दूसरे के परिपूरक हैं। बहुधा दो रंगों के मिश्रण से तीसरा रंग बनता है, जैसे लाल और पीले के मिलने से नारंगी रंग।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवरण प्रकाश-किरण-रंगों के सम्बन्ध में है, रंगाई के रंगों के सम्बन्ध में नहीं। यहाँ पर रंगाई वाले रंगों का उल्लेख किया जाता है। भारतवर्ष में रंगाई का प्रचार बहुत प्राचीनकाल से है। यहाँ रंगाई के काम में आनेवाले पदार्थों में नील, मजिष्ट, हल्दी, कन्था, हर्ग, कर्मास, आल लाख, कुमुम चन्दन, पतरा आदि हैं। रंगाई, छपाई और विशेषतया चित्रकारी के काम में आनेवाले दस भारतीय रंग थे, जिनका उल्लेख पर्सी-ब्राउन ने इण्डियन पेंटिङ्ग (Percy Brown Indian Painting 1927) में इस प्रकार किया है—(१), सफेद—रागा, जो कि काशगर से आता था। (२), काला—काजल से बनता था, और काजल जलने हुए दीपों पर मिट्टी के सकोंरों या पारों अथवा सरकण्डे रग्वकर पारा जाता था। (३), लाल—कृमिजी और गेरू दोनों ही जयलपुर में अत्यधिक मात्रा में पाये जाने वाले लोह के भस्म (आक्साइड) हैं, दोनों ही बहुत उपयोगी हैं। (४), सेदुर या ईगुर—पारों का भस्म। (५), लाहावरण—लाख से बनाये जाने वाले रंग। (६), नीला—लाजवर्द या राजवर्चक पाषाण से जो जगाली रंग का होता है तथा नील से बनाया जाता था। (७), पीला—हरताल, मुस्तानी मिट्टी,

होता है। मिश्रण के समय यदि काला रंग सफेद से अधिक परिमाण में होता है, तो नया रंग हरा बन जाता है। अन्य रंग इन्हीं रंगों के एक दूसरे के साथ मिलने पर

प्यूरी, ठाक के फूल, और नकली प्यूरी से बनाये जाने वाले रंग। (८), हरा—तृतिया या तावे का कसाव, नील और हरताल, जैतूनी, हरी मृग का-सा रंग, तरवृत्ती, इनके बनाने में काजल, हरताल और नील विभिन्न अंशों में मिलाकर इस्तेमाल किये जाते हैं। बोद्ध चित्रकारी में प्रयुक्त उत्तम सग-सब्ज रंग। (९), यज्जदा—पेंदुर और नील मिला हुआ गहरा बंजना रंग—काजल और हुरमुजी (हिरमिजा) से मिलाकर बनाया जाता था। हुरमुजी फारस की खाटी के हुरमुग द्वीप में पाई जाती है।

उपर्युक्त रंगों का व्यवसाय भारतवर्ष का अन्य देशों के साथ था। रोम के इतिहासकार प्लिनी (Pliny 2)—79 A.D.) ने इस विषय पर प्रकाश डाला है। उसमें मान्य होता है कि अरबवालों ने रंग की कला भारतवर्ष में सीखी, उनमें फिनीशियनो ने और उनमें मिस्र वालों ने। ये जानिया भारत से रंग खरीदती और बेचती थी। मिस्र के सुरक्षित शवों (Mummies) के वस्त्रों पर भी भारतीय नील और मजिष्ट के चिह्न देखे गये हैं। रंग प्रयोग की कला मिस्र में यूनान गई और वहाँ से रोम पहुँची। चीन भारतवर्ष का पड़ोसी है। इसलिए वहाँ यूरोप के पहले से ही रंगों का प्रचार था। पाँचवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक यूरोप में गडबड मचा रहा, जिससे अनेक शत्रियाँ उसमें फँसी रहीं, अतएव रंग तथा अन्य कलाओं के सम्बन्ध में वे उदासीन रही, किन्तु इटली के फ्लोरेंस और वेनिस नगरों में इस कला का प्रचार होता रहा। इसी बीच में

फ्लोरेंस में शव के आवरण से बंजना रंग बनाया गया। इसका प्रसार यूरोप के कई देशों में हुआ। इंग्लैंड के सम्राट् एडवर्ड तृतीय (१२१२—७७ ई०) को उद्योग और कला काशल में बड़ा प्रेम था। उसने सबसे पहले वस्त्र बुनाई की नींव रखी, और अत्यधिक वेतन देकर फ्लोरेंडर्स (वेतिक्रय) में रंगरंजों को बुलाया। १४७२ ई० में लंडन में रंगरंजों का एक कम्पनी स्थापित हुई और इस व्यवसाय का आर्थिक सहायता मिली। १४२६ ई० में वेनिस से रंगों की 'आर्ट डी टिण्टोरिया' (Art De Tintoria) नामक पहली पुस्तक निकली। इसी प्रकार १५१४ ई० में जर्मनी के म्यून्चन में आर १५८३ ई० में लन्दन में उक्त कला पर एक-एक पुस्तक प्रकाशित हुई।

अभी तक विशेषकर रंग-रङ्ग भारतवर्ष में ही विदेशों को जाते थे। जब १४९२ ई० में क्रिस्ताफर कोलंबस ने अमेरिका खोजा, और १४९६ ई० में केप आफ् गूडहोप (Cape of Good Hope) होकर वास्कोडागामा ने भारतवर्ष का रास्ता निकाला तो अटलांटिक महासागर का महत्व अधिक बढ़ गया। इसमें वेनिस का व्यापार घट गया, और स्पेन और पोर्चुगल का व्यवसाय चमक गया। इधर भारतवर्ष का उद्योग क्षीण हो गया। इस बीच में स्पेन वालों ने अमेरिका से रंग के महान् जहाज यूरोप भेजे। पोर्चुगीजों का सम्पर्क भारतीयों से होने के कारण उन्होंने रंग का पूर्ण ज्ञान यहाँ से प्राप्त किया, और उसे यूरोप वालों को सिखलाया। परिणाम-स्वरूप

उत्पन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त टंडक गीले पिण्ड को सफेद कर देती है और सूखे को काला। उष्णता आर्द्र पदार्थ को श्याम बनाती है और शुष्क को श्वेत।

फ्रांस, जर्मनी और हालैण्ड आदि राष्ट्रे म रंग की खेती होने लगी।

१६३० ई० में डच रासायनिक डेविल ने लाख के सड़न कोकोनियल (Cochineal) एक जाति के कीड़े, जो अमेरिका और जावा आदि में अग्रणि पाये जाते हैं। वे वर्ष में दो बार एकत्र किये जाते हैं, और मादा कीड़े को सुखा कर रंग बनाया जाता है। एक पोण्ड रंग के लिये ७०००० कीड़ों की आवश्यकता होती है) से उन पर रंग चढ़ाना सिखलाया। इस रंग के प्रचार से भारतीय लाख का—जो कि समार में आज दिन भी केवल भारतवर्ष में होती है—महत्व घट गया। इसके बाद यूरोप में रंगाई के आनुषंगिक द्रव्यों का भी व्यापार बढ़ा और लोगों का कृत्रिम रंगों के बनाने की ओर ध्यान गया।

१८१६ ई० में जर्मन गुरु क अगरेज गिल्बे पकिन्ग (Sir W. H. P. King) ने कृत्रिम किनाइन (Quinine) बनाने की चेष्टा की। इसके लिए समके द्वारा नील से एनलीन (Aniline) तेल तैयार किया। इस तेल में कृत्रिम कुनाइन तैयार करने के लिए दूसरी क्रिया की। इस क्रिया से कुनाइन तो नहीं पनी, किन्तु माय रंग (बैजना) तैयार हा गया, जो पकिन्स माय कहलाता है। १८१६ ई० में वर्मुइन (Vermilion) ने तारकोल से अक्षीर जैसा मजेगटा (Magenta) रंग तैयार किया। इसी वर्ष रासायनिक गीज (Geige) ने अजो (Azob) वर्ग के रंग तैयार किये। आजतक सबसे अधिक रंग इसी वर्ग के तैयार हुये हैं। १८८४ ई० में सूती कपड़े की लाल रंगाई के लिए कॉंगोरेड (Congo red)

तैयार हुआ। कॉंगोरेड उतना पक्का रंग नहीं था, जितना कि मजिष्ट, किन्तु मजिष्ट का रंगाई में छे महीने लगते थे। शनैः शनैः रंग बनाने वालों को नैसर्गिक रंगों के मुकाबले के रंग बनाने की प्रबल इच्छा हुई। जर्मनी के दो रासायनिकों ग्रीव और प्रीबर्मन (Grieve and Priberman) ने १८६८ ई० में मजिष्ट रंग का मूल द्रव्य एलिज़रीन (Alizarin) खोज निकाला। इस से लाल और गुल-अनार रङ्गों की पूर्ति हो गई। इसी प्रकार १८६७ में कृत्रिम नील भी तैयार हो गया। बैजना रंग जो कि पहले शंख या घोघ के कवच से बनाया जाता था वह भी कृत्रिम बन गया। घोघ के कवच वा बैजना रङ्ग ११००० रुपए प्रति सेर बिकता था, किन्तु कृत्रिम रंग ११ रु० सेर बिकन लगा। यह रङ्ग भी नील वर्ग का ही है। इसी वर्ग के और अनेक रंग, जो माट रंग के नाम से पुकारे जाते हैं, बनाये गये। ये रंग नील से उत्तम और टिकाऊ ये। इसी प्रकार अजो वर्ग के रंग बने हैं, जो पानी में नहीं घुलते, किन्तु उनमें दो मिनट में वख रंगा जा सकता है। उन और रेशम के लिए मजिठ वर्ग के ज़ामिन रंग या तेज़ाबी ज़ामिन रंग तैयार हैं।

रंग के विकास के साथ-साथ उन और रेशम आदि के अतिरिक्त अन्य कृत्रिम रेशे भी बनाये गये हैं। उनमें कुछ ऐसे भी हैं, जो साधारण प्रचलित रंगों से नहीं रंगे जा सकते। ऐसे रेशे ऐसिटेड सिल्क या मेलानीज़ (Acetate silk or Celanese) के नाम से पुकारे जाते हैं। इनकी रंगाई के

ये कारण (गर्मी और सर्दी) पिण्डों को उनके स्थानों पर ही रंग प्रदान करते हैं, क्योंकि पिण्ड, स्वभावतः उनको ग्रहण करने के पात्र होते हैं तथा नक्षत्रों के

लिए एस० आर० ए० आयोना अमाइन डिस्पर्सल, सेलाटीन, ड्योरेनोल, सेलसेट और सेलेन्थीन (S R A Ionamine, Dispersol, Celatine, Durenol, Cellacite & Celanthrene) बनाये गये हैं।

आजकल नैसर्गिक रंग विशेषकर अमेरिका, भारतवर्ष, इंग्लैण्ड, इटली, फ्रांस-हालेण्ड, चीन और जापान में पाये जाते हैं। लागाउड, फ्रस्टिक, कोचीनियल, रेडउड, ओक गाल्म, केर सिट्रोन, फ्लैवीन, आचिल (Log-wood, Fustic, Oak Galls, Quercitron, Flavine or Anhal) अमेरिका के रंग हैं। वुड और वेल्ड (Wood & Weld) इंग्लैण्ड के हैं। मैडर और कर्मिस (Madder & Kermes) इटली, फ्रांस और हालेण्ड के रंग हैं। आजकल अमेरिका नैसर्गिक रंगों की खोज में लगा है।

पहले लकड़ी, फल, फूल, छाल और पत्तियों तथा खनिज द्रव्यों आदि से नैसर्गिक रङ्ग बनाये जाते थे। पर आजकल जो कृत्रिम रङ्ग प्रचलित हैं। वे तारकोल से तैयार किये जाते हैं। तारकोल कोयले से बनता है और कोयला लकड़ी से। अतः कृत्रिम रङ्गों का भी मूल-द्रव्य वनस्पति के अङ्गा-पात्रों का रूपान्तर मात्र है। कृत्रिम रङ्ग बनाने के लिए कोलतार के तीन विशेष रूपान्तरों की आवश्यकता होती है, अर्थात्—बेन्ज़ीन, नपथलीन, पेन्थेमीन (Benzene, Napthalene and Anthracene), इन्हीं तीन पदार्थों का अन्य द्रव्यों से विशेष परिमाण में मिलान होने पर अनेक प्रकार के रङ्ग तैयार होते हैं। इन तीनों द्रव्यों में से बेन्ज़ीन से हल्दी आदि के समान कच्चे रङ्ग

तैयार होते हैं। नपथलीन से नील वर्ण के रङ्ग बनाये जाते और पेन्थेमीन से मजीठ वर्ण के पक्के रङ्ग तैयार किये जाते हैं। सब कृत्रिम रंग लगभग दस भागों में विभाजित हैं:—

(१), डायरेक्ट (Direct) जो कि पक्के रङ्ग हैं, और जिनमें नमक डालकर सीधी रीति में सूती और रेशमी कपड़ा रङ्गा जा सकता है।

(२), बेजिक (Basic) जो कि पदार्थों की मम्म से तैयार होते हैं। ये रङ्ग कच्चे होते हैं, किन्तु इनसे रङ्गा हुआ कपड़ा भड़कीला मालूम होता है। गहरा रङ्ग देने के लिए दूसरे मसालों की पुट देनी पड़ती है। रंग देने से या धूप से ये रङ्ग उतर जाते हैं।

(३), सल्फर या गंधकी (Sulphur) रंग से प्रायः सूत हा रंगा जाता है। यह रंग मामूली सोडा या साबुन से नहीं छूटता किन्तु धोखा को भट्ठी पर छूट जाता है। यह रंग योंही नहीं धुल जाता, प्रत्युत, इसे धोने के लिए एक विशेष प्रकार के मसाले की आवश्यकता होती है।

(४), मारडेंट (Mordant) या ज़ामिन रंग जिनसे सीधे-सीधे रंगाई नहीं होती, वरन् उनसे रंगने के पहले रेशम या सूत को कुछ मसालों की पुट देनी पड़ती है। ये रंग प्रायः गुलाई और धूप तथा पसीने के लिए पक्के होते हैं, किन्तु कोई-कोई रंग रंगने से उड़ जाता है।

(५), वेट (Vat) या माट रंग, इनसे अधिन्तर सूत रंगा जाता है। इनसे रंगम तो रंगा जा सकता है पर उन नहीं। इनसे अधिक पक्के रंग और कोई नहीं हैं। इसी वर्ग में इण्डिगो सोल (Indigosols)

प्रभाव से—जैसे मूर्त्य, जो उष्णता का मूल कर्ता है—प्रभावित होने के योग्य होते हैं।

## आईन ३४।

### लेखनकला और चित्रकला।

आकृति ( मूर्त ) आकृतिवान को प्रकट करती है, और आकृतिवान भाव ( मन्त्रि ) को। इसी प्रकार लिपि ( मन्त्र ) अक्षर और शब्दों का बाध करती

द्राव्य रंग है। उन इनमें रंगा जाता है। नील की रंगाई उसी पुराने तराके से बनाये हुए माट के द्वारा होता है। ये रंग स्वयम् नहीं धुलते, वरन् पानी में डूबे विरोध क्रिया द्वारा हल किया जाता है, इसलिए रंगों के हल करने की रीति का माट बनाना कठोर है। सुप्राक्रिय या अध्राव्य रंग (Suprab) भी इसी कोटि के अन्तर्गत हैं।

(६), नप्थाल (Naphth) रंग गुलाबी, धूप और पसीने के लिए बहुत दृढ़ होते हैं। ये धोबी की भट्टी में भी माट रंग का समान पक्के रहते हैं। इसलिए इनमें रंगाई बहुत होती है। रैपिडफास्ट और रैपिडोजन (Rapid fast & Rapulogen) रंग इसी वर्ग के अन्तर्गत हैं।

इनके अतिरिक्त (७), एमिड (Acid) या तेजाबी रंग गंधकाम्ल की सहायता से उन और रेशम पर सीधे सीधे रंगे जाते हैं और रेशमी के लिए बहुत पुस्त्य होते हैं। इनमें मूल नहीं रंगा जाता। (८), एमिड मारदैस्ट (Acid Mordant) या तेजाबी जामिन, ६), मिनरल (Mineral) या खनिज रंग और (१०), ऐनिलीन ब्लैक (Aniline Black) या पपड़ी का काला रंग है। इन दसों वर्गों के रंगों में से भविष्य में अधिकतर

ये ही वर्गों के रंगों के प्रचार का सम्भावना है— मृत् के लिए नप्थाल वर्ग के रंग, और उन तथा रेशम के लिए न्योत्थान (Naphth) रंग क्योंकि इन रंगों से एक ही क्रिया द्वारा सफाई की तरह पक्के रंग रंगे जा सकते हैं। (F. M. Marlow: Application of Dye-stuffs to the Polws, Dyes & Dyeing for Edmund Knecht Manual of Dyeing & Printing Dr. L. N. Foster Dyeing Instruction आदि के आधार पर)।

यूरोपीय महागमर (१८९४-९८) के पहले कृत्रिम रंगों पर एक प्रकार से जर्मनी का अधिकार-सा था। युद्धकाल में तथा उसके बाद अन्य राष्ट्रों की भी आवेख खुली। अब संसार की सभी महाशक्तियाँ अपने-अपने लिए रंग बनाने में लगी हैं कृत्रिम रंग मसने पड़ते हैं, और उनके रंगने में समय भी कम लगता है। इसलिए प्रायः सभी देश लेमगिक रंगों के स्थान में कृत्रिम रंगों के बनाने में ही प्रवृत्त हैं, जैसे—अमेरिका, रोज़रलैण्ड, जापान, इंग्लैण्ड, फ्रान्स, इटली, रूस आदि।

१—मूल आईन में 'आइने-तमवीर-खाना' पाठ है जिसका अर्थ 'चित्रशाला का

है, और अक्षर तथा शब्द भाव पर पहुँचाते हैं। यद्यपि लोग साधारण आलेख्य में लौकिक मूर्तियों की आकृति बनाते हैं, पर यूरोप के चित्रकार बहुधा चित्रों में स्वाभाविक आन्तरिक भाव (यथा वीरता, क्रोध, उदारता) भी प्रदर्शित करते हैं जिनको देखकर स्थूलदर्शियों को भान होता है कि वे चित्र नहीं बरन असली पदार्थ हैं। पर लिपि में चित्र से यह विशेषता है कि उसमें पूर्वजों के अनुभव ज्ञात होते हैं और वे बुद्धि-वृद्धि के साधन होते हैं।

‘आईन’ होता है। इस आईन में सुन्दर लिखावट या सुन्दर अक्षर लिखने की कला एवं चित्र-विद्या का वर्णन है। इसलिपि लेखन-कला और चित्र-कला शीर्षक दिया गया है। ‘व्रत’ के लिए वर्ण, वर्ण-लिपि, अक्षर-लिपि लिखितवर्ण, लेख, सुलेख, आदि शब्द प्रयोग किये गये हैं।

१—प्राचीन भारतीय आर्यों के मतानुसार ब्राह्मीलिपि ब्रह्मा की बनाई हुई है। इसके प्रत्येक अक्षर से एक ही ध्वनि व्यक्त होती है तथा मसर की लिपियों में यहाँ सबसे मरल है (आन्हिकतन्त्र और उद्योति-स्तव, नारदस्मृति, Sacred Books of the East, Vol 23, p 304)। चीनी यात्री ह्वेनसांग के विचार में “भारतीयों की वर्ण-माला के अक्षरों को ब्रह्मा ने बनाया था, और उनके रूप आदि से चले आ रहे हैं” (S. Beal, Buddhist Records of the Western World, Vol I, p 77)। परन्तु यूरोप के कतिपय विद्वान् उपयुक्त विचार को नहीं मानते। मैक्समूलर का कहना है कि पाणिनीय की परिभाषा में कोई ऐसा शब्द नहीं है, जिससे यह सिद्ध हो सके कि लेखन-कला पहले से प्रचलित थी (Maxmuller, History of Ancient Sanskrit Literature, p 262)। मैक्समूलर पाणिनीय का समय ईसा से ४०० वर्ष पूर्व मानता है। बर्नेल के विचारानुसार भारतीयों ने फ़िनिशियनों से लिखना सीखा। फ़िनि-

शियन लिपि भारतवर्ष में ईसावी सन के २०० वर्ष पूर्व प्रविष्ट हुई (South Indian Palaeography p 9)। बूलर के मत से ब्राह्मीलिपि की उत्पत्ति मेसिटिक से २०० ई० पूर्व से १००० ई० पूर्व या इस से भी अधिक पहले हुई है (Bubler Indian Palaeography English tran p 17)। आक्सफ़र्ड के प्रो० लैंगडन (S. Langdon) ने मोहेनजोदड़ो-कालीन-सभ्यता के २८८ लिपि-चिह्नों की एक विशेष सूची तैयार की है। उसका निश्चित मत है कि ब्राह्मी का जन्म सिन्ध की चित्र-लिपि से हुआ है (Indian Historical Quarterly Vol VIII, p 135)। इस धारणा से ब्राह्मी की ऐतृक शृङ्खला ई० सन् के ३५०० वर्ष पूर्व तक पहुँचती है।

भारतवर्ष के प्राचीन साहित्य, विदेशियों के साहित्य, मिले हुये सिक्का, ताम्रपत्रों, दान-पत्रों, शिलालेखों तथा अनेक यूरोपीय विद्वानों के विचारों से मैक्समूलर आदि के मतों का खडन होता है, और ब्राह्मीलिपि की उत्पत्ति अनिश्चितकाल से इसी देश में स्वतन्त्ररूप से स्थिर होती है, जैसा कि निम्नलिखित विवरण से प्रकट होता है।

बडली (ज़िला अजमेर) और पिप्रावा (नेपाल की तराई) के शिलालेखों में, जो क्रमशः सन ४४३ ई० पूर्व और ४८० ई० पूर्व के हैं तथा जो अशोक के भी लेखों से पहले के हैं, सिद्ध होता है कि भारतीयों के

अतएव मैं पहले पुस्तकालय का हाल वर्णन करता हूँ, क्योंकि वह लेखन-कला का सर्वोत्तम भेद है। सम्राट इस पर बहुत ध्यान देता है, और आकार

लिए उससे भी पहले से लिखना एक साधारण सी बात थी। इतना ही नहीं, ३२७ ई० पूर्व भारतवर्ष पर आक्रमण करने वाले मिक्न्दर के एक सेनापति नियार्कस ने इस देश में लिखने के लिए रुई या रुई के गूदों से कागज भी बनने देखा था (Max, History of Anc Sans Lit p, 367 Buhler's Ind pala, p 6) ३०६ ई० पूर्व के आस-पास सीरिया के बादशाह मित्यूकस ने मैगेस्थनीज को अपना राजदूत बनाकर चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में भेजा था। उसने २ वर्ष के लगभग पाटलिपुत्र में रहने के बाद अपनी 'इन्डिका' नामक पुस्तक में लिखा है कि भारतवर्ष में नव वर्षारम्भ के दिन भविष्य-फल (पंचांग) सुनाया जाता, जन्म-पत्र बनाने के लिए जन्म-समय लिखा जाता और न्याय स्मृति के अनुसार होता है। दस-दस सैडिया (१ सैडियम = ६०६ फुट १ इंच) के अन्नर से सड़कों पर पापाण गड़े हुये हैं (Indica of Megasthenese pp 91 125 26)। बौद्धों के विनयपिटक के एक ग्रंथ 'महावग्ग' में विद्याधियों के लिए पाठ-शालाओं में जाकर पाठी पर लिखने, पढ़ाये पढ़ने तथा हिस्सा सीखने का उल्लेख मिलता है। 'ललितविस्तर' में बुद्ध का लिपिशाला में अध्यापक विश्वामित्र के पास जाकर सोने की लेखनी से चन्दन की पाटी पर लिखना सीखने का वृत्तान्त दिया हुआ है। इन प्रमाणों से सिद्ध है कि ईसवी सन् के पूर्व छठी शताब्दी में भारतीय बालक उन्नी प्रकार शिक्षा ग्रहण करने थे जैसे कि आज प्राप्त कर रहे हैं (ओम्का, प्राचीन लिपिमाला, पृ० ६, १६१८ ई०)।

महाभारत (आदिपर्व १, ११२), वसिष्ठ-धर्मसूत्र, कोटिरुय-अर्थशास्त्र और कामसूत्र आदि ग्रन्थों में लिखने की तथा लिखित पुस्तकों की चर्चा आई है। पाणिनीय की अष्टाध्यायी में 'लिपि' और 'लिपि' शब्द आये हैं, जिनका अर्थ लिखना या अक्षर-लिपि होता है। अष्टाध्यायी के 'यवनानी' शब्द का अर्थ पानञ्जलि और कात्यायन ने यवनों की लिपि किया है। यवनानी और लिपि का शब्द बनाने की प्रक्रिया भी दी हुई है। 'स्वरित' के चिह्न तथा 'ग्रथ' का भी उल्लेख हुआ है। अष्टाध्यायी में यह भी पाया जाता है कि उस समय चापाओं के कानों पर सुव तथा स्वस्तिक आदि के और पाँच तथा आठ के अक्षरों के चिह्न भी बनाये जाते थे। इसके अतिरिक्त उसमें महाभारत ग्रंथ तथा शाकल्य, कात्यायन, स्फोटायन, गार्ग्य, शाकटायन, गालव, भारद्वाज, आदि व्याकरणों के भी नाम आये हैं। पाणिनीय में पहले यास्क ने निरुक्त बनाया था, जिसमें ओदुमरायण शाम्रायण और कौत्स आदि अनेक निरुक्तकारों का उल्लेख हुआ है। इसमें ज्ञात होता है कि पाणिनीय और यास्क में पहले अनेक व्याकरण और निरुक्तकार हो चुके हैं।

छादोग्य उपनिषद् में 'अक्षर' शब्द आया है तथा 'ई', 'ऊ' और 'ए' स्वर ईकार, ऊकार और एकार शब्दों से सूचित किये गये हैं, और स्वरों का सम्बन्ध इन्द्र से, ऊष्मन् का प्रजापति से तथा स्पर्श वर्णों का मृत्यु से बतलाया गया है। ऐतरेय आरण्यक में ऊष्मन्, स्पर्श स्वर, अन्तस्थ व्यंजन, घोष

(सूरत) तथा भाव पर गहरी निगाह डालता है। वास्तव में, वर्ण-लिपि सौन्दर्योपासकों की दृष्टि में अवरुद्ध-प्रकाश का एक रूप है, पर दृग्दृशियों की दृष्टि में वह

और सन्धि आदि का विवरण मिलता है। ऐतरेय ब्राह्मण में अकार, उकार और मकार के संयोग से ॐ अक्षर का बनना लिखा है। शतपथ ब्राह्मण में वचनो तथा लिंगो का विवेचन मिलता है। तैत्तिरीय संहिता में इन्द्र द्वारा वाणी का व्याकृत अर्थात् व्याकरण द्वारा नियमबद्ध किया जाना लिखा है।

व्याकरण का सबसे अधिक उपयोग वेदों के अध्ययन में होता आया है, क्योंकि उनका एक-एक अक्षर दृढ़ नियम में आवद्ध है। वेदों के अक्षर वर्णमाला की पूर्णता, धातुपाठ, प्रत्ययनियम, तीन लिङ्ग, तीन वचन, आठ विभक्ति, दश लकार सन्धि-कौशल और स्वरविज्ञान के कारण इधर से उधर नहीं हिल सकते। यदि कोई अर्थ करते समय अक्षरों को इधर-उधर करने की चेष्टा करता है तो घन, जटा और बल्ली आदि लगाकर पाठ करने वाले वैदिक तुरन्त अक्षर-अक्षर को स्पष्ट कर देने हैं। वैदिक व्याकरण के अन्तर्गत नियन्त्रित होने के कारण ही वेद आज तक हमारे सामने ज्यों के त्यों उपस्थित हैं।

व्याकरण का शुद्ध तथा सम्यक् ज्ञान बिना लिखना जाने नहीं हो सकता और बिना पूर्ण ज्ञान के अर्थ नहीं लग सकता। बिना अर्थ जाने वेद के अध्ययन से कोई लाभ नहीं। जैसा कि वेद में लिखा है—  
ऋचाँ परम अविनाशी शब्दमथ अक्षर मे ठहरी है, जिनमे देव अधिष्ठत् है, जो उस अक्षरार्थ को नहीं जानता वह ऋचाओं से क्या लाभ प्राप्त करेगा (ऋचो अक्षरं परमे व्योमन् . यस्मिन् ऋचं किमृचा करिष्यति..

ऋ० १, १६४, ३६)। अपने श्रम को सार्थक करने के लिए वैदिक समय के आर्य अर्थ सीखते थे। अर्थ समझने के लिए अनेक पारिभाषिक शब्द और वैदिक व्याकरण के नियमों का ज्ञान प्राप्त करते थे, और इन सब बातों के लिए वे लिखना सीखने पर बाध्य थे। क्योंकि वेदों में अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, जगती, वृहती आदि अनेक छन्द हैं और वैदिक छन्द शास्त्र बड़ा ही जटिल है। बिना लिखना जाने उनके अक्षरों को गिनना, उनको छन्दों के अन्तर्गत करके उनका वर्गीकरण करना दुःसाध्य है।

वेदों में अंक विद्या है। यजुर्वेद (अ० १७, मन्त्र २) में गणित-विद्या के प्रसंग में एक, दश, शत, सहस्र, अयुत (१००००), नियुत (१०००००) तथा परार्ध (१००००००००००००) आदि संख्याओं का उल्लेख मिलता है। इसी वेद (अ० ३०, मन्त्र २०) में उद्यमियों के प्रसंग में गणक (गणित करने वाला, ज्यामिती) शब्द आया है। शतपथ ब्राह्मण में समयविभाग के प्रसंग में रात-दिन ३० मुहूर्त का १ मुहूर्त १५ क्षिप्र का, १ क्षिप्र १५ एतर्हि का, १ एतर्हि १५ इदानी का और १ इदानी १५ प्राण की बतलाई गई है। इस हिमाव में रात दिन में १५१८७२० प्राण होते हैं, और १ प्राण १ सेकण्ड के लगभग  $\frac{1}{86}$  के बराबर होता है। बिना लिखना जाने कोई जाति अधिक संख्याएँ नहीं गिन सकती। ग्रीकवाले लेखन-कला न जानने के समय तक केवल १०००० तक और रोमवाले १००० ही तक गिन सकते थे। वेदों की परार्ध तक की



विश्व-दर्शक-याला' है। वर्ण का चमत्कार, एक आध्यात्मिक रेखागणित है आविष्कार की लेखनी से लिखा हुआ, तथा एक आकाशीय-आलेख है भाग्य के हाथ का रचा हुआ। वह वार्ता के रहस्य को धारण करने वाला है। वह हाथ की जिह्वा है। वार्ता तो केवल उपस्थित व्यक्तियों के ही हृदय को शक्ति देती है, किन्तु अक्षर सुदूरवर्ती और निकटवर्ती दोनों को ज्ञान प्रदान करता है। यदि लिखित-वर्ण न होते तो वार्ता का जीवन भी स्थिर न रहता और हृदय को पूर्वजो की भेट भी उपलब्ध न होती। स्थूलदर्शी लोग लिखित अक्षर को काजल का एक काला कल्टा आकार समझते हैं, परन्तु सूक्ष्मदर्शी उसको ज्ञान का दीपक मानते हैं। वर्ण एक अन्धकार है जिसमें सहस्रो ज्योति है, नहीं-नहीं वह एक आभा है जिस पर कुट्टि का प्रभाव न पड़ने के लिए यह काला तिल बनाया गया है। वह ज्ञान का बेल-बूटा है और विचार-साम्राज्य की पाण्डुलिपि। वह एक अधेरी रात है भास्कर-त्पादक, और एक काला चादल है बुद्धि-चरसाने वाला। वह

संख्या का गिनना बिना लिखना जाने संभव ही नहीं। ऋग्वेद में राजा सावर्णि द्वारा एक सहस्र अष्टकर्णों गोएं दान देने (सहस्र में दत्तः अष्टकर्ण्य — ऋ० १०, ६२, ७) का उल्लेख मिलता है। अष्टकर्णों से आशय उस गाय का है, जिसके कान पर ८ की संख्या का चिह्न हो। ऐसे चिह्नवाले पशुओं का अष्टाध्यायी में जिक्र है। 'कर्णो-वर्णं लक्षणात्' सूत्र की व्याख्या करते हुए काशिकाकार के विचार से प्रकट होता है कि पशु का स्वामी के साथ सम्यन्ध जतलाने के लिए उसके कान पर वर्ण या अक्षर का चिह्न लगाया जाता था। यदि वैदिक काल में आर्य लिखना न जानते होते तो गाय के कान पर आठ की संख्या का चिह्न कदापि नहीं बनाया जा सकता था।

कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने भी इन विचारों की पुष्टि की है। बूलर लिखता है कि वैदिककाल में मोखिक शिवा के समय और दूसरे अवसरों पर लिखित पुस्तकों की सहायता ली जाती होगी, इस अनुमान के

विरोध करने का कोई कारण नहीं है (Bühler, Palaeography, p. 4)। राय के मतानुसार "भारतवर्ष में लिखने का प्रचार प्राचीनकाल से होना चाहिये। क्योंकि यदि वेदों के लिखित ग्रंथ विद्यमान न होते तो कोई भी मनुष्य प्रातिशाख्य (वे ग्रंथ, जिनमें वेदों की किसी शाखा के स्वर, पद, संहिता मयुक्त वर्ण और उच्चारणादि का निर्णय किया गया हो) न बना सकता।"

१—फारसी की किताबों में लिखा है कि फारस के बादशाह जमशेद ने सब से पहले एक ऐसा प्याला बनाया था, जिस में वह सस आकाशों का हाल जान लेता था। उस प्याले को जामे-जमशेद कहते हैं। इसी प्रकार अजम के बादशाह कैवुसरो ने एक बहुत बड़ा जाम बनाया था; उसमें रेखाएँ और संख्याएँ ऐसे ढग से खुदी हुई थी कि उनके द्वारा ससार के उत्पात तथा दूसरे प्रकार के समाचार मालूम होते थे। वह जामे-जहां-नुसा के नाम से प्रसिद्ध है।

दृष्टि-कोष के लिए एक अद्भुत इन्द्रजाल है, जो यद्यपि है तो मूक, पर है बात करने वाला। वह अविचल होने पर भी गतिमान है, और पड़ा होने पर भी उड़ाकू है।

ईश्वरीय ज्ञान-राशि का आभास, जब मनुष्य की आत्मा पर पड़ता है, तो मन उसको विचार-प्रवेश में—जो कि चेतनता और जड़ता का मध्यवर्ती स्थान है—पहुँचाता है, जिनसे शुद्ध पदार्थ संश्लिष्ट हो जाता तथा स्वच्छन्दता—बद्ध हो जा जाती है। वहाँ से वह मिश्रित-आभास, जिहा की अट्टालिका पर पैर जमाकर, वायु की सहायता से दूसरे के कानों के गवानों में प्रविष्ट होता है। फिर सीढ़ी-दर-सीढ़ी लगाव का बॉम्ब कंधे से उतार कर शुद्ध आभास अपने स्थान (विचार-प्रवेश) को लौट जाता है। कभी-कभी यह गगन-यात्री अगुलियों की पोंगे की सहायता से चलता है, वहाँ से लेखनीरूपी महाद्वीप तथा स्याहीरूपी महासागर पार करके पृष्ठा के समृद्ध नगर में उतर पड़ता है और पाठक के विस्तीर्ण दृष्टि मार्ग से अपने आदिम निवास-स्थान को वापस चला जाता है।

यत् लिखित वर्ण अक्षर के भाव को प्रकट करता है। अतः लेखक के लिये यह आवश्यक है कि अक्षर-लिपि का कुछ हाल लिये, और ज्ञान का दीपक जलाये।

अक्षर (वर्ण की ध्वनि) एक विशेष अवस्था है वायु की स्थिति से सम्बन्ध रखनेवाली। जब कभी दो कठोर पदार्थ आपस में टकराते हैं तो उस ध्वनि को कर्ण कहते हैं, और यदि वे कड़ाई के साथ एक दूसरे से पृथक् होते हैं तो उस ध्वनि का नाम कलत्र होता है। इन दोनों में से प्रत्येक दशा में मध्यवर्ती वायु जल के समान तरंगित होने लगती है, जिसमें एक विशेष अवस्था उत्पन्न होती है, जिसको आवाज (शब्द) कहते हैं। कुछ तत्त्वविद् शब्द का कारण दूरी बतलाते हैं और कहते हैं कि स्वर वायु का लहरें मारना है। पर अनेक दार्शनिक उसका कारण निकटता मानते हैं और शब्द को दो वस्तुओं की टकराव या टूटन की ध्वनि मानते हैं। परिस्थिति के अनुसार शब्द में और भी अवस्थाएँ अवस्थित होती हैं, जैसे अनुदात्त (नीचा स्वर), उदात्त (ऊँचा स्वर), अनुनासिक (नासिका स्वर)

१—संस्कृत के विद्वान् बहुत पहले शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रायः इसी प्रकार के विचार प्रकट कर चुके हैं—

आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान् मनो बुद्धिर्निवृत्तयः।

मनः कायाग्नि मा हन्ति स प्रेरयति मास्तम्।

मास्तस्तूरसि चरन्मन्दं जनयति स्वरम्।

अर्थात्, आत्मा, बुद्धि से अर्थों की संगति करके कहने की इच्छा से मन को युक्त करता है। मन जठराग्नि को ताड़ता, जठराग्नि वायु को प्रेरित करती और वायु उर स्थल में विचरती हुई मन्द स्वर को उत्पन्न करती है (पाणिनीय शिष्टा)।

और कंठ्य ( जिनका उच्चारण कंठ के रुंधने पर होता है । उच्चारण-स्थान के प्रवाहानुकूल तथा वायु-सम्बन्धी परमाणुओं के पृथकरणानुसार शब्द में एक और अवस्था उस समय विद्यमान होती है, जब दो अनुदात्त, दो उदात्त, दो अनुनासिक और दो कंठ्य स्वर एक दूसरे से पृथक् होते हैं, इसी को वर्ण<sup>१</sup> ( हर्फ ) कहते हैं । अबूअली सीना का यही मत है । कुछ बुद्धिमान शब्द की मौलिक अवस्था के रूपांतर को वर्ण मानते हैं । परन्तु अनेक दूरदर्शी मिलनेवाले पदार्थ तथा मूल तत्व के संयोग को वर्ण कहते हैं । वास्तव में यही राय ठीक भी है ।

हिन्दी-भाषा में वर्ण वाचन है, यूनानी में अनिश्चिन, और फारसी<sup>२</sup> में अठारह । अरबी में उनकी सख्या अट्ठाइस है, पर उनके आकार<sup>३</sup> अठारह ही हैं । यदि हमजा को अलिफ से पृथक् न करें तो मिलावट में वे पन्द्रह ही रह जाते हैं । अमिश्र वर्णों के अन्त में, लाम<sup>४</sup> और अलिफ ( ला ) मिलाकर इस लिए लिखते हैं कि साकिन वर्ण वा किसी दूसरे वर्ण के साथ मिलावट का उदाहरण दिखलाना आवश्यक है । वर्णों में उदाहरण के लिए लाम का इसलिए चुना गया कि लाम अलिफ का दिल ( बीब का अक्षर ) और अलिफ लाम का दिल है ।

पूर्वकाल में वर्णों पर स्वरों की मात्राओं के चिन्ह नहीं लगाये जाते थे, प्रत्युत अक्षरों पर दूसरे रंग की कुछ चिन्दियाँ लगाकर उनका ( मात्राओं का ) परिचय कराया जाता था, जैसे जवर ( अकार स्वर ) का मात्रा के लिए वर्ण के ऊपर,

१—आकाश वायु प्रभव शरीरात्मसु-  
खान् ब्रह्मपैति नाग । स्थानान्तरेषु  
प्रविभज्यमाना वर्णानामागच्छति य. स शब्द.

( वेदाङ्ग प्रकाश ) ।

अर्थान् आकाश और वायु के संयोग से उत्पन्न होनेवाला नाभि के नीचे से ऊपर उठता हुआ जो मुख को प्राप्त होता है उसको नाद कहते हैं । वह कठ आदि स्थानों में विभाजित होता हुआ वर्ण भाव को प्राप्त होता है, उसी को शब्द कहते हैं ।

२—अबुलक़ज़ल ने फारसी वर्णों की सख्या लिखने में भूल की है । उसने ३८ वर्ण लिखे हैं, जो कि वास्तव में अक्षरों के आकार हैं, जैसे 'ते' 'मे' 'हे' 'दे' 'ज़ाल' 'ज़' 'शीन' 'ज़ोआद' 'तो' 'बे' 'जीम' 'दाल'

'रे' 'मीन' 'स्याद' आर 'पुन' आदि की आकृतियों परस्पर मिलती हैं, यद्यपि उनमें थोड़ा बहुत हेरफेर है ।

३—क्योंकि नून और याय तहतानी मिलने पर वायु सुवहदा के समान लिखे जायेंगे और काफ फ़ी के सदृश ।

४—मो० अब्दुलवामी ने फ़ारसी के व्याकरण की पुस्तक रिसाले-अब्दुलवासी में लिखा है कि लाम अलिफ़ 'ला' का अर्थ 'नहीं' है । इसका आशय यह है कि संयुक्त लाम अलिफ ( ला ) न पढ़ना चाहिये, वरन् वर्ण-माला के पाठ के समय उस पर से दृष्टि हटा लेनी चाहिये । इसको साकिन वर्णों का उदाहरणमात्र समझना चाहिये ( Bloch Trans p 98, n 2 ) ।

पेश ( उकार स्वर की मात्रा ) के लिए वर्ण के सामने और जेर ( इकार स्वर की मात्रा ) के लिए वर्ण के नीचे एक लाल बिन्दी लगाते थे । खलील-बिन-अहमद अरुज्जी ने सब से पहले स्वर की प्रत्येक मात्रा के लिए एक आकार नियत किया, जा कि इस समय प्रचलित है ।

बुद्धिमानों से वह बात छिपी नहीं है कि वर्ण तथा उसके अन्य अवयवों की सुन्दरता मनुष्यों को विभिन्न रुचियों पर निर्भर हुआ करती है । इसी लिए हर समुदाय इच्छानुसार अपनी एक प्रथक वर्णमाला एवं लिपि रखता है । इस प्रकार

१—खलील का जन्म १०० हिजरी में उत्तलाया जाता है, और कहा जाता है कि उसकी मृत्यु १७५ या १६० हिजरी में बमरा में हुई थी । उसने लेखन-कला पर कई पुस्तकें लिखी थी, और काव्य तथा कोष सम्बन्धी भी कई ग्रन्थ निमित्त किये थे ।

२—‘बर हुशियार दिल पोशीदा न बुआद’, इस वाक्यांश का अनुवाद ब्लाकमैन के भाषान्तर में नहीं है (Bloch Trans., p. 99) ।

३—प्राचीन लिपियाँ - अशोक के लेखों तथा सिक्कों की लिखावटों से प्रकट होता है कि ईसवी चौथी शताब्दी पूर्व से सन् ई० की तीसरी शताब्दी तक इस देश में दो प्रकार की लिपियों का प्रचार था । एक लिपि जो नागरी की तरह बाईं ओर से दाहिनी ओर की लिखी जाती थी, और दूसरी जो फारसी की तरह दाहिनी तरफ से बाईं तरफ की । ब्राह्मणों के इस समय तक के प्राप्त ग्रन्थों में लिपियों के नाम नहीं हैं, परन्तु जैनियों के ‘पञ्चवर्णा सूत्र’ और समवायांग सूत्र में निम्नलिखित अट्ठारह लिपियों के नाम हैं :—बंभी, जवणालि, दोसापुरिया, खरोट्टी, पुक्खरमारिया, भोग-बह्या, पहाराह्या, उयअतरिक्खिया, अक्खर-पिट्ठिया, तेवणह्या, णिराहत्तिया, अक्खलिवि, गणित्तलिवि, गधन्वलिवि, आदंसलिवि,

माहेसरी, दामिली और पोलिदी । भगवती सूत्र में ब्राह्मीलिपि को नमस्कार करके ( नमो बंभीण लिपिण ) ग्रंथ आरम्भ किया गया है । बौद्धों के ललितविस्तार ग्रंथ में, जिसमें बुद्ध का जीवन-चरित्र है और जिसका चीनी-भाषान्तर ३०८ ई० में हुआ था, ६४ लिपियों का उल्लेख मिलता है—ब्राह्मी, खरोट्टी, पुक्करमारी, अग, वग, मगप, मागल्य, मनुष्य, अगुलोय, शकारि, ब्रह्मबल्ली, द्राविड, कनारि, दणिण, उग्र, सख्या, अनुलोम, ऊर्ध्ववनु, दरद, खास्य, चीन, हृण, मध्याक्षर विस्तर, पुष्प, देव, नाग, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, महोरग, असुर, गरुड, मृगच्छक, चक्र, वायुमरु, भौमदेव, अन्तरिक्ष-देव, उत्तरकुरुद्वीप, अपरगौडादि, पूर्व विदेह, उत्क्षेप, निक्षेप, विक्षेप, प्रक्षेप, सागर, वज्र, लेखप्रतिलेख, अनुदुत, शास्त्रावर्त, गणावर्त, उच्छेपावर्त, विक्षेपावर्त, पादलिखित, द्विरुत्तरपदसन्धिलिखित, दशोत्तरपदसन्धिलिखित, अध्याहारिणी, सर्वस्त्वग्रहणी, विद्यानुलोम, विमिश्रित, ऋषितपस्तस, धरणीप्रेक्षणा, सर्वौषधनिप्यन्द, सर्वसार-मग्रहणी और सर्व भुतरुद्रग्रहणी ।

ब्राह्मीलिपि— ६६८ ई० में चीनी विश्वकोश ( फा युअन् तुलिन् ) निर्मित हुआ । उसमें भी ललितविस्तर में बतलाई हुई ६४ लिपियों के नाम आये हैं । उक्त

हिन्दी, सुरियानी ( सीरिया की ), यूनानी, इबरी ( यहूदी ), फ़िन्ती\* ( काप्टिक )  
मअफ़नी, कूफी, कश्मीरी, हबशी ( ऐबिसीनिया की ), रैहानी, अरबी,

ग्रंथ के अनुसार लिपिकला अन्वेषण दैवी-शक्ति-सम्पन्न तीन आचार्यों ने किया है । उनमें सबसे विख्यात ब्रह्मा है, जिसकी लिपि बाईं ओर से दाहनी ओर की पढ़ी जाती है । उससे उत्तरकर कि अ-लु-मे-टी ( खरोष्ट ) है, जिसकी लिपि दाहनी ओर से बाईं ओर की पढ़ी जाती है । सबसे न्यून श्रेणी का त्स-की है, जिसकी लिपि चीनी है और जो ऊपर से नीचे की पढ़ी जाती है । ब्रह्मा और खरोष्ट भारतवर्ष में हुये और त्स-की चीन में । ब्रह्मा और खरोष्ट को देवलांक में लिपियाँ प्राप्त हुईं, और त्स-की ने पत्थियों के पैरों के चिन्हों से अपनी लिपि निर्मित की ( *Indian Antiquary* Vol 31 p 21 ) । इस ग्रंथ से यह सिद्ध हो गया कि बाईं ओर से दाहनी ओर की लिखी जानेवाली लिपि ब्राह्मी और दाहनी ओर से बाईं ओर की लिखी जानेवाली खरोष्टी लिपि है । ब्राह्मी लिपि सार्वदेशिक होने के कारण जैन और बौद्धों के भी ग्रंथ इसी लिपि में लिखे गये हैं । लिपियों के प्रसंग में उनके ग्रंथों में ब्राह्मी लिपि को ही सर्वप्रथम स्थान दिया गया है । साथ ही उसका जन्म भी इसी देश में हुआ है ।

परन्तु पाश्चात्य विद्वान् आफ्रेडमूलर, प्रिन्सिप, सेनार्ट, विल्सन, कस्ट, सरविलियम जोन्स, स्टिविन्सन, बर्नेल, लेनोर्नेण्ट, डाके, आइज़कटेलर, बूलर और बार्नेट आदि ने ब्राह्मी लिपि ( पाली, इण्डियनपाली, साउथअशोक और लाट-लिपि आदि यूरोपियनों द्वारा ब्राह्मी लिपि के रक्खे हुये नाम ) की उत्पत्ति यूनानी लिपि से ( मिकन्दर के आने पर ), फ़िनिशियन लिपि से, कुछ अक्षर अरमइक अक्षरों से, कुछ अक्षर खरोष्टी

अक्षरों से, मेमिटिक से, मिस्र के अक्षरों से, फ़िनिशियन अक्षरों से उत्पन्न अक्षरों के हिमिओरेटिक वर्णों से, असीरिया की क्यूनीफ़ार्म लिपि से तथा मेविअन लिपि से मानी है । और भी कुछ विद्वानों ने इसी प्रकार की अटकलें लगाई हैं । परन्तु ये अनुमान दृढ़ न होने के कारण कई पाश्चात्य विद्वानों ने ही उनका खंडन किया है । एटवर्ड टामस ने लिखा है कि “ ब्राह्मी अक्षर भारतीयों के ही बनाये हुये हैं, और उनकी सरलता में उनकी बड़ी बुद्धिमानी प्रकट होती है ” ( *Numismatic Chronicle*, No 3 1883 ) । प्रो० डामन का मत है, “ विश्वास के साथ आग्रहपूर्वक कहा जा सकता है कि सब तर्क और अनुमान ब्राह्मी लिपि के स्वतन्त्र आविर्भूत होने के ही पक्ष में हैं ” ( *Journal of the Royal Asiatic Society*, p 102 1881, & *Indian Antiquary* Vol 35, p 253 ) । जनरल कनिहम ने लिखा है “ ब्राह्मी लिपि भारतीयों द्वारा ही निर्मित एक स्वतन्त्र लिपि है ” ( *Cunningham Coins of Ancient India*, Vol 1 p 52 ) । यदि ब्राह्मी और खरोष्टी दोनों लिपियाँ फ़िनिशियन से—जिसकी उत्पत्ति ईसवी सन् पूर्व की दसवीं शताब्दी के आस-पास मानी जाती है, निकली होती तो ईसवी सन् पूर्व की तीसरी शताब्दी में, अर्थात् अशोक के समय, उनमें बहुत कुछ समानता होनी चाहिये थी, जैसी कि अशोक के समय ब्राह्मी से निकली हुई ईसवी सन् की पाँचवीं और छठी शताब्दी की गुप्त और तेलगू-कन्नड़ी के बीच पाई जाती है । परन्तु उन दोनों ( ब्राह्मी और

पारसी ( फारसी ), रूमी, हिमीरी ( हिमिअरिटिक ), बर्बरी, अन्दुस्की  
रुहानी लिपियाँ हैं। इनके अनिरिक्त और भी वर्णमालाएँ हैं, जिनका कि उल्लेख

खरोष्ठी ) में एक भी अक्षर की समानता का  
न होना भी यही सिद्ध करता है कि ये दोनों  
लिपियाँ एक ही मूल लिपि से सर्वथा नहीं  
निकलीं, अर्थात् खरोष्ठी सेमिटिक से निकली  
हुई है और ब्राह्मी सेमिटिक से नहीं ( ओम्का,  
प्राचीन लिपिमाला, पृ० २६-२७ ) ।

ब्राह्मीलिपि के न तो अक्षर फ़िनिशियन  
या किसी अन्य लिपि से निकले हैं, और  
न उसकी बौद्ध और से दाहनी और लिपिने  
की प्रणाली किसी लिपि से बदल कर  
बनाई गई है। यह भारतवर्ष के आर्यों  
का अपनी रीति से उत्पन्न किया हुआ  
मौलिक आदिष्कार है। इसकी प्राचीनता  
और सर्वाङ्गसुन्दरता से चाहे इसका  
कर्ता ब्रह्मा देवता माना जाकर इसका  
नाम ब्राह्मी पड़ा, चाहे साधर-समाज ब्राह्मणों  
की लिपि होने से यह ब्राह्मलिपि कहलाई  
हो ( वही, पृ० २८, २९ ) ।

अभी तक, जो प्राचीन शिला-लेख  
मिले हैं, वे ईसवी सन् पूर्व को पाँचवीं  
शताब्दी के पहले के नहीं हैं। परन्तु  
साहित्य में प्रयुक्त या गौणरूप से जो  
हवाले मिले हैं वे बहुत प्राचीन समय तक  
जाते हैं। उन सब से सिद्ध होता है कि  
लेखन-कला सर्वसाधारण में प्रचलित एक  
पुरानी बात थी, जिसमें कोई अनोखापन  
न था। लेखन-कला अपनी प्रौढ़ावस्था  
में थी। उसके आरम्भिक विकास का पता  
नहीं चलता। ब्राह्मी लिपि अपनी प्रौढ़  
अवस्था में और पूर्ण व्यवहार में आती हुई  
मिलती है और उसका किसी बाहरी स्रोत  
और प्रभाव से निकलना सिद्ध नहीं होता  
( वही, पृ० ३० ) ।

खराष्ठी—यूरापियनों ने इसके बाक्ट्रियन्,  
बाक्ट्रियन् पाली, अरिथनोंपाली नार्थ,  
अशोक, काबुलियन्, गांधार आदि नाम  
रक्खे हैं। शहबाज़गढ़ी ( पंजाब के युसुफज़ई  
ज़िले में ) और मान्सेरा ( ज़िला हज़ारा )  
में चट्टानों पर खरोष्ठी लिपि में खुदे हुये,  
जो लेख मिले हैं, उन से प्रकट होता है कि  
उक्त लिपि ईसवी पूर्व की तीसरी शताब्दी  
में पंजाब के उत्तर पश्चिम गाँधार प्रदेश में  
प्रचलित थी। ईरानियों के चाँदी के अनेक  
मोटे सिक्के पर ब्राह्मी या खरोष्ठी लिपि में  
एक-एक अक्षर टप्पा किया हुआ मिला है,  
जिससे अनुमान होता है कि ईरानियों के ये  
सिक्के कदाचित् सिकन्दर से पहले के, ई० पू०  
की चौथी शताब्दी के हैं। बाक्ट्रियन् ग्रीक,  
शक, क्षत्रप, पार्थियन, कुछ कुशन वंशी  
तथा ओटुम्बरादि वंशी राजाओं के सिक्कों के  
दूसरी तरफ़ के प्राकृत लेख खरोष्ठी लिपि में  
ही लिखे हुये हैं, जो अशोक के पीछे के हैं।  
इसी प्रकार पीछे के ही कुछ ताम्र पत्र और  
शिला-लेख भी पंजाब तथा अफ़ग़ानिस्तान  
में मिले हैं।

हिन्दुस्तान का ईरान के साथ बहुत  
प्राचीन काल से सम्बन्ध रहा है। ईरान के  
हखामनी वंश के बादशाह साइरस (५५८-  
५३० ई० पू०) ने कन्नधार देश जीता था।  
उसके बाद दारा ने सिन्धु तक का प्रदेश  
अपने अधीन किया और वह ३३१ ई०  
पूर्व तक उसके हाथ में बना रहा। गामेला  
( अरबैला, जो कि मोसल और बग़दाद के  
के बीच में है ) के युद्ध में सिकन्दर ने दारा  
( तृतीय ) को पराजित किया। किन्तु ईरानियों  
का अधिकार किसी प्रकार कुछ समय तक

प्राचीन ग्रंथों में है। कुछ पद्यों में, इबरी वर्ण-माला, आदम हस्तहजारी की आविष्कृत बतलाई गई है। 'ग्रनेक व्यक्ति उसे इदरीस की ईजाद बतलाते हैं।

उक्त प्रदेश पर बना रहा। उधर असीरिया और बाबीलोनियों में यद्यपि क्यूनीफार्म लिपि का प्रचार था, तथापि व्यापार में वहाँ अरमइक् लिपि काम में आती थी। अक्रगास्तान और पंजाब में ईरानियों का अधिकार होने पर वहाँ भी शनैः शनैः अरमइक लिपि का प्रवेश हुआ। कदाचित् इसी लिपि से खरोष्ठी लिपि का जन्म हुआ हो।

“अरमइक् लिपि में केवल २२ अक्षर होने तथा स्वरों की अपूर्णता और उनमें ह्रस्व दीर्घ का भेद न होने एतद् स्वरों की मात्राओं का सर्वथा अभाव होने से वह यहाँ की भाषा के लिए सर्वथा उपयुक्त न थी। तो भी राजकीय लिपि होने के कारण यहाँ वालों में से किसी ने ईसवी सन् पूर्व वा पाँचवीं शताब्दी के आसपास उसके अक्षरों की संख्या बढ़ाकर, कितने एक को आवश्यकता के अनुसार बदल तथा स्वरों की मात्राओं की याचना वर उस पर से पड़े लिखने लगे, व्यापारियों तथा ग्रहणकारों के लिए काम चलाऊ खरोष्ठी लिपि बना ली हो। संभव है कि इसका निर्माता चान वालों के लेखानुसार खरोष्ठा नामक आचार्य (ब्राह्मण) हो, जिसके नाम पर से इसका नाम खरोष्ठी हुआ और यह भी संभव है कि तद्वद्विवा जैसे गावार के किसी प्राचीन विद्यालय में इसका प्रादुर्भाव हुआ हो (प्रा., लि. पृ. ३२)। खरोष्ठी लिपि के ११ अक्षर—काफ (क), ज़ाह्न (ज), दालेथ (द), नून (न), बेथ (ब), योध (य), रेथ (र), वाव (व), शेन (प), ससाथे (स) और हे (ह)—अरमइक्

अक्षरों से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। दूसरे यह दाहिनी ओर से बाईं ओर की लिखी जाती है। इस से यह स्पष्ट है कि यह लिपि सेमिटिक वर्ग (फ़िनिशियन्, हेब्रू, सीरिअक्, अरमइक्, इथियोपिक् और अरबी आदि पश्चिमी एशिया एवं आफ्रिका खंड की भाषाएँ तथा लिपियाँ, जो कि प्रसिद्ध नूह के पुत्र शेम की भाषाएँ और लिपियाँ कहलाती हैं) की है।

पंजाब में ईसवी सन् की तीसरी शताब्दी के आस-पास तक इसका कुछ-कुछ प्रचार बना रहा। फिर ब्राह्मी ने इसका स्थान ले लिया। हिन्दूकुश पर्वत के उत्तरी देशों तथा चीनी तुकिस्तान में यह एक शताब्दी पीछे तक प्रचलित रही। फिर यह अस्त हो गई।

ब्राह्मीलिपि की पुत्रियाँ—५०० ई० पूर्व आसपास से ३२० ई० के इधर उधर की खरोष्ठी को छोड़कर भारतवर्ष की समस्त लिपियाँ ब्राह्मी कहलाती हैं। इसके पश्चात् ब्राह्मी के दो प्रवाह हो गये, एक उत्तरी शैली की लिपियाँ, दूसरी दक्षिणी की। पहले उत्तरी शैली की लिपियों का वर्णन किया जाता है—

गुप्त-लिपि—उत्तरी भारत में गुप्त वंशी राजाओं के लेखों में ईसवी सन् की चौथी-पाँचवीं शताब्दी में विशेष-रूप से व्यवहृत होने के कारण इसका नाम गुप्त-लिपि रक्खा गया है।

कुटिल लिपि—इसके अक्षरों तथा स्वरों की मात्राएँ कुटिल होने के कारण इसका नाम कुटिल पड़ा। इसकी की छठी

कुछ लोग कहते हैं कि इदरीस ने मयूकली वर्ण-माला की पूर्ति की। अनेक व्यक्तियों का कथन है कि अमीरुलमोमनीन अली ने मयूकली लिपि में कृती लिपि का निर्माण किया था।

शताब्दी से नवीं शताब्दी तक यह प्रचलित रही। इसका जन्म गुप्त-लिपि से हुआ। नागरी और शारदा (काश्मीरी) इसकी (कुटिल की) पुत्रियाँ हैं।

नागरी—उत्तर भारत में इसके प्रचार का पता ई० नवीं शताब्दी के अन्त में लगता है। परन्तु दक्षिण में आठवीं शताब्दी में ही। दक्षिण में इसको 'नदिनागरी' कहते हैं। बँगला का जन्म प्राचीन नागरी की पूर्वी शाखा से हुआ। कैथी, महाजनी, राजस्थानी और गुजराती की उत्पत्ति भी नागरी से ही हुई।

शारदा—८०० ई० तक पंजाब और काश्मीर में कुटिल-लिपि का प्रचार था। उसके बाद उसी से शारदा लिपि बनी और शारदा से वर्तमान काश्मीरी और टाकरी लिपियाँ निकलीं। गुरुमुखी के अनेक अक्षर भी इसी से बने हैं।

बँगला—यह लिपि ई० दसवीं शताब्दी के लगभग नागरी लिपि से निकली। बँगला में वर्तमान बँगला, मैथिल, उड़िया और ११वीं शताब्दी के बाद की नेपाली लिपि बनी।

दक्षिणी शैली की लिपियों का विवरण:—

पश्चिमी—ई० की पाँचवीं शताब्दी से नवीं शताब्दी तक इस लिपि का चलन गुजरात, काठियावाड़, नासिक, त्वानदेश, सतारा, हैदराबाद के कुछ हिस्सों में, कोकण में और कुछ मैसूर राज्य में था। ई० की पाँचवीं शताब्दी में राजपूताना और मध्य-भारत में भी इसका कुछ-कुछ प्रचार हुआ। इस पर उत्तरी लिपि का बहुत कुछ प्रभाव

पड़ा है।

मध्यप्रदेशी—ई० की १२वीं श० से ८वीं श० तक इसके प्रचार का पता मध्य प्रदेश, हैदराबाद राज्य के उत्तरी भाग तथा बुंदेलखंड के कुछ हिस्सों में चलता है। इसके अक्षर चौखुटे प्रायः सन्दूक की आँत के होते हैं। उनमें गोलाई नहीं होती।

तेलगू-कनडी—यह लिपि महाराष्ट्र प्रदेश, शोलापुर, बीजापुर, बेलगाँव, धारवाड़, हैदराबाद राज्य के दक्षिणी भाग, मैसूर राज्य विजिगापट्टम, गोंदावरी, कृष्णा, कर्नूल, बिलारी, अनन्तपुर, कडापा और नीलोर आदि जिलों में पाई जाती है। १२वीं श० से १४वीं श० तक इसके कई रूपान्तर हुये। उन्हीं रूपान्तरों में वर्तमान तेलगू और कनडी लिपियाँ निकली हैं।

प्रथ-लिपि—यह लिपि मद्रास अर्थात् के उत्तरी और दक्षिणी अरकाट, मलेन, त्रिचनापल्ली, मद्रास और तिरुवला जिलों में पाई जाती है। ईसवी सन् की ७वीं श० से १२वीं श० तक इसके रूप बदलते-बदलते वर्तमान प्रथ-लिपि बन गई और उसी में वर्तमान मलालयम् और तुल लिपियाँ निकली।

कलिग-लिपि—यह लिपि ७वीं श० से ११वीं श० तक के गंगावशी राजाओं के दान पत्रों में चिक्काकोल और गजाम के प्रदेश में पाई जाती है। इसमें अक्षर सन्दूक की आकृति के होते हैं, परन्तु पिटले ताम्र-पत्रों में वे गोलाई लिये हुये हैं और उनमें तेलगू-कनडी, नागरी और प्रथ-लिपि का मिश्रण पाया जाता है।



वर्णों में सतह और दौर से भिन्नता हुआ करती है; जैसे कूफी वर्ण में १ दांग (  $\frac{1}{4}$  भाग ) दौर और शेष  $\frac{3}{4}$  भाग सतह होती है । मअकली वर्ण में सब सतह होती है । पुगनी इमारतो के लेख ( किताब ) अधिकतर इसी लिपि में लिखे हुये हैं । सर्वोत्तम लिखावट वह है जिसमें स्याही और सफेदी भले प्रकार से पृथक् पृथक् हो और पढ़ने में कोई भ्रम उत्पन्न न हो ।

इस समय ईरान, तूरान, रुम ( तुर्की ) और हिन्दुस्तान में सुलेखनकला की आठ रीतियाँ प्रचलित हैं, जिन में से प्रत्येक समुदाय एक-एक लिपि का अनुरक्त है । इनमें से निम्नलिखित छे लिपियों को इन्होंने मकला ने सन् ३१० हिजरी में, मअकली और कूफी वर्णों से आविष्कृत किया — सुलस, तौकीअ, मुहक्कक, नस्ख, रैहाँ, रिकाअ । एक वर्ग गुब्बार खत को भी इन्हीं में सम्मिलित करता है

तामिल-लिपि—मद्रास अहाते के उन हिस्सों में, जिनमें प्राचीन द्रविड लिपि का पहले से प्रचार था, उनमें तथा मलाबार प्रदेश के ७वीं श० से ११वीं श० तक के तमिल भाषा के लेखों में यह लिपि बराबर मिलती है । इसके और ग्रथ-लिपि के अक्षरों में अधिकतर समता है । वर्तमान तामिल लिपि इसी का रूपान्तर है ।

वट्टेल्लत्त—यह घसीट लिखी जानेवाली तामिल-लिपि कही जा सकती है । ई० सन् की ७वीं श० से १४वीं श० तक के चोल और पारड्य आदि वंशों के राजाओं के शिलालेखों और दान-पत्रों में यह पाई जाती है । इधर कुछ समय से इसका चयन बिल्कुल उठ गया है । ( लिपि-सम्बन्धी दोनों नोटों में रा० ब० पं० गौरीशङ्कर हीराचन्द्र ओझा की “भारतीय प्राचीन लिपि-माला” से विशेष सहायता ली गई है ) ।

४—नूह के एक पौत्र का नाम क्रिन्त था । मिश्र में जो क्रिन्ती बादशाह फरऊन (मूसा का समकालीन) के सेवक थे, वे उसी के वंशज थे । उनकी लिपि क्रिन्ती कहलाती है ।

५ ‘आईन’ में ‘अशआर हबरी’ पाठ

है, परन्तु सैयद अहमद ने आईन की टिप्पणियों में एक मूल प्रति के आधार पर ‘इस्फार हबरी’ पाठ माना है, जिसका अर्थ ‘हबरी या इरानी भाषा के ग्रथ, होता है ( सैयद अहमद, आईन, पृ० ७४, नाट १२ ) ।

६—आदम हफ्तहजारी इसलिफ़ कटलाता कि अनेक मुसलमानों के विश्वासानुसार उगादी मृत्यु के समय तक भूलोक-वानियों की संख्या ७००० तक पहुँच चुकी थी । मुल्ला अबुलकदिर बदायुनी के मत में उम ( मुल्ला ) के समय तक आदम को ७००० वर्षों का चुके थे । अबुलकदिर से भी पहले ज़ियाउद्दीन बर्नी ने ‘तारीख फ़ीरोज़-शाही’ की भूमिका में लिखा था कि खलीफ़ा उमर आदम के ७००० वर्ष पीछे हुआ ।

७—एक पैगम्बर, जो अपने जीवन में ही स्वर्ग ( जन्नत ) पहुँच गया था ।

१—सतह को कशिश या मद ( सरल रेखा ) कहते हैं, और दौर दायरे ( वर्तुल-कार रेखा ) का नाम है । जैसे बे, पे ( ب پ ) में सतह है और सीन तथा नून ( س ن ) में दौर ।

और उसके आविष्कृत सात खत मानता है। कुछ लोग नस्ख लिपि को याकूत मुस्तश्मि<sup>१</sup> की निर्मित समझते हैं। सुल्स और नस्ख खत में दौरे एक तिहाई और सतह दो तिहाई होती है। पहले (सुल्स) का नाम जली<sup>२</sup> और पिछले (नस्ख) का खफी है। तौकोअ और रिकाअ में तीन चौथाई दायरे और शेष सतह ढांती है। पूर्व रीत्यनुसार ये दोनों भी क्रमशः जली और खफी कहलाते हैं। मोहक्कक और रैहाँ में तीन चौथाई सतह होती है। उसी प्रकार से मोहक्कक जली और रैहाँ खफी कहलाता है।

मुलेखाचार्यों में, अली इब्न हिलाल ने, जो कि इब्नेबच्चाब<sup>३</sup> के नाम से विख्यात है, छे खतों को अच्छा लिखा, परन्तु याकूत ने उनको पूर्णता को पहुँचाया। याकूत

१—खलीफा मुस्तश्मम बिल्ला बगदाद का अंतिम खलीफा था, जिसने १०४२ ई० से १२२८ ई० तक शासन किया। ६२६ हिजरी में तातारी और मुगल बगदाद पहुँचे। चंगेज़ख़ा का पोता हलागू उनका सरदार था। सेना ने लूटमार की। मुस्तश्मम का वज़ीर इब्न अलक़मी विश्वासघातक था। वह गुप्तरूप से हलागू से मिला हुआ था। उसने खलीफा की सेना इधर-उधर भेज दी, और जो बचा वह थोड़ी होने के कारण हार गई। खलीफा दो महीने तक घेरे में रहा। वज़ीर ने फिर चाल चली। सन्धि कराने की चर्चा करते हुये उसने कहा कि 'आप सब सरदारों के साथ चलिये। हलागू आपकी ताजपोशी करेगा, और अपनी पुत्री का विवाह आपके पुत्र अब्दुलकर से करेगा।' खलीफा उसकी बातों में आकर सरदारों के साथ हलागू के ख़ेमे में गया। उसने उन सबको फ़त्ल कर डाला। इस दुर्घटना में कई लाख आदमी मारे गये। बगदाद पर से अब्बासियों का अधिकार उठ गया। खलीफा सुशिक्षित था।

२—स्पष्ट। कालिखों के प्रयोग में वह अक्षर जो मोटे हों और स्याही से भरी हुई पूरी क़लम से लिखे गये हों (शायसुल्लुगात)

खफी, जली का उलटा।

३—विभिन्न इतिहासों से पता चलता है कि इब्न मकला, इब्न बच्चाब और याकूत सबसे पुराने मुशन्वीस हैं, जिनका सक्षिप्त वृत्तान्त नीचे दिया जाता है—

इब्न मकला का पूरा नाम अबूअली मोहम्मद इब्नअली इब्नहसन इब्न मक़ला था। वह बगदाद के तीन खलीफ़ों मुक्तदिर बिल्लाह, अलकादिर बिल्लाह और अर्राज़ी बिल्लाह, का (जिन्होंने सन् १०७ ई० से १४० ई० तक शासन किया) मन्त्री रहा। अंतिम खलीफा ने, इब्न मक़ला का दाहना हाथ कटवा डाला था। १३८—१३९ ई० में जेलख़ाने के अन्दर उसका शरीरपात हो गया।

इब्न बच्चाब का दूसरा नाम अबुल-हसन अली इब्नहिलाल था। यह बगदाद के पच्चीसवें खलीफा अलकादिर बिल्लाह (११२—१०३० ई०) के अधिकार में रहा। १०२५ ई० में इसका शरीरपात हो गया।

याकूत का नाम शेख़ जमालुद्दीन था। वह बगदाद में पैदा हुआ और वहाँ के सैंतीसवें और अन्तिम खलीफा मुस्तश्मम बिल्लाह का पुस्तकाध्यक्ष रहा। खलीफा ने

के छे शिष्य ख्यातनामा हुये :— (१) शेख अहमद जोकि शेखजादा सुहरवर्दी के नाम से प्रसिद्ध है, (२) अरगून काबुली, (३) मौलाना यूसुफशाह मुशहदी, (४) मौ० मुबारकशाह जरीरुलम, (५) हैदर गुंदानवीस ( जनी-नेखक ), (६) मोर एहिया । इनके अतिरिक्त सूफी नसरुल्ला, जाकि सन्ने-इराकी भी कहलाता है, अरकून अब्दुल्ला ख्वाजा अब्दुल्ला सैरफी, हाजी मोहम्मद, मौ० अब्दुल्ला आशपन्न; मौ० मुहो शीराजी, मुईनुद्दीन तनूरी; शमसुद्दीन खताई; अब्दुर्रहोम खल्लूली, अब्दुलहई, मौ० जाफर तबरेजी, मौ० शाह मशहदी, मौ० मारुफ बगदादी, मौ० शमसुद्दीन बायसनगरी; मुईनुद्दीन फराही, अब्दुल हक सन्नवारी, मौ० नेमतुल्ला बन्वाय, ख्वाजगी मोमिने-मरवारीद, जो कागज को तरह-तरह के रंगों का बनाने तथा उन पर छिड़की जानेवाली चूकनों का आविष्कारक है मिर्जा शाहरूख स पुत्र सुल्तान इब्राहीम, मौ० मोहम्मद हकीम हाफिज, मौ० महमूद सियाउश, मौ० जमानुद्दीन हुसेन; मौ० पीरमोहम्मद और मोर फज्जुलहक कजवीली ने भी उपर्युक्त छद्म खतों को बढ़िया लिखा ।

मातवाँ खत, तालीक है । यह रिकाअ और तौकीअ में निकाला गया है । इसमें सतह बहुत कम होती है । ख्वाजा ताज सल्मानोर ने—जो कि उपर्युक्त छे खतों का भी सुनेखक था—इस खत को उत्तमता का पहेचाया । कुछ लोग कहते हैं कि तालीक खत उसी का आविष्कृत है । वर्तमानकाल के खशनवीसों में सुल्तान अबूसईद मिर्जा के मुशी मौ० अब्दुल हई ने इस खत को बहुत सुन्दर लिखा है । मौ० दर्वेश, अमीर मंसूर, मौ० इब्राहीम अस्तगवादी, ख्वाजा

उसको कुछ काल के लिए जेल भेज दिया, क्योंकि उसके विचार शिया मत के थे । वह १२५८ ई० में हलागू खाँ के क़त्ल ग्राम में बच गया था । १२६७ ई० में १२० वर्ष की अवस्था में उसका शरीर छूट गया । ( मिरानुलआलम के आधार पर ) ।

१—वह १५वीं शताब्दी के आरम्भ में मिर्जा शाहराज़ ( १४०४—१४४७ ई० ) के समय में मौजूद था ।

२—वह सावह के प्रसिद्ध शायर सल्मान ( मृत्यु सन् ७६६ ई० ) का समकालीन और प्रतिद्वन्द्वी था । मालूम होता है कि क़ज़्र ( बगदाद का एक हिस्सा ) के क़ज़ीर

मारुफ के समय में बगदाद में 'मारुफ' नाम का प्रचार हा चला था ।

३—'मक्तूबात' और आईन की कुछ प्रतियों के अनुसार सुलैमानो ।

४—ब्लाकमैन और मैयद अहमद दोनों की सम्पादित की हुई मूल पुस्तकों में 'अब्दुल हई व मुशी सुल्तान अबूसईद मिर्जा' पाठ है, जो अशुद्ध है । 'बाय' अर्थात् और नहीं चाहिये ( Blochman's trans, p 101, n 3 ) ।

५—मौ० दद्वेश मोहम्मद खुगमान के बादशाह सुल्तान हुसेन मिर्जा ( १४७०—१५०५ ई० ) के वज़ीर अमीरअली शेर का

अख्तियार<sup>१</sup>, मुंशी जमालुद्दीन, मोहम्मद क़ज़वीनी, मौ० इदरीस और ख्वाजा मोहम्मदहुसेन मुंशी भी तालीक लेखकों में शिरोमणि होगये हैं। सम्राट् के मीर मुंशी अशरफ़ख़ाँ ने इस ख़त को ऊँचे दर्ज पर पहुँचाया।

आठवाँ ख़त नस्तालीक़ है। इसमें सब दायरे ही होते हैं। साहब-किरान (तैमूर) के समय में ख्वाजा मीरअली तबरेज़ी ने नस्तख़ और तालीक़ ख़तों से इसे निकाला था। पर इस बात पर विश्वास नहीं होता; क्योंकि नस्तालीक़ ख़त में लिखी हुई ऐसी किताबें दृष्टिगोचर हुयी हैं, जो तैमूर के समय से पूर्व की लिखी हुई थीं। मीरअली के शिष्यों में से दो व्यक्ति आगे बढ़ गये, एक तो मौलाना जाफ़र तबरेज़ी और दूसरा मौ० अज़हर। इनके अतिरिक्त इस ख़त के मुलेख़ों में मौ० मोहम्मद औबही<sup>४</sup> है। लेखन-कला में उसके समकक्ष विरले हो निकलेंगे। एक और उत्तम लेखक मौ० बारी हिरवी है। इन सब से बढ़कर मौ० सुल्तान अली<sup>५</sup> मशहदी है। यद्यपि इसने मौ० अज़हर से शिक्षा ग्रहण नहीं की तथापि उसकी कृतियों से बहुत ज्ञान प्राप्त किया। मौ० सुल्तान-अली के छे शिष्य प्रसिद्ध हैं—सुल्तान मोहम्मद ख़दा<sup>६</sup>, सुल्तान मोहम्मद नूर,

मिश्र या। वह जामी कवि का संरक्षक था। उसने पीछे से फ़ारम के शाह जुनैद सरुवी (१४११—१५२५ ई०) के यहाँ नोकरी कर ली थी (मन्शासिर रहीमी)।

१—यह सुल्तान हुसेन मिर्ज़ा का मीर मुंशी था। प्रथमोक्त ख़ुशनवीस का सम-वालीन और प्रतिद्वन्दी था।

२—मशहद के या 'तबक़ाते-अक़बरी' के अनुसार, अरबशाही के मोहम्मद अस्फ़र नामक एक सेयद की यह उपाधि थी। उसने हुमायूँ के पास, मीर मुंशी, मीर अर्ज़ी और मीर माली के पदों पर रहकर, सेवा की थी। तरदीबेग के दिल्ली में भागने पर वह उसके साथ गया था। फिर बैरम द्वारा कैद किये जाने के बाद वह मक्का गया। जय १६८ हिजरी में बैरम का प्रभुत्व नष्ट हो गया तो वह अक़बर के दरबार में फिर उपस्थित हुआ और अशरफ़ख़ाँ की उपाधि प्राप्त की। इस के परचात वह मुनइमख़ाँ की अध्यक्षता में

बग़ाल में रहा। १७३ हि० में वह मर गया। अबुलफ़ज़ल ने उसको मसबदारों की सूची में दो हज़ारी लिखा है। बदायुनी ने उसका ज़िक्र शायरों में किया है (देखिये द्वितीय ग्रंथ में मसबदार ७४ का जीवन चरित्र)।

३—'मिरात' में मीरअली के एक तोसरे शिष्य मौ० ख़वाजा मोहम्मद का जी नाम आया है, और लिखा है कि वह अपनी कृतियों में अपने उस्ताद का नाम देता था, किन्तु वह अस्मन्तुष्ट नहीं होता था।

४—औबहनिवासी, औबह हिरात के निकट है।

५—वह ख़ुरासान के बादशाह सुल्तान हुसेन मिर्ज़ा (१४७०—१५०५ ई०) के वज़ीर अमीरअली शेर का मित्र था। ११० हि० में उसका परलोकवास हो गया।

६—सदा प्रसन्न रहने के कारण वह ख़दा<sup>६</sup> कहलाता था। वह भी अमीरअली

मौ० अलाउद्दीन हिरवी, मौ० जैनुद्दीन, मौ० अबदी नीशापुरी, मोहम्मद कासिम शादीशाह इन में से प्रत्येक ने उक्त खत को एक विशेष रीति से लिखा । इस प्रकार मनमोहक शैली-लेखको का एक समुदाय हो गया । मौ० सुल्तान अली कायिनो<sup>२</sup> मौ० सुल्तान अली<sup>३</sup> मशहदी और मौ० हिजराती<sup>४</sup> ने भी इस खत के लिखने में योग्यता प्राप्त की है । इन लोगों के बाद ख़ुशानवीसों का सरदार मौ० मीरअली हिरवी<sup>५</sup> है । यद्यपि प्रत्यक्षरूप से उसने मौ० जैनुद्दीन की शागिर्दी की, परन्तु मौ० सुल्तान अली की कृतियों को देख कर तथा उनकी अनुकृति ( नक़ल ) करके इस कला का विशेषज्ञ हुआ । उसने अपने बुद्धि-विकास से लेखन-कला-प्रणाली में परिवर्तन करके नई परिपाटी स्थापित की, और स्मारक-स्वरूप अपनी अनेक उत्कृष्ट कृतियाँ छोड़ी । किसी व्यक्ति ने उममें पूछा 'तुम्हारी और मौलाना की लिखावट में क्या अंतर है ?' उत्तर में उसने कहा, 'मैंने भी नस्तालीक़ खत का पराकाष्ठा को पहुँचाया है, परन्तु उसकी लिखावट की लावण्यता ही कुछ और है ।'

इन सुलेखकों के अतिरिक्त शाह महमूद<sup>६</sup> नीशापुरी, महमूद इस्टाक, शमसुद्दीन किरमानी, मौ० जमशेद मोअम्माई (घुमाव-फिराव की इबारत लिखने वाला), सुल्तान हुसेन खजिरी, मौ० णशी, गयासुद्दीन मुज दिव (मुलम्मा करनेवाला), मौ० अब्दुस्समद, मौ० मालिक, मौ० अब्दुल करीम, मौ० अब्दुर्रहीम खवारज्मी,

शेर का मित्र था । "मिरआतुलआलम" के अनुसार १११ हि० में उसकी मृत्यु हो गई । परन्तु दिक्की के, जा हस्तलिखित ग्रंथ गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया के अधिकार में है, उनमें १२० हि० की खंदों की लिखी हुई 'तज़किरतुलओलिया' की एक प्रति भी है । इसमें उसकी मृत्यु का वर्ष अनिश्चित है (Blo hmann's trans, p 617, n) ।

१—'मकतूबात' में अलाउद्दीन मोहम्मद हिरवी ।

२—वह सुल्तान हुसेन मिर्ज़ा के बच्चों का शिक्षक था । खुरामान के दक्षिण-पूर्व की ओर अफगानिस्तान की सीमा के निकट एक नगर काहल या गायान है, वह वहीं का रहनेवाला था । ११४ हि० में उसका देहांत हो गया ।

३—'मकतूबात', के अनुसार सुल्तान अली शेर मशहदी ।

४—अमीर अली शेर का मित्र और कवि । १२१ हि० में ससार-त्याग किया ।

५—मीर अली सैयद वंश का था । पद्य-रचना में वह दख़ल ( प्रवेश, बुद्धिमत्ता के साथ दूसरे कवि की रचना का कोई अंश अपनी रचना में खपाना ) का उस्ताद था । दिक्की के मीर खुमरो के पुत्र मीरअहमद तथा बैरमख़ां ख़ानख़ाना के साथ उसका कवियों में ज़िक्र आया है । उसकी मृत्यु १२४ हि० में हुई ।

६—'मकतूबात' और 'मिरआत' में शाह मोहम्मद नीशापुरी । उक्त दोनों पुस्तकों में मीर सैयद अहमद नामक एक और ख़ुशानवीस का उल्लेख मिलता है ।

मौ० शेखमोहम्मद, मौ० शाह महमूद जरीकलम, मौ० मोहम्मद हुमेन तबरेजी१, मौ० हसनअली मशहदी, मीर मुइज्ज काशी (साधन निवासी), मिर्जा इब्राहिम अस्फहानी तथा कुछ अन्य व्यक्तियों ने भी इस कला में अपना बहुमूल्य जीवन लगाया है।

सम्राट के गुण-ग्राही तथा कला-प्रेमी हान के कारण तरह-तरह के मतों ने बहुत उन्नति की और विचित्र काम करने वाले गुणिया की बहुत वृद्धि हा गई

१—वह 'मिरआत' उल्लिखित प्रसिद्ध मुश्नवीस इमाद का उस्ताद था।

२—१००० हि० में वह मर गया।

३—मुलेखन-कला का स्थान भारत में, फारस और चीन में सदा से बहुत उच्च रहा है। मुगल-काल में चित्र-कला में इसका विशेष सम्बन्ध रहा है। किसी हस्तलिखित ग्रन्थ का लिपि-कौशल चित्रों की अपेक्षा अधिक मूल्यवान् और महत्वपूर्ण समझा जाता था (Edwards & Garrett *Mughal Rule in India*, p. 327, 1930)। मुगल-कालीन चित्रकार परस्परगत कलाकार मात्र समझे जाते थे, जो कि बहुत समय तक शिक्षा ग्रहण करने के परवान् शर्त पर, पक्के चित्रकार हो पाते थे, किन्तु मुगलद्वारा उस देवीगुण के भाग्यवान् अधिकारी के रूप में लाक-दृष्टि में स्थान पाते थे, जो कि शिक्षा और अभ्यास द्वारा कदापि प्राप्त नहीं हो सकता था (Percy Brown *Indian Painting under the Mughals*, p. 21)। १६वीं शताब्दी के आरम्भ में फारस में मुश्नवीसी की ओर लोगों की अभिरुचि बनी हुई थी। जानमलकम् के शब्दों में लेखन-कला पटु दर्वेशमजीद का केवल चार पत्रियों के लिए एक गुणज्ञ ने ७ पोण्ड दिये थे। यद्यपि उक्त मुलेखन-कला विशारद कई साल पहले ही मर चुका था (Malcolm, *History of Persia*, 1829 Vol II, p. 421, n)।

मुगल-काल में चित्रकारी और मुलेखन कला साथ-साथ चलती थी, अर्थात् मुस्विद और खशनीस "हुधा साथ-साथ काम करते थे। अनेक चित्रों के पृष्ठ भाग पर बड़े सुन्दर अक्षरों में किसी लिपि-कला-विशारद की लिपनी में कुछ शेर या उबारत लिखी रहता थी। उस इमारत का चित्र में कुछ भी सम्बन्ध न होता था। उस पर मुश्नवीस अपने हस्ताक्षर करता था और लिखने की तराजू भी लिखता था, जिसके कारण वह पणिया मर में चित्रकार से अधिक ग्यातनामा हो जाता था। इसी से मुगलकालीन चित्र-कला के सम्बन्ध में फ़ौज लेखक एम० हुजर्ट को लिखना पड़ा कि पौराण्य देशों में मुसलमानों की चित्रकारी मुलेखनकला की चेरी है (M. Hunt *Les Calligraphes et les Miniaturistes de l'Orient Musulman*, Paris, 1908)।

कहा जाता है कि १२०४ ई० में बाबर ने 'बाबरी' नामक लेखन-शली का प्रचार किया (N. N. Law *Promotion of Learning in India*, p. 123)। परन्तु बाबर और हुमायूँ दोनों के समय में लेखन-कला-सम्बन्धी कोई विशेष बात ज्ञात नहीं होती। वास्तव में नद अकबर है जिमने प्रत्येक कला को चमकाया। उनमें एक लेखन-कला भी है। फरिस्ता के अनुसार अकबर ने 'दास्ताने-अमीर हमजा' को सुन्दर अक्षरों में लिखने की आज्ञा दी थी (Ibid., p. 142)।

है। विशेषकर नस्तालीक़ खत का चलन बहुत ज्यादा होगया है। एक उत्तम लेखक, जिसको राज-सिंहासन की छाया में, इस चित्ताकर्षक लिखावट का आचार्य कह सकते हैं, मोहम्मद हुमेन कश्मीरी है। वह लोक में ख़र्रि कलम के नाम से प्रसिद्ध है। वह मौ० अब्दुल अज़ीज़ का शिष्य है, पर लेखन-कला में वह उससे भी आगे निकल गया है। उसका मर्दे और दायरे परस्पर एक दूसरे के अनुरूप होते हैं। लेखन-कला विशारद उसको मुल्ला मीरअली के जोड़ का मानते हैं। वर्तमानकाल के और ख़ुशानवीसों में प्रसिद्ध मुल्ला मीरअली का पुत्र मौ० बाक़र, मोहम्मद अमीन मशहदी, मीर हुमेन कुलंगी, मौलाना अब्दुल हई, मौलाना दौरी<sup>१</sup>, मौलाना अब्दुर्रहीम, मीर अब्दुल्ला, निज़ामी कजवीनी, अलीचमन कश्मीरी और नरुल्ला कासिम अरसलां भी इसी प्रतापी राज्य के विकास से ख्यातनामा होगये हैं।

सम्राट ने अपने ज्ञान के प्रकाश में पुस्तकालय<sup>२</sup> को कई भागों में विभाजित किया है। कुछ भाग राज-प्रासाद के अन्दर हैं और कुछ बाहर। फिर प्रत्येक भाग

उसने सुलेखाचार्यों को हर प्रकार में प्रोत्साहन दिया। अकबर के समय की अनेक लिखित वस्तुएँ इस बात की साक्ष्य दे रही हैं। उसके सिक्कों को तैयार कराने के लिये एक कवि, एक सुलेखाचार्य, एक भास्कर और एक तर्क की आवश्यकता होती थी। इमारतों पर की इबारत केवल ज्ञान-ज्योति ही परिवर्द्धित नहीं करती, वरन् लेखन-कला की उत्कृष्टता भी प्रदर्शित करती है। जहांगीर ने भी सुलेखन-कला को जारी रखा, और सुलिपि-लेखकों को अच्छे ग्रंथ लिखने में वह बहुत पारिश्रमिक देता रहा। शाहजहाँ के समय में चित्रकार मीरहाशिम ने ख़ुशानवीस की हँसियत से बड़ी ख्याति प्राप्त की थी। औरंगज़ेब अपने पुस्तकाध्यक्ष जवाहर-रज़म पर बड़ी कृपा करता था। वास्तव में लेखन-कला में वह बड़ा ही निपुण था। औरंगज़ेब स्वतः बड़ा उत्तम लेखक था। उसके लिए यह प्रसिद्ध है कि वह अपने वैयक्तिक व्यय का एक अंश 'कुरान' को अपने हाथ में लिखकर पूरा

करता था (J N Sarkar, Anecdotes of Aurangzeb p. 52)।

मुगल-काल में सुलेखन-कला का उपयोग कई प्रकार से होता था—क़िता लिखने में, मोहरें और छापें खोदने में, उत्तम वाक्य या कुरान की आयतें लिखकर इमारतों को सजाने में।

भारतवर्ष में सुलेखन-कला की अभिरुचि आज भी नष्ट नहीं हुई है, किन्तु लाभप्रद न होने के कारण उसका चलन कम हो गया है (Smith, Akbar the Great Moghul, p. 426, 1927)।

१—सुल्तान बायज़ीद हिरवी का कविता-सम्बन्धी नाम दौरी था। अकबर ने उसको कातिबुलमुल्क (साम्राज्य-लेखक) की उपाधि दी थी। उसका शागिर्द ख्वाजा मुहम्मद हुसेन अहदी था (Badaoni, II, p. 394)।

२—'आइने-अकबरी' में टाइप या टाइप से छपी हुई पुस्तकों का बिल्कुल उल्लेख नहीं पाया जाता। भारतवर्ष में सबसे पहले छपाई का काम ईसाई पादरियों ने गोआ

कई उपभागों में बंटा हुआ है। विद्या-विद्या और विषय-विषय की पुस्तकों की, मूल्य के अनुसार श्रेणियाँ नियत हैं। पद्य, गद्य, हिन्दी, फ़ारसी, ग़ुलानी, कश्मीरी और अरबी के ग्रंथ पृथक्-पृथक् क्रमबद्ध किये गये हैं। सम्राट् उनका अध्ययन इस प्रकार करता है। अनुभवी बुद्धिमान् नित्यप्रति सम्राट् की सेवा में उपस्थित होकर उनको सुनाते हैं। वह प्रत्येक ग्रंथ को आदि में अन्त तक सुनता है। नित्य-प्रति जहाँ तक पुस्तक सुनाई जा चुकती है, सम्राट् अपनी मोती बरसाने

और रायचोल में १६वीं शताब्दी के मध्य में आरम्भ किया था। (Smith, Akbar, p 424 25)। सबसे पहली मुद्रित पुस्तक गनसाल्वेज़ की 'डाक्टिना क्रिश्चियाना' (Giovanni Gonsalves, Doctrina Christiana) है, उसीने १५७७ ई० में तामिल के अक्षर तैयार किये। १५७८ ई० में 'फ़लास सैंक्टोरम' (Flos Sanctorum) नामक पुस्तक निकली। १६७६ ई० में कोचीन के अम्बलकट्टा में तामुलिक डिक्शनरी' (by Father Antonio de Proenza) प्रकाशित हुई। फिर डेनमार्क के मिशनरियों ने ट्रेंकोवर में बहुत-सी पुस्तकें छपायी (Blochmann's trans, p 99-100)। लगभग १८वीं शताब्दी के अन्त तक—जब कि कुछ बंगला भाषा की पुस्तकें यूरोपियनों की देखरेख में मुद्रित हुई थी—किसी भी हिन्दुस्तानी राज्य या किसी व्यक्ति ने टाइप की मुद्रण-कला का उपयोग नहीं किया था। अकबर को टाइप की छपी हुई पुस्तकों की अपेक्षा हस्त-लिखित पुस्तकों से अधिक प्रेम था। पादरियों ने उसको उत्तमोत्तम पुस्तकें भेंट भी की थीं, परन्तु उसने उनको उपेक्षा की दृष्टि से देखकर उनसे अपना पिंड छुड़ाया। कारण स्पष्ट है, उस समय की लिखाई छपाई की अपेक्षा इयादा अच्छी थी। फिर नस्तालीक़ खत का सर्वोत्कृष्ट टाइप तो इस बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक नहीं तैयार

हो सका। उसकी हस्त-लिखित पुस्तकों का छपी पुस्तकें मुकाबिला नहीं कर सकती थी।

अकबर के पुस्तकालय में सब हस्त-लिखित ग्रंथ थे। वह पुस्तकालय उस समय समार में सबसे बड़ा पुस्तकालय था, कदाचित् उससे पहले भी कोई उतना बड़ा ग्रन्थालय न था (Smith, ibid, p 424)। जब अक्टोबर १६०२ ई० में उसकी मृत्यु के बाद आगरा दुर्ग में उसके सुरक्षित कोषों की सूची तैयार की गई थी तो वे ग्रंथ, जो कि महान् पुरुषों और अधिकतर बहुत प्राचीन एवं गंभीर लेखकों द्वारा लिखे गये थे तथा जिनमें अत्यधिक मूल्यवाली जिल्दें चढ़ी हुई थी और जिनमें से अनेक अत्युत्कृष्ट कलाकारों के बहुमूल्य चित्रा से विभूषित थे, सख्या में २४००० थे और उनका मूल्य लगभग ६४,६३,७३१ रुपए था। हर पुस्तक का औसत मूल्य २७ पौण्ड से ३० पौण्ड तक था। १६६२ ई० में फ़ैज़ी के स्वर्गवास के पश्चात् उसके पुस्तकालय के ४३०० चुने हुये ग्रंथ भी अकबर के ग्रन्थालय में संग्रहीत हो गये थे (Smith, ibid)। ये अंक सरकारी रजिस्ट्रारों से दो यूरोपियन लेखकों—मैनरिक और डीलाइट (Manrique & Delaet) ने लिये थे (J R A S, April 1915)।

१—'देखिये! अरबी की पुस्तकें अन्त में रखी गई हैं' (Blochmann's trans, p 103, n)।



वाली क्रलम से वहाँ पर स्वयम् निशान लगा देता है, और पठित पृष्ठों की संख्या के अनुसार पाठक को रुपये और अशकियों से पुरस्कृत करता है। प्रसिद्ध पुस्तकों में विगती ही होगी, जो सम्राट की मभा में न सुनाई गई हो। पूर्वजो

१—यह आश्चर्य की बात है कि जो सम्राट इतना विद्वान्, प्रखर बुद्धि और सुयोग्य था वह लिखना पढ़ना जानता था यह बात अभी तक निश्चय नहीं हो पाई है। उसकी शिक्षा-सम्बन्धी जानकारी की बातें नीचे दी जाती हैं। नवम्बर १५४७ ई० में जब वह लगभग ५ बरस (Smith Akbar, p. 22, ४ वर्ष, ४ मास, ४ दिन, जकाउल्ला, इकबालनामा अकबरी पृ० ११) का हुआ तो कुल की पद्धति के अनुसार हुमायूँ ने उसकी प्रारम्भिक शिक्षा का प्रबन्ध किया। मुहूर्त के समय अकबर वहीं छिप रहा, डूँडे जाने पर भी नहीं मिला। पहले मुल्लाजादा असामुद्दीन उसका शिक्षक नियत हुआ। वह स्वयं कबूतरबाज़ था, उसने शिष्य को अक्षराभ्यास कराने के स्थान में कबूतरबाज़ी सिखलाई। इसलिए वह हटाया गया, और बायज़ीद का पढ़ाने का कार्य सौंपा गया। उसके असफल होने पर मुल्लाओं के नाम पर पामे डाले गये। मौ० अब्दुलक़ादिर का नाम निकलने पर वह शिक्षक नियत हुआ। इसी प्रकार एक और शिक्षक नियत हुआ। हुमायूँ उन दिनों एक स्थान पर स्थिर नहीं रह पाता था, इसलिए उसकी देखरेख का भार दूसरों पर अवलंबित था। लगभग दस वर्ष का होने पर भी वह पढ़ने में ध्यान नहीं देता था। उसे घोड़ों, ऊटों, कुत्तों, कबूतरों, सवारी-शिकारी, निशानाबाज़ी, खेल-कूद आदि का बड़ा शौक था। परिणामस्वरूप इन बातों में वह दक्ष भी हो गया। शिक्षा की ओर से

उसकी उपेक्षा देखकर एक व्यक्ति ने इसके पहले ही हुमायूँ से शिकायत भी की थी, जिस पर हुमायूँ ने अकबर को चेतावनी देने हुये एक महत्वपूर्ण पत्र भी लिखा था जिसके प्रमुख स्थान पर 'निज़ामी' शायर का यह शेर लिखा था—'गाफिल मनशी न वक्र बाज़ी अस्त, वक्र हुनरस्तो कारसाज़ी अस्त।' अर्थात् असावधान मत बैठ, यह समय खेलने का नहीं है, समय गुण प्राप्त का है और काम बनाने का। पर अकबर ने इस पर भी उचित ध्यान नहीं दिया। २४ जनवरी १५५६ ई० को हुमायूँ की मृत्यु के बाद अकबर की शिक्षा का भार उसके सरलक पर आ पड़ा। अक्टोबर १५५८ ई० में जब वह आगरा आया तो फ़ारस का एक शरणार्थी अब्दुल-लतीफ उसका शिक्षक नियत हुआ। बदायूँी ने उसका 'बदप्पन का आदर्श' माना है। यह पहला व्यक्ति था, जिसने अकबर को 'मुलह कुल' (सबसे मेल, निश्चय प्रेम) का सिद्धान्त सिखलाया। परन्तु अपने पूर्ववर्तियों के समान वह आदर्श भी असफल हुआ। हा, अकबर ने भीर सैयदअली और ख्वाजा अब्दुस्समद की देखरेख में साधारण चित्रकारी का अभ्यास किया, किन्तु लिखने पढ़ने पर ध्यान नहीं दिया, वरन् उम्मी (कुपड़) ही रहा (Smith ibid, p. 41)। उसने दूसरे लोगों को पुस्तकें सुनाने के लिए नोकर रक्खा। वह कुशाग्र-बुद्धि था। उसमें धारणा शक्ति गजब की थी। जो सुनता था, वह उसके हृदय पर जम जाता

का कोई इतिहास, विद्याओं से सम्बन्ध रखनेवाली कोई अद्भुत बात और दर्शन शास्त्र का कोई भी अनोखा विषय ऐसा न होगा, जो इस न्यायप्रिय बुद्धिमानों के नेता को स्मरण न हो। वह पुस्तक को बारम्बार सुनने से नहीं ऊबता, वरन् उसे और अधिक चाव से सुनता है। अखलाके-नासिरी, कीमियाए-सआदत, क़ाबूसनामा, मक्तूबाते शर्फ़ेमुनैरी, गुलिस्ता, हदीका, मसनवीए-मअनवी, जामे-जम, बास्तां, शाहनामा, खमूसए-शेखनिजामी, कुल्लियात खुसरो व मौलाना जामी, दीवाने-ख़ाकानी व अनवरी तथा अन्य ऐतिहासिक ग्रंथ सम्राट् के सम्मुख निरन्तर पड़े जाते हैं। भाषा-विशेषज्ञों को आज्ञा देकर,

था। साधारण लोगों का जो काम आखों से चलता है। वह उसको अपने काना से लेता था। आजकल भी भारतवर्ष में ब्रिटिश सरकार के कितने ही अधिकारी प्रान्तीय भाषाओं को न ठीक लिख सकते हैं और न पढ़ सकते हैं। पुलीस आदि की लंबी रिपोर्टें तथा दूसरे कागज़-पत्रों को रीडर उनके सामने फ़र्राटे में पढ़ते हैं, और वे उनको सुनकर अधिक काम करते हैं। प्रसिद्ध शासक हैदरअली और रणजीत-सिंह पढ़ना लिखना नहीं जानते थे (Smith, ibid)। अकबर को कितने सुनने का चाव छोटपन से ही था। उसने उसी प्रवस्था में स्वेच्छा से हाफ़िज़ और जलालुद्दीन रूमी जैसे सूफ़ी कवियों के बड़े-बड़े ग्रंथ—‘दीवान हाफ़िज़’ और ‘मसनवीए मौलाना रूम’—कटाघ्र कर लिये। “बाल्यकाल की इस शिक्षा ने एक बुद्धिविषयक आधार स्थापित कर दिया, जो अकबर की वृद्धावस्था के धार्मिक विषयों के संबंध में विभिन्न मतों की उदार बातों के चयन करने में उपयोगी सिद्ध हुआ” (Smith, Akbar, pp 22-23)। अबुलफ़ज़ल ने लिखा है कि उसका शुद्ध हृदय और पवित्र आत्मा कभी बाह्य शिक्षा की ओर प्रवृत्त नहीं हुआ, वरन् अपनी ही ईश्वर प्रदत्त प्रकृति से उसने

योग्यता प्राप्त की (Akbarnama, Beveridge's trans I 589)। उपर्युक्त विवरण से यह बात समझ में नहीं आती कि जिस विचक्षण बालक की शिक्षा का इतना प्रयत्न हो वह भुंशी न हो यह हो सकता है, किन्तु वर्णमाला न जाने और हस्ताक्षर तक न कर सके। बात यह हुई कि पादरा मामेरेट (Father Monserrate) अकबर, के दरबार में दो बरस रहा, उसने उसको कभी पढ़ते और लिखते नहीं देखा था। उसकी इसी ढंग की सूचना पर वर्तमान काल के कुछ ऐतिहासिक उसको निरक्षर मान बैठे हैं (Edwardes & Garnett, Mughal Rule in India, p 226)। इस पर भी जो व्यक्ति बाबर और हुमायूँ जैसे सांस्कृतिक साहित्यानुरागियों का वंशज हों, जिसने स्वभावतः नितान्त अमाधारेण ज्ञान और अद्भुत स्मरणशक्ति पाई हो तथा जिसके शिक्षक एक को छोड़कर क्रमशः सुयोग्य और विद्वान् रहे हों, वह बिल्कुल पढ़ना न जानता और अपने हस्ताक्षर तक करने के अयोग्य रहता, यह बात सन्देहात्मक मालूम होती है (N N Law, Promotion of Learning in India during Muhammedan Rule, pp 207-12, F E Keay Ancient Indian Education, p 121)।

हिन्दी, यूनानी, अरबी, फारसी तथा अन्य भाषाओं की पुस्तकें दूसरी भाषाओं में भाषान्तर कराई जाती हैं। जैसे फतहउल्ला शीराज़ी की अध्यक्षता में एकबालनामा (आईने-अकबरी) के लेखक के व्याख्यानानुसार, किशन जोशी, गंगाधर, महेश महानन्द ने, जैच-जदीद मीरजाई के कुछ अंश का हिन्दी (संस्कृत) से फारसी में उल्था किया। महाभारत की पोथी, जो भारतवर्ष के प्राचीन ग्रन्थों में से है, शेख सुल्तान थानेसुरी, मौलाना अब्दुलकादिर बदायूनी<sup>१</sup> और

१—जैजों का सविस्तर वर्णन तृतीय ग्रंथ के पहले आईने में है। ज्योतिषियों की वह पुस्तक, जिसमें ग्रहों और नक्षत्रों की गति आदि का वर्णन कोशों में लिखा होता है, जैज कहलाती है। पहले वेधशालाएँ बनाकर उनसे हालात मालूम करके पुस्तकों में लिख लेते थे। उन पुस्तकों को जैच या जैज कहते थे। यह फारसी के जैक शब्द का अरबी रूप है। जैक उन धागों को कहते हैं, जिनके सहारे पर नक्षत्रबन्द कपड़ों में बेलबूटे बुनते हैं। ज्योतिषी जैज के सहारे ग्रहों की गति मालूम करते हैं। जैज से जन्तरी या पन्ना बनाये जाते हैं।

२—मुल्ला अब्दुलकादिर बदायूनी सन् १४७ हिजरी में बदायू (खेलखंड में) नगर में पैदा हुआ था। वह अकबर से दो वर्ष बड़ा था। उसके पिता को लोग मुलूकशाह कहते थे। वह सभल के शेख पंज फ़कीर का शिष्य था (J A S B, p. 118 1869)। १६२ हिजरी में मुलूकशाह का शरीर-पात हुआ। मुल्ला अब्दुलकादिर ने अपने समय के अनेक विद्वानों से विभिन्न विषयों में शिक्षा प्राप्त की थी। इन विद्वानों का वर्णन उसने अपनी 'मुन्तख़िबुत्तवारीख' में किया है। उसने, इतिहास, संगीत और गणित ज्योतिष में विशेष योग्यता प्राप्त की थी। कठ मधुर होने के कारण बुधवार के लिए वह दरबार का इमाम नियत हुआ था। जलालख़ाँ औरची ने उसको अकबर के

दरबार में प्रविष्ट कराया था। बदायूनी फ़ैज़ी और अबुलफ़ज़ल के साथ चालीस वर्ष तक रहा, परन्तु उसकी उनसे हार्दिक मित्रता कभी नहीं हुई, क्योंकि बदायूनी उनको काफ़िर ख्याल करता था।

अकबर की आज्ञा से उसने 'रामायण' के २४००० श्लोकों का संस्कृत से फ़ारसी में अनुवाद किया, और उसके उपलक्ष्य में उसको १२० अशरफ़ी और १०००० तंगा (अधन्ना) पुरस्कार मिला था। इसके अतिरिक्त उसने 'महाभारत' के कुछ भागों 'तवारीख़ रशीदी' और 'बहुरूल-असमार' नामक ग्रंथों के भी अनुवाद किये और टीका टिप्पणियाँ लिखी। 'नजातुर्शीद' भी उसी का लिखा हुआ है। उसके प्रसिद्ध ग्रंथों में 'मुन्तख़िबुत्तवारीख' है। अकबर के धार्मिक विचारों पर इसमें विशेष-रूप से प्रकाश डाला गया है। साथ ही उसके समय के प्रसिद्ध पुरुषों एवं कवियों के जीवन-चरित्र भी दिये गये हैं। इस इतिहास में अकबर की मृत्यु के ११ वर्ष पूर्व (१००४ हिजरी) तक का हाल है। इसमें अकबर के चरित्र का जैसा चित्रण है, 'अकबरनामा', 'तबक़ातअकबरी' या 'मन्शासिररहीमी' में वैसा नहीं मिलता। संभवतः १००४ हिजरी के बाद बदायूनी की मृत्यु हो गई, पर शायद इतिहास छिपाकर रक्खा गया। 'मिरातुलआलम' के अनुसार वह जहाँगीर के शासन-काल में प्रकाशित किया गया।

नक़ीबख़्ता के निरीक्षण में हिन्दी (संस्कृत) से फारसी में अनूदित की गयी। इसमें लगभग एक लाख श्लोक हैं। सम्राट् ने इस प्राचीन कथा का नाम 'रज़्मनामा' रक्खा है। इसी मंडली ने रामायण का संस्कृत से फारसी में

परन्तु उस (जहाँगीर) ने बदायूनी के पुत्रों के इस कथन पर रोष प्रकट किया कि उनको स्वयम् ग्रंथ के अस्तित्व की ख़बर नहीं थी। 'तुज़कजहाँगीरी' में भी इस घटना का कहीं उल्लेख नहीं है। १०२५ हिजरी (जहाँगीरी शासन के दसवें वर्ष) में भी उज़्ज्वल इतिहास का कहीं पता नहीं था क्योंकि 'मअसिररहीमी' उसी माल लिखी गई थी। उसके लेखक ने 'तबक़ात' और 'अक़बरनामा' के अतिरिक्त एक और इतिहास की आवश्यकता के सम्बन्ध में शिकायत की है।

पछों में यह अपना नाम 'ज़ादिरि' रखता था। परन्तु अक़बर के समय में एक और 'ज़ादिरि' था जो बहुत विद्वान् था। पाठक दोनों की कृतियों को एक न समझें।

बदायूनी की लेखन-शैली के सम्बन्ध में ब्लाकमन का मत है कि "मिरातुल-आलम" के रचयिता बख़्तावरख़ा और 'आलमगीरनामा' के लेखक मोहम्मद काज़िम से उसकी लेखन-शैली बहुत गई बीती थी, पर हा, 'तबक़ात' के लेखक उसके मित्र मिर्ज़ा निज़ामुद्दीन अहमद हिरवी तथा 'बादशाहनामा' के निर्माता अब्दुल हमीद लाहोरी से कुछ अच्छी थी" (Blochmann's trans p 104, n 2)। विन्सेन्ट स्मिथ की राय में "बदायूनी की भाषा अधिक कठिन है। उसकी रचना साहित्यिक अनुपात से नितान्त रहित है" (Smith, Akbar, p 415)।

१—'महाभारत' के अनुवाद के सम्बन्ध में मुहम्मद अब्दुलक़ादिर ने लिखा है कि "दो

रात तक सम्राट् ने स्वयम् महाभारत के कुछ अंश का अनुवाद किया और नक़ीबख़्ता से कहा कि उसका अर्थ साधारण फ़ारसी में कर दे। तीन-चार मास के बाद 'बेहूदा' और 'व्यर्थ' १८ पवों में से दो सम्राट् के सम्मुख उपस्थित किये गये। सम्राट् मेरे अनुवाद में ख़िद्वान्वेषण करने लगा और मुझे 'हरामख़ोर' और 'शलग़मख़ोर' बतलाया। मानो, मूल पुस्तक के निर्माण में भी मेरा हाथ रहा हो। पीछे से दूसरा भाग नक़ीबख़ा और मुहम्मद शेरि ने समाप्त किया तथा एक और भाग का सुल्तान हाजी थानेश्वरी ने उत्था किया। इसके बाद शेरि फ़ौज़ी नियत किया गया जिसने गद्य और पद्य में दो और भाग लिखे। फिर शेरि हाजी ने दो और पवों की टीका की और जो अंश छूट गया था उसका शाब्दिक अनुवाद करके जोड़ दिया। पर सुल्तान हाजी शीघ्र ही दरबार से हटा दिया गया। अब वह भक्खर में है। दूसरे अनुवादक और व्याख्याता कौरव और पाण्डवों का संग्राम जारी रखे हुये हैं। ईश्वर बनकी रक्षा करे जो इस अनुवाद के क़मले में नहीं पड़े है। वह उनके पश्चात्ताप को स्वीकार करे और ऐसे प्रत्येक व्यक्ति की प्रार्थना को सुने, जो हृदय की ग़लानि को गुप्त नहीं रख सकता एवं जिसका हृदय इस्लाम धर्म पर स्थिर है। वह तोबा करने पर मनुष्यों को अपने पास बुलाता है। 'रज़्मनामा' (महाभारत) चित्रों आदि से अलंकृत हो गया और उसकी अनुकृतियाँ की गईं। राज्य के प्रमुख स्तम्भ भी इस कार्य पर लगाये गये। अबुलफ़ज़ल ने इसकी दो ख़ुज़ की भूमिका लिखी है।"

भाषान्तर किया। यह ग्रंथ प्राचीन कृतियों में से है। इसमें रामचन्द्र का चरित्र विस्तार के साथ वर्णित है, साथ ही ज्ञान-विज्ञान और नीति-संबन्धी विलक्षण बातें भरी पड़ी हैं। अथर्वबन<sup>२</sup> की पुस्तक (अथर्ववेद) का—जो कि हिन्दुओं के विश्वासानुसार ईश्वरीय-ज्ञान के चार ग्रन्थों में से एक है—फारसी अनुवाद हाजी इब्राहीम सरहिन्दी ने किया। लीलावती<sup>४</sup>, जो कि हिन्दुस्तानी गणितज्ञों द्वारा निर्मित पुस्तकों में एक प्रभावशाली ग्रंथ है, मेरे बड़े भाई शेष अबुलफैज फैजी ने संस्कृत का पर्दा हटा कर फारसी की चादर उसके कंधों पर डाल दी। ताजक<sup>५</sup> का, जो कि गणित-ज्यातिष का एक प्रामाणिक ग्रंथ है, सम्राट्

(Badaoni, II, p 302)। इस अनुवाद की एक प्रति दो जिल्दों में, जिसमें १८ फ़ोन (पर्व) हैं, पुश्ताटिक सोसायिटी बंगाल की लायब्रेरी में है। उसका नंबर १३२६ है (Blochmann, *ibid*, p 105, n 1)। 'महाभारत' का अनुवाद १२८२ ई० से १२८४ ई० तक हुआ। इसमें ४०,००० पौण्ड व्यय हुआ था। आजकल यह स्टेट लायब्रेरी जयपुर का अत्यन्त मूल्यवान् संग्रह है, और ससार के उत्कृष्टतम ग्रंथों में से एक है (N C Mehta, Catalogue of Pictures exhibited at the All-India Arts Exhibition Lucknow, Foreword, p 15, 1925)।

२—११७ हि० में सम्राट् ने आज्ञा दी कि 'रामायण' का तर्जुमा अब्दुल्लाहदिर करे। "मैंने चार साल में उसे समाप्त किया और उसकी पाण्डुलिपि सम्राट् को भेंट की और उसके अन्त में यह शेर लिख दिया—मा क्रिस्ता नविशतेम बसुलतां किरसानद, जां सोखता करदेम ब-जानां किरसानद। अर्थात् मैंने कथा लिख दी, कोई सम्राट् तक पहुँचा दे, मैंने जान गला दी, कोई प्रियतम तक पहुँचा दे। सम्राट् ने इस शेर को बहुत पसंद किया। सम्राट् ने कहा कि लेखकों की भाँति इस ग्रंथ की भूमिका भी लिखो। मैंने उससे आज्ञा

छिपाने की चेष्टा की। क्योंकि कुफ़ की नक़ल कुफ़ नहीं होता। मैंने सम्राट् की आज्ञा से अनुवाद किया, यद्यपि मुझे उससे श्रुति थी और जिसके कारण मुझे विश्वास है, कि धिक्कारा जाऊँगा। मैं उसके लिए तोबा करता हूँ। ईश्वर उसे स्वीकार करे।"

३—सन् १२७२ ई० में बदायूनी को 'अथर्ववेद' का अनुवाद करने की आज्ञा मिली। सहायता के लिए शेष भावन (जादख़ी ब्राह्मण था और पीछे से मुसलमान हो गया था) नियत हुआ। पर वह वेद के भाव स्पष्ट न कर सका। सम्राट् का सूचना मिलने पर शेष फ़ैज़ी तैनात किया गया, फिर हाजी इब्राहीम सरहिन्दी पर काम छोड़ा गया। किन्तु पिछला तत्पर होने पर भी इच्छानुसार अनुवाद न कर सका और वह अंश शेष ही रह गया (Badaoni, II, p 212)।

४—'लीलावती' को प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् भास्कराचार्य की पत्नी ने अपने नाम से बनाया था। पीछे से भास्कराचार्य ने भी एक ग्रंथ इसी नाम का इसी विषय पर निमित्त किया था (श० सा०)।

५—ज्योतिष का एक ग्रंथ जो यवनाचार्य-कृत प्रसिद्ध है। यह पहले अरबी

की आज्ञा से मुकम्मलखौं गुजराती ने फारसी में अनुवाद किया। वाक्याते बावरी<sup>१</sup> का जो कि व्यावहारिक ज्ञान का नीति-ग्रन्थ है, मिर्जा अब्दुरहीम खानखाना (वर्तमान सेनापति) ने तुर्की भाषा से फारसी में उल्था किया। कश्मीर के इतिहास<sup>२</sup> का, जिसमें उस देश का चार हजार वर्ष का वृत्तान्त है, मौलाना शाहमोहम्मद शाहाबादी ने कश्मीरी भाषा से फारसी में रूपान्तर किया। मोअज्जमुलबलदां ग्रंथ—जो देशा और नगरों के वृत्तान्तों का अद्भुत संग्रह है—कई भाषा-विशेषज्ञों जैसे मुल्ला अहमद ठठा, कासिम वेग, शेख मुमबक्श तथा कुछ और व्यक्तियों ने अरबी से फारसी में उल्था किया। हरिबंस, जिसमें कृष्ण का चरित्र है, मौलाना शेरी ने फारसी में अनूदित किया। कलेलादमना व्यावहारिक ज्ञान का एक अनूठा साहित्यिक ग्रंथ है। यद्यपि नसरुल्ला मुस्तौफी और मौलाना हुसेनबायज इसका फारसी में अनुवाद कर चुके थे, परन्तु उसमें अलङ्कार और कठिन शब्द भरे पड़े थे, इस कारण सम्राट् की आज्ञा से इस ग्रंथ के लेखक (अबुलकज्जल) ने उसको फारसी की नई पोशाक पहनाई और अयारे-दानिश के नाम से वह ग्रंथ विख्यात हुआ। नल-दमन<sup>३</sup> की प्रेम-कहानी

और फारसी में था, राजा समरसिंह, नीलकंठ आदि ने इसे मस्कृत में किया। इसमें बारह राशियों के अनेक विभाग करके फलाफल निश्चित करने की रीतियाँ बतलाई गई हैं। जैसे मेष, सिंह और धन, का पित्त स्वभाव और क्षत्रिय वर्ण, कर्क, वृश्चिक और मीन का कफ स्वभाव और ब्राह्मण वर्ण इत्यादि। इस ग्रंथ में जो सजाएँ आई हैं, वे अधिकांश अरबी और फारसी की हैं, जैसे इक्बाल योग, इतिहा योग, इत्थशाल योग, इशराक योग, गैर कबूल योग इत्यादि। (श० सा०)

१—‘वाक्याते तैमूर’ का फारसी अनुवाद शाहजहा के राजत्वकाल में भीर-अबूतालिब तुर्बती ने किया था (Padshah-namah II, p 288, edit Bibl Indica)।

२—‘सन् ११६६ हि० या १६१०—११ ई० में सम्राट् ने मुझे आज्ञा दी कि मैं कश्मीर के उस इतिहास को सरल

फारसी में फिर से लिखूँ, जिसका अनुवाद विद्वद्द शाह मोहम्मद शाहाबादी ने कश्मीरी भाषा से फारसी में किया था। मैंने इस कार्य को दो मास में समाप्त किया। सम्राट् ने मेरी भेंट को स्वीकार करके राजकीय पुस्तकालय में उसे स्थान दिया। अब वह और पुस्तकों की भाँति अपनी बारी पर पढ़ी जाती है” (Badaoni, II, p 374)।

३—बदायूनी लिखता है कि १००३ हि० में सम्राट् ने फ़ैज़ी को आज्ञा दी कि वह ‘पजगंज’ लिखे। पाँच महीने के अरसे में ‘नल-दमन’ की प्रेम-कहानी, जो कि भारतवर्ष में प्रसिद्ध है, उसने ४२०० पद्यों में लिखी और उसको कुछ मोहरों के सहित सम्राट् को भेंट किया। सम्राट् को वह कृति बहुत पसन्द आई। उसकी प्रतिलिपि करने एवं चित्र लगाये जाने की आज्ञा हुई। वह दरबार के पुस्तकालय में

को, जो कि हिन्दी (संस्कृत) भाषा के प्रेमी पाठकों के हृदयों को द्रवित कर देती है, शेख फेजी फैयाजी ने 'लैला मजनूँ', की ध्वनि में पद्य का रूप दिया और उसने नल-दमन के नाम से प्रसिद्धि पाई। जब सम्राट् को नक़ल के खज़ाने का ज्ञान हुआ तो उसने अभिज्ञ इतिहासवेत्ताओं का आह्वा<sup>२</sup> दी कि सप्त भूखण्डों

रखी गईं। नज़ीबख़ा को आज्ञा दी गई कि वह सम्राट् को पढ़कर सुनाया करे। सत्य यह है कि तीन सौ बरस से जारी खुसरो के बाद किसी ने भारतवर्ष में ऐसी मसनवी नहीं लिखी (Badaoni, II p, 396)।

१—ब्लॉकमैन ने 'ख़जानए-नज़्क' का अनुवाद इतिहास-कोष (Treasure of history) किया है (Blochmann's trans p 106), किन्तु शब्दार्थ तथा प्रसंग दाना के अनुसार अनुवाद-कोष अर्थात् अनूदित प्रयोगों का संग्रह होना चाहिये।

२—जब सन् हिजरी के १००० साल व्यतीत होने की आये, तो सम्राट् ने आज्ञा दी कि एक ऐसा इतिहास लिखा जाय जिसमें १००० वर्ष पूर्व से आज तक के इस्लामी राजाओं का हाल इस रीति से वर्णित हो कि जिसमें और इतिहासों की सच्चाई-झुगड़ी का पता चल सके, और उसका नाम 'तारीख़ अलफ़ा' (एक हजार साल का इतिहास) रखा जाय तथा सनो में हिजरी के स्थान पर रोहलत लिखा जाय। उसमें मोहम्मद साहब की मृत्यु से लेकर आज तक के समार के हालात निम्नलिखित सात आदमों लिखें—नज़ीबख़ा फ़तहउल्ला, हकीम हमाम, हकीम अली, हाजी इब्राहीम सरहिन्दी, निज़ामुद्दीन और अब्दुलक़ादिर। दूसरे सप्ताह में पैंतीस साल का वृत्तान्त तैयार हुआ। फिर छत्तीसवें साल का हाल मुल्ला अहमद को लिखने का हुक्म हुआ। उसने

धर्मान्विता-वश जैसा जी में आया वैसा लिखा। परन्तु चंगेज़ख़ां तक के वृत्त को लिपिबद्ध कर दिया। इतने ही में उसको मिर्ज़ा फ़ौलाद बलौस ने मार डाला। शेष हाल ११७ हि० तक आत्मकथा ने समाप्त किया। १००० हि० में अब्दुलक़ादिर को लाहौर में आज्ञा मिली कि उस इतिहास को नए मिर्रे से मिलाकर शुद्ध करे और सनों को क्रमबद्ध करे। एक साल तक उसने दो भागों का मिलान किया। शेष दो को आसफ़ख़ा को सौंप दिया। मारांश यह कि इस इतिहास के पहले दो ग्रंथ मुल्ला अहमद ने लिखे, तीसरा आसफ़ख़ा ने, और उनका सशोधन एवं मिलान लाहौर के कालिब मुस्तफ़ी के साथ मुल्ला अब्दुलक़ादिर ने किया (मोहम्मद ज़काउल्ला, तारीख़ हिन्दोस्तान, पृ० ६२४)।

“१००० हि० (११११-१२ ई०) में मुसलमानों में यह बात फैली हुई थी कि इस्लाम आर ससार का ख़ातमा होने जा रहा है। इस लिए बहुत से लोग उठ खड़े हुये और अपने को इमाम मेहदी घोषित करने लगे। मेहदी, ईसा के पुनरागमन से पहले आने वाला था। अकबर के शिष्यों ने इन किवदन्तियों को दीन इलाही के प्रचार का शुभ लक्षण जाना। 'तारीख़ अलफ़ा' भी इसी कल्पना को महत्व देनेवाली मालूम होती है। विशेष विवरण के लिए बदायूनी भाग २ देखना चाहिये। 'तारीख़ अलफ़ा' की एक प्रति एशियाटिक सोसायिटी बंगाल

में पिछले एक हजार वर्ष के अन्दर जो घटनाएँ घटी हैं उनको संग्रह किया जाय। पहले नकीचखौं तथा एक दूसरी टोली ने वृत्तान्त-रचना का कार्य आरम्भ किया और ठूठा के मौलाना अहमद ने उसका बड़ा भाग तैयार कर दिया। फिर जाफरबेग आसफखौं ने उसे समाप्त किया। उसको भूमिका एकचाल-नामा के लेखक (अबुलफज्जल) ने लिखी और उसका नाम तारोख-अलफो रक्खा।

के पुस्तकालय में है, जिसकी पुस्तक-क्रम संख्या १६ है। उसमें भूमिका नहीं है। पैगम्बर मोहम्मद साहब की मृत्यु (८ जून ६३२ ई०) के बाद उमर इब्ने-अब्दुल मलिक (१६ हिजरी, या ७१७-१८ ई०) के शासन तक, जो घटनाएँ घटी हैं, उनका इसमें उल्लेख हुआ है। उसमें सनो का हिस्सा पैगम्बर साहब की मृत्यु से लगाया गया है, हिजरत के साल से नहीं। (Blochmann's, trans, p 106-7, n 5)।

१—‘आईन’ में कथित ग्रंथों के अतिरिक्त निम्नलिखित पुस्तकें भी अकबर के सकाश से तैयार की हुई दत्ताई जाती हैं, जिनका उल्लेख विभिन्न पुस्तकों में पाया जाता है.—

सिहासन-वर्त्तासी—इसका अनुवाद बदायूनी ने किया था, और ‘नामै-ख़िरद-अफ़ज़ा’ नाम रक्खा था।

हैवातुल-हैवान—अबुलफज्जल ने इसका भाषान्तर अरबी से फ़ारसी में किया।

किताबुल्-अहादीस—जहाद और तीरन्दाज़ी के पुरखों के सम्बन्ध में मुहम्मद अब्दुलक़ादिर ने यह पुस्तक लिखी थी।

जामे-रशीदी—अरबी के इस बृहद् ग्रंथ में बग़दाद और भिन्न के ख़लीफ़ों की वशावतियाँ तथा नबियों और पैगम्बरों के चरित्र हैं, जिनकी शृङ्खला आदम तक पहुँचती है। सन्नाद् की आज्ञा से और अबुलफज्जल के परामर्श से बदायूनी ने

फ़ारसी में भाषान्तर किया था।

नजातुलरशीद—निज़ामुद्दीन बख़शी की आज्ञा से बदायूनी ने यह पुस्तक लिखी थी।

तन्काते-अकबर शाही—अकबरी शासन-काल की सन् १००० हि० तक की प्रायः सभी आवश्यक घटनाओं का समावेश इस ग्रंथ में हो गया है। इसे निज़ामुद्दीन अहमद ने लिखा है।

सवात उल-इल्हाम—यह फ़ैज़ी की लिखी क़ुरान की ऐसी तफ़सीर (टीका) है, जिसके किसी शब्द में बिन्दी वाला अक्षर नहीं आने पाया है।

मवारिउ-उल-क़लम—इस ग्रंथ को भी फ़ैज़ी ने ही बेनुक़्त ( बिना बिन्दी वाले अक्षरों का ) तैयार किया था।

बह्रुल-इस्मा—यह एक बड़ा ग्रंथ था। इसमें एक लंबी हिन्दुस्तानी कहानी है। पहले कश्मीर के बादशाह जैनुल आबिदीन ने इसका अनुवाद कराया था। फिर अब्दुलक़ादिर ने इसका संशोधन किया।

मरकज-अदवार—इसमें फ़ैज़ी के नल दमन पचक की एक कहानी है। अबुलफज्जल ने इसे क्रमबद्ध किया था।

अकबरनामा—इसके तीन भाग हैं। पहले में तेमूर का वंश वर्णन, और दूसरे में अकबर के ४६ वर्ष का शासन-वृत्तान्त है। तीसरा भाग ‘आईने-अकबरी’ है।



**चित्रकारी**—शायीहकशी को प्रचलित भाषा में तसवीर कहते हैं । यतः यह कला भ्रम और विनोद दोनों का साधन है, इस लिए सम्राट् अपनी युवावस्था

इसका लेखक अबुलफ़ज़ल अहमदी है । फ़ैज़ी सरहिंदी का भी एक 'अकबरनामा' है ।

**कशकोल**—उच्च कोटि के ग्रंथों को पढ़ते समय अबुलफ़ज़ल ने, जो बातें नोट कर ली थीं, उनके संग्रह का नाम कशकोल है ।

**ज्योतिष**—अबदुर्रहीम खानखाना ने ज्योतिष की एक ऐसी पुस्तक लिखी, जिसके प्रत्येक पद्य का एक चरण संस्कृत का और एक फ़ारसी का है ।

**समरतुलफ़लास्फ़**—इसके लेखक अबदु-स्सत्तार ने लिखा है कि मैंने पादरी शोयर से छे महीने यूनानी भाषा सीखी थी । फिर उक्त ग्रंथ का फ़ारसी में अनुवाद किया । इसमें पहले रोम साम्राज्य का प्राचीन इतिहास है और फिर वहां के प्रसिद्ध पुरुषों का जीवन-चरित्र है । इसकी लेखन-शैली अबुलफ़ज़ल की शैली से मिलती-जुलती है । इसकी एक प्रति 'दरबारे-अकबरी' के लेखक मोहम्मद हुसेन 'आज़ाद' ने पटियाले के मंत्री सैयद मोहम्मद हसन के पुस्तकालय में देखी थी ।

**खैरुलबयान**—इसे पीरतारीकी ने लिखा था । यही व्यक्ति पीछे से पीर-रोशनार्ह के नाम से प्रसिद्ध हो गया । पेशावर के पहाड़ी प्रदेश के बहावी इसी के अनुयायी हैं ।

**मअ्यासिररहीमी**—अबदुर्रहीम खान-खाना की संरचना में लिखी गई थी ।

१—भारतवर्ष में चित्रकारी का आरम्भ कम हुआ, यह निश्चित नहीं है । पर पुराने ग्रंथों के बर्णनों तथा गुफाओं में पाये

गये चित्रों से स्पष्ट है कि यह विद्या यहाँ बहुत प्राचीनकाल से है । इस कला के साहित्य और गुफाओं के भित्ति-चित्रों दोनों पर क्रमशः विचार किया जाता है ।

**साहित्य**—एक पौराणिक कथा से मालूम होता है कि इस विद्या को ब्रह्मा ने एक राजा को उस समय सिखलाया था, जब कि एक ब्राह्मण के पुत्र के मर जाने पर उसके जीवन-दान की आवश्यकता पड़ी थी । प्रार्थना करने पर भी यम ने उसे नहीं छोड़ा था, तब ब्रह्मा ने उसका तद्रूप चित्र निर्मित कर उसे जीवन प्रदान किया था । 'हरिवंश' और 'श्रीमद्भागवत' में लिखा है कि जब वाण पुत्री उषा श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध के लिए अधीर हुई, तो चित्तेरिन चित्रलेखा ने कहा था "मैं तुम्हारे प्रियतम का कुल, शील, वर्ण, और निवास कुछ नहीं जानती हूँ, फिर भी बुद्धिबल से मैं प्रभावशाली, कुलीन, शीलवान, रूपवान्, गुणी, और विख्यात देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, मनुष्य, आदि के चित्र बनाऊँगी, तुम उनमें से अपने प्रियतम को पहचान लेना । वह जब सात दिन के बाद चित्र बनाकर लाई, और उषा से कहा, मैंने सबको अविकल चित्रित किया है । तुमने जिसको स्वप्न योग में देखा हो, उसे पहचान लो । उषा ने अनिरुद्ध के चित्र को पहचान लिया । चित्रलेखा उस चित्र के द्वारा अनिरुद्ध को द्वारका से बुला लाई, और उषा की आज्ञा को पूर्ण किया । बौद्धों का 'विनयपिटक' ग्रंथ तीसरी-चौथी शताब्दी ई० पू० का है । उसमें एक राजा के 'चित्रागार' का वर्णन है ।

के आरम्भ से ही इस पर ध्यान देने लगा, और इसकी उन्नति तथा प्रचार की अभिलाषा करने लगा। फलतः इस अद्भुत कार्य ने समृद्धि प्राप्त की

‘बाल्मीकि’ रामायण का मूल ग्रंथ भी प्राचीन है, उसमें चित्र, चित्रकारों और चित्रित कमरों का उल्लेख है। भारतीय प्राकृतिक दृश्य-अंकन में कितने निपुण थे, इसका कुछ आभास भवभूति के ‘उत्तर-रामचरित’ के उस स्थल से मिलता है, जिसमें लक्ष्मण-द्वारा सीता को एक चित्र के दिये जाने का वर्णन है। उसमें बनवास से लेकर अग्नि परीक्षा तक के चित्रों को स्वाभाविक रूप में अवलोकन कर सीता चकित रह जाती है। ‘विश्व-कर्मणि शिल्प-शास्त्र’ में लिखा है कि स्थापक, तक्षक और शिल्पी आदि में से शिल्पी को ही चित्र बनाना चाहिये। यद्यपि चित्र-विद्या पर अथ प्राचीन ग्रंथ प्रचुर संख्या में नहीं मिलते हैं, परन्तु मध्य-काल में वे अवश्य थे। कारभर के राजा जयादित्य की सभा के कवि दामोदर गुप्त ने आज से ११०० वर्ष पूर्व अपने ‘कुट्ट-नीमत’ ग्रंथ में चित्र-विद्या-विषयक ‘चित्र-सूत्र’ नामक एक पुस्तक का उल्लेख भी किया है। ईसा की दूसरी शताब्दी में गुणादय ने एक मनोरंजक कथा द्वारा चित्र-कला पर अच्छा प्रकाश डाला है।

‘वात्स्यायन’ ( ईसा की तीसरी शताब्दी ) ने अपने से पूर्व के अनेक ग्रंथों के आधार पर अपने प्रसिद्ध ग्रंथ ‘कामसूत्र’ में चित्रकला के षडङ्गों का इस प्रकार वर्णन किया है :—१. रूपभेद, २ प्रमाणम्, ( नाप, गठन और डोल-डोल का शुद्ध बोध ), ३ भाव, ४ लावण्य योजनम्, ५ सादर्यम्, ६ वर्णिकाभंग। भारतीय चित्रकारी के इन छहों अंगों के अन्तर्गत

प्रायः अन्य सब बातें आ जाती हैं। तिब्बत के इतिहासकार तारानाथ ने सातवीं शताब्दी में अपने ग्रंथ में बौद्धों से सम्बन्ध रखनेवाली चित्रकारी की शैली के विषय में लिखा है कि उक्त चित्र देव, यक्ष और नाग तीन शैलियों के हैं। छठी शताब्दी ई० पू० से तीसरी शताब्दी ई० पू० तक मगध ( विहार ) में देवशैली के चित्रों का चलन रहा। तारानाथ के मत से देव वे मनुष्य थे जिनको चमत्कारी शक्ति प्राप्त थी। ‘विनयागम’ तथा अन्य ग्रंथों में लिखा है कि इस वर्ग के दीवारों आदि पर बनाये हुये चित्र इतने सुन्दर थे कि उनके अवलोकन से मूल पदार्थों का धोखा होता था। देवों के आधे गुणों तथा चमत्कारी शक्ति से सम्पन्न व्यक्तियों को कहलाते थे। ये अशोक के समय तीसरी शताब्दी ई० पू० में विद्यमान थे। इनकी कृतियाँ चमत्कार शक्ति और मानव-चित्रों से परे हैं। नाग-शैली का प्रचार ईसा की तीसरी शताब्दी के आरम्भ में बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन के समय में था। सर्पों के संरक्षण में रहनेवाले लोग नाग कहलाते थे। इन तीनों वर्गों की कृतियों का वर्णन करते हुये उक्त इतिहासकार ने लिखा है कि ‘देवों, यक्षों और नागों की कृतियों की मौलिकता के कारण मनुष्य बहुत दिनों तक धोखा खाते रहे।’ उक्त विवरण से प्रकट होता है कि उन दिनों चित्र-कला पराकाष्ठा को पहुँच चुकी थी और उसमें ‘कामसूत्र’ में बतलाये हुये षडङ्गों का समावेश हो चुका था। चीन के पूर्वकालीन कलाकारों ने भी उक्त प्रकार के षडङ्गों का

और चित्रकारों का एक वर्ग विख्यात हो गया। दारोगे और बितक्ची (मोहरीर) प्रति सप्ताह चित्रकारों के कामों को सम्राट् के समक्ष लाते हैं। कार्यों की उत्तमता के अनुसार उनको पुरस्कार दिया जाता अथवा वेतन वृद्धि की जाती है। चित्रों की सामग्री पर विशेष ध्यान दिया गया और उनका मूल्य भी

उपयोग किया था, जैसा कि छठी शताब्दी के एक लेखक हसीहो (Hsieh Ho) के उल्लेख से पाया जाता है (Percy Brown, Indian Painting, p 23, 1927)। एक प्राचीन ग्रन्थ 'चित्र-लक्षण' है, जिसमें बहुत ही प्राचीन काल की कला के नियमों का निर्देश मिलता है। उसमें चित्र-विद्या धार्मिक-रूप में निरूपण की गई है और बतलाया गया है कि देवताओं और राजाओं की बृहत्काय और ठोस मूर्तियों के चित्र जनता में प्रदर्शित करने के लिए अधिक साधारण नाप के बनाये जायें। मनुष्यों की उँचाई राजाओं से भी अधिक कम दिखलाई जाय। सुखाकृति चतुष्कोण बनाई जाय और देदीप्यमान् तथा भङ्गीले गुणों से सुन्दरता के साथ परिष्कृत की जाय। चित्र त्रिकोण, कुटिल, अडाकार अथवा गोल न बनाया जाय। देवताओं और राजाओं के शिर के केश भुँचित और उत्तम बनाये जायें तथा दिव्य नीले रँग से रँगे जायें। स्त्रियों के चित्र सुडोल और सुवङ्ग बनाये जायें, जिससे वे शीलवती और सदाचारिणी जान पड़ें; उनके अङ्गोपाङ्ग एक दूसरे के अनुरूप हों; उनके शरीर युवावस्था के दिखलाई पड़ें। और वे खड़ी दशा के हों। इस ग्रन्थ में चित्र-कला-संबन्धी और भी अनेक सूक्ष्म बातों का वर्णन है। उपर्युक्त ग्रंथों के विवरणों से ज्ञात होता है कि उक्त कला पर उष्कोटि के अनेक ग्रन्थ थे, उनमें सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों के चित्रण के नियम थे

और चित्रांकन में उनका पालन करना आवश्यक था।

इतिहास और उदाहरण—शैली और कला की दृष्टि से भारतीय चित्रकारी छे भागों में विभाजित हो सकती है—प्रारम्भिक, बौद्धकालीन, मध्यकालीन, मुगलशैली की, राजपूतशैली की, और नवीन या वर्तमान शैली की।

प्रारम्भिक—इस देश में चित्रविद्या अनिश्चित काल से है, परन्तु इतिहास-काल से पूर्व की चित्रकारी के उदाहरण बहुत कम हैं। मध्यभारत की बैमूर पर्वत-श्रेणी की गुफाओं की दीवारों पर शिकार-सम्बन्धी कुछ टेढ़े-मेढ़े दृश्य हैं। इसी प्रकार विन्ध्याचल की गिरि-माला में भी चित्रकारी के नमूने मिले हैं। मध्यप्रदेश के रायगढ़ राज्यान्तर्गत सिहणपुर गाव के समीप बलुआ पत्थर की चट्टानों की गुफाओं में, जो लाल रँग के चित्र मिले हैं, वे बहुत ही प्राचीन काल के मालूम होते हैं। उनमें मनुष्यों और जीवधारी पशुओं के आलेख्य हैं, जो अनुमान से मिस्र की चित्रलिपि के घोटक प्रतीत होते हैं। एक हाथी, एक बारहसिंगे और एक शशक का चित्रण कलापूर्ण है और उनके कार्यों में अद्भुत जीवन है। आखेट के एक दृश्य में मनुष्यों की एक टोली एक जगली भैंसे पर झपट रही है और उसे घायल कर रही है। उसी दीवार के एक और चित्र में एक भैंसा बछों की सार से घायल होकर पीड़ा के कारण सिसक रहा है। शिकारी उसे घेरे हुये प्रसन्न हो रहे हैं। इन चट्टानों

नियत हो गया। रँग-भराई ने नवीन विलक्षणता प्राप्त की और सफाई में नई छटा प्रदर्शित होगई। ऐसे उत्तमोत्तम गुणवान् चित्रकार पैदा होंगये हैं, जिनके काम जगद्विख्यात बेहजाद के अद्भुत आलेख्यो तथा यूरोपियनों के विलक्षण चित्रों की बराबरी करने हैं। कार्य-लालित्य, चित्र की सफाई,

की तराई में पत्थरों के औज़ार भी पाये गये हैं, जिनको देखकर अन्वेषकों ने अनुमान लगाया है कि वे चित्र पाषाण-युग के हैं। मिर्ज़ापुर ज़िले की गुहावली में भी सृगया-चित्र हैं। गौडा और सौंभर आदि का अहेर के लिए पीछा किये जाने का चित्रण नितान्त मौलिकता से हुआ है। पर्सोब्राउन के मतानुसार मिर्ज़ापुर और रायगढ़ की गुहावलियों के चित्रों का अभी ठीक ठीक अनुसंधान नहीं हो सका है। इनके अन्वेषण होजाने पर भारतवर्ष की केवल आलेख्य कला की प्राचीनता का ही पता नहीं लगेगा, प्रत्युत् प्राच्य दिशा में मानव-जाति के प्रारम्भिक इतिहास पर भी प्रकाश पड़ेगा (Ibid, pp 15-16)।

जिन चित्रों का समय निर्णय हो चुका है, उनमें सब से प्राचीन मध्य प्रदेश के सरगुजा राज्य के अन्तर्गत रामगढ़ पहाड़ों की जोगीमारा गुफा की दीवारों के चित्र हैं। वे ईसवी सन् के पूर्व पहली शताब्दी के अनुमान किये जाते हैं। चित्रों में स्थापत्य, पशु और आकृतियों का अकन हुआ है। यद्यपि उनमें से कुछ चित्र खराब होंगये हैं तथापि वे अपने समय के अन्य चित्रों के अनुरूप मालूम होते हैं। जिम् घटना या कल्पना से इन चित्रों का सम्बन्ध है उसके विषय का स्पष्टीकरण अभी तक नहीं होसका है। इस गुहावली की अन्य कन्दराओं में भी चित्र रहे होंगे, किन्तु भारतीय जल-वायु के प्रभाव के कारण वे नष्ट होगये हैं (Ibid, p 17)।

बौद्धकालीन—अचरों की अपेक्षा चित्रों का प्रभाव मनुष्य के हृदय पर शीघ्र पड़ता है। इसलिए बौद्ध-धर्म के शीघ्र प्रचार के लिए धर्म-सम्बन्धी चित्रों से बढ़कर उन दिनों और कौन साधन हो सकता था। अतः धर्म-चित्र चीन सम्राट् मिगती के निमन्त्रण पर सन् ६७ ई० में जब बौद्ध धर्माचार्य कश्यपमदुंग वहाँ गया तो भारतीयकला सबन्धी और वस्तुओं के साथ-साथ चित्र भी ले गया। उसने वहाँ की राज-सभा में धार्मिक शिक्षा दी और चित्रों का महत्व भी बतलाया। परिणामस्वरूप उस समय से वहाँ इस कला का प्रचार हुआ। फिर शनैः शनैः यह कला धर्म के प्रचार के साथ-साथ बौद्ध भिक्षुओं द्वारा जावा, स्याम, बर्मा, नेपाल आदि में पहुँची। जापान में बौद्ध-धर्म का प्रवेश, कोरिया छोड़कर, छठी शताब्दी में हुआ। तिब्बत में यह धर्म सातवीं शताब्दी के लगभग फैला। इन सब स्थानों में धर्म के साथ-साथ यह कला भी फैलती गई। जैसे चीन इस दिशा में भारत का ऋणी है, उसी प्रकार ईरानी चित्रकला चीनी सभ्यता की ऋणी है। ईरानी चित्रकला का कोई भी चित्र १२७६ ई० से पहले का नहीं मिला है (Mehta, Cat of A I F A Ex Lucknow, 1925, p 4)। परन्तु चीनी तुर्किस्तान के ख़ुतन प्रदेश, दनदनयूलिक और मीरान स्थानों में दीवारों, काष्ठफलकों और रेशम आदि पर जो चित्र मिले हैं, वे चौथी से ग्यारहवीं शताब्दी के आसपास के अनुमान किये जा सकते हैं। ये

हाथ की स्थिरता तथा अन्य गुणों ने अलौकिकता का पद प्राप्त किया है और प्राणहीन पदार्थ जीवधारी मालूम होने लगे हैं। सौ से अधिक चित्रकार इस कला में अभिरूपता के पद पर पहुँच चुके हैं और उनके नामों की बहुत ख्याति हो चुकी है। वे लोग जो अपनी मजिल के नजदीक पहुँच चुके

चित्र भी भारत के, बौद्धकालीन चित्रों से मिलते हैं। इस प्रकार भारतवर्ष ने एक बार लगभग समस्त एशिया को इस कला की शिक्षा दी थी। उसी शिक्षक देश की कला के बचे-खुचे उदाहरण नीचे दिये जाते हैं:—

सन् ५० ई० से ७०० ई० तक, अजंटा (हैदराबाद राज्यान्तर्गत औरंगाबाद जिले के फ़दापुर गांव से दक्षिण-पश्चिम दिशा में ४ मील की दूरी पर), सिगरिया (लका में) और बाघ (ग्वालियर राज्य के अमरकोटा जिले में) में पहाड़ काट कर और गुफाएं बनाकर उनकी दीवारों, भीतरी छतों और खम्भों पर जो चित्र बनाये गये हैं, बौद्धकालीन चित्रकारी के अन्तर्गत माने जाते हैं।

अजंटा की गुफाएं सैकड़ों वर्ष पर्यन्त विहृत जंगल और पर्वतों में छिपी रहीं। १८१६ ई० में अकस्मात् यूरोपियनों को उनका पता लगा। १८७६ ई० में कन्दराओं की संख्या २६ थी और उनमें से १६ में थोड़ी-बहुत चित्रकारी थी। औरों में भी ऐसे चिन्ह अवशिष्ट थे, जिनसे अनुमान होता था कि वे भी पहले उम्मी प्रकार चित्रित थी। समय के फेर से १६१० ई० में केवल ६ गुफाएं ही ठीक-ठीक चित्रित पाई गईं और वे पहली, दूसरी, नवीं, दसवीं, सोलहवीं और सत्तरहवीं गुफाएं हैं। यद्यपि अजंटा के चित्रों की प्रत्येक शाखा का ठीक ठीक निर्णय अभी नहीं हो पाया है तथापि अनेक विद्वानों के मतानुसार उनके बनने

का क्रम और समय इस प्रकार माना गया है.—नवीं और दसवीं गुफा—लगभग पहली शताब्दी में, दसवीं गुफा के खम्भे—लगभग ३५० ई० या उसके बाद, सोलहवीं और सत्तरहवीं गुफा—लगभग ५०० ई०; पहली और दूसरी गुफा—लगभग ६२६ से ६२८ ई० तक (P. Brown, Indian painting, pp 29 30)।

इन कन्दराओं में लगभग २४ विहार या मठ और १ चैत्य या स्तूपवाले विशाल भवन बने हैं, जिनमें से तेरह की दीवारों आदि पर चित्र हैं। चित्र-लेखन के पहले दीवारों पर प्लास्टर लगाकर चूने जैसे किसी पदार्थ की घुटाई की गई है। ओम्मा, म भा स, पृ० १८४)। चित्रों में मोतम बुद्ध के जीवन की घटनाएं, मातृ-पोषक जातक, विशांतर जातक और महास जातक आदि बारह जातकों में वर्णित बुद्ध के पूर्व जन्म की कथाएं, धर्म-सम्बन्धी ऐतिहासिक घटनाएं, बुद्ध के दृश्य, राजकीय तथा लौकिक चित्र, बन, उपवन, रथ, राज-दरबार, घोड़े, हाथी, हरिण आदि पशु, हंस आदि पक्षी और कमल आदि पुष्प हैं। इन सबको देखने से दर्शक की आँखों के सामने एक ऐसे नाटक का सा दृश्य उपस्थित हो जाता है, जिसमें जंगलों, शहरों, बग़ाइयों और राजमहलों आदि स्थानों में राजा, वीर पुरुष, तपस्वी, प्रत्येक स्थिति के स्त्री-पुरुष और स्वर्गीय दूत, गंधर्व, अप्सरा और किन्नर आदि पात्र-रूप से हैं (वही)।

और वे जो आधी यात्रा समाप्त कर चुके हैं, बहुत ज्यादा हैं। हिन्दुस्तान के लिए मैं क्या कहूँ, जैसी चित्रकारी यहाँ होती है, उसका चित्र भी कभी ध्यान में नहीं आया था, वास्तव में संसार के महाद्वीपों में से विरले ही चित्र-कला में उसकी बराबरी कर सकते हैं।

इन चित्रों का काल-निर्णय इस प्रकार से किया गया है। इतिहासकार तथरी ने लिखा है कि ईरान के बादशाह खुसरोपरवेज़ द्वितीय के छत्तीसवें (६२६ ई०) वर्ष में उसका दूत राजा पुलकेशी के पास पत्र और भेंट लेकर आया, और पुलकेशी का दूत पत्र और उपहार लेकर खुसरो के पास गया (P Brown, *ibid*, p 35)। इस घटना का चित्रण पहली गुफा में इस प्रकार से हुआ है — राजा सिंहासन पर तकिण के सहारे बैठा हुआ है। सिंहासन के आगे चौकियों पर पानदान आदि पात्र रखे हैं, और एक और पीवदान पड़ा हुआ है। राजा के शिर पर मुकुट, गले में बड़े-बड़े मोती और माणिकी की एक लड़की की और उसके नीचे जड़ाऊ कटा है। दोनों हाथों में बाजूबन्द और कड़े हैं। यशो-पवीत के स्थान पर पचलदी मोतियों की माला है। उसमें ग्रंथि के स्थान पर पाँच बड़े मोती हैं। कमर में रत्न-जटित मेखला है। कपड़ों में आधी जाँघ तक की कढ़नी है शेष शरीर नग्न है। उसके आस-पास पंखा और चँवर करने वाले पुरुष और स्त्रियाँ हैं। राजा के सम्मुख बाईं ओर तीन पुरुष और एक लड़का मोतियों के आभूषण पहने हुये बैठे हैं। दरबारियों के शरीर पर आधी जाँघ तक की कढ़नी को छोड़कर कोई अन्य वस्त्र नहीं है। किसी के दाढ़ी-मूँछ भी नहीं हैं। स्त्रियों का शरीर केवल कमर

से आधी जाँघ या उससे नीचे तक का हिस्सा कपड़े से ढका हुआ है। शेष श्रग नग्न है। किसी-किसी के स्तनों पर पट्टी बँधी हुई है। ईरानी राजदूत कई लड़काली मोतियों की माला, राजा के सम्मुख खड़ा होकर, भेंट कर रहा है और राजा उससे कुछ कह रहा है। उसके पीछे दूसरा ईरानी चोतल जैसी कोई चीज़ लिये हुये और उसके पीछे तीसरा ईरानी तोहफ़े की चीज़ों की कशती लिये हुये खड़ा है। इसी प्रकार ईरानियों और घोड़ों के भी चित्र हैं। ईरानियों के शिर पर ऊँची ईरानी टोपी, कमर तक झँगरखा, खुस्त पायजामा और किसी-किसी के पैर में मोज़े हैं, पर दाढ़ी-मूँछ सब के हैं। ईरानी राजदूत के गले आदि में मोतियों के आभूषण हैं। अन्य ईरानी बिना ज़ेवर के हैं। क्रशं पर सब जगह फूल बिखरे हुये हैं (J. Griffiths, *Paintings of Ajanta*, plate no 5, 1897)। इससे सिद्ध है कि ये चित्र ६२६ ई० के बाद के हैं।

अजंठा के चित्र वास्तव में आलेखन-कला मर्मज्ञों के बनाये हुये हैं क्योंकि उनमें अंगोपांगों की अनुरूपता, उनका विन्यास, चेहरों का रंग और कटाव, केश-पाश, छबि, मुख-मुद्रा वस्त्राभरण, भावभंगी आदि का चित्रण नितान्त स्वाभाविक ढंग का हुआ है। कई चित्र तो मानसिक दशा तक को प्रकट कर रहे हैं। मृगु-शैल्या पर पड़ी हुई एक रानी

इस विद्या के राजमार्ग के अग्रसरों में निम्नलिखित व्यक्ति हैं :— १. मीर सैयदअली तबरेजी—उसने इस कला की कुछ शिक्षा अपने पिता से प्राप्त

उसकी दशा पर शोकातुर कुटुम्बी एवं व्यग्र तथा चिन्तातुर दासियों के चित्र की प्रशंसा करते हुये मि० ग्रिफ़िथ ने लिखा है कि करुणारस और अपना भाव ठीक-ठीक प्रदर्शित करने में, चित्र कला के इतिहास में, इससे बढ़कर कोई चित्र नहीं मिल सकता ।

अजंटा की नवीं और दसवीं गुफाओं के चित्रों को देखने से अनुमान होता है कि उनके बनाने वालों ने अमरावती, सांची, और भरहुत के स्तूपों की शिलाओं पर अंकित जातकों एवं गांधार शैली के तद्वगुण कला के नमूनों को ध्यान से अध्ययन किया होगा, क्योंकि उनमें और इनमें कला-सम्बन्धी बहुत कुछ साम्य पाया जाता है (P Brown, *ibid*, p 32) ।

सिगरिया ( सोलोन ) के भित्ति-चित्र करयप प्रथम ( ४७६ ई०—६७ ई० ) के राजत्वकाल के निमित्त समझे जाते हैं । इनमें आर अजंटा की सोलहवीं और सत्तरहवीं गुफा के कुछ चित्रों में साधारण सादृश्य भी है । चित्र अव्यवस्थित ढंग से कटी हुई दो चट्टानों के कमरों की दीवारों पर है । इनमें बीस स्त्रियाँ हैं, जिनके मोटी जाँघ से ऊपर के भाग का अर्धात्त सोन-चौधार्ह शरीर का प्रदर्शन हुआ है । बौद्धों के मतानुसार ये चित्र करयप की रानियों के हैं । कोई-कोई चित्र अकेले हैं और कोई-कोई दो-दो । दो वालों में एक चित्र स्वामिनी का और दूसरा सेविका का मालूम होता है । ये चित्र किसी धार्मिक बात को प्रदर्शित नहीं करते ।

बाघ ( ग्वालिअर ) अजंटा से १२०

मील की दूरी पर है । देखने से मालूम होता है कि ६० वर्ग फीट के कमरे की भीतरी छतों, खम्भों और दीवारों पर चित्र थे, किन्तु अब वे बिगड़ी दशा में शेष रह गये हैं । ये चित्र विशेषतर लोकिक बातों के द्योतक हैं । एक चित्र में एक संगीत-सम्बन्धी नाटक का दृश्य है, जो कि बड़ी स्वतन्त्रता के साथ खेला जा रहा है ।

कुछ दिन हुये जब एक और मन्दिर की चित्रकारी का पता लगा है । ये चित्र पड्डूकोटा से ६ मील पश्चिमोत्तर दिशा में सित्तननवासल में पहाड़ काटकर बनाये हुये एक मन्दिर की छतों, स्तम्भों और किनारों पर चित्रित मिले हैं । वे सातवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल के पल्लव शासक राजा महेन्द्रवर्मा ( प्रथम ) के समय के अनुमान किये जाते हैं । मुख्य चित्र बरामदे की छत में है । उसमें कमलों से भरा हुआ एक सरोवर है, जिसमें फूलों के बीच में मछलियाँ, हंस, भैंसे और हाथी हैं तथा कमलों को हाथ में लिये हुये तीन साधु हैं । उन साधुओं की अगानुरूपता रंग और मुख-मधुरता देखते ही बनती है । अर्द्धनारीश्वर, गंधर्वों तथा अप्सराओं के भी चित्र हैं ( ओमा, वही ) ।

इनके अतिरिक्त क्राहियान ने ४०० ई० के लगभग कपिलवस्तु के एक महल में उत्तम चित्र देखा था, जिसमें बुद्ध सफ़ेद हाथी पर सवार होकर अपनी माता की ओर जा रहा था । इसी प्रकार पश्चिमोत्तर भारत के एक विहार को देखकर

की थी। जब से उसको सम्राट् के दरबार में प्रवेश होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, सम्राट् की कृपा-कांति से सुतिमान् होकर अपने उद्योग में ख्यातनामा

ह्वेनसांग (६२६—६४२ ई०) चौक उठा था, क्योंकि उसके दरवाज़े, खिडकियाँ और भित्ति-पटल सब के सब उत्तम चित्रों से परिष्कृत थे। अब इन चित्रों का पता नहीं है। कदाचित् ऐसे ही और भी स्थानों में चित्र रहे होंगे, जिनका अब कोई चिन्ह शेष नहीं है।

इतिहासकार तारानाथ के उद्गारों से प्रतीत होता है कि तीसरी शताब्दी से पहले की भारतीय चित्रकला और भी अधिक उत्कृष्ट थी। उसके पश्चात् तीन शैलियों की तीन चित्रशालाएँ बन गईं, एक मध्य भारतीय, दूसरी पश्चिमीय और तीसरी पूर्वीय। मध्य भारतीय चित्रशाला वर्तमान युक्तप्रान्त में ही रही होगी। उसका संस्थापक मगधजन्मा बिम्बसार था, जो कि चित्रकार और मूर्तिकार दोनों था। वह लगभग पाँचवी-छठी शताब्दी के शासक राजा बुद्धपक्ष के समय में था। तारानाथ के लेखानुसार इस चित्रशाला के चित्रकार बहुत थे और इनकी कृतियाँ पूर्वकालीन देव निमित्त चित्रों के सदृश थी। इससे सिद्ध है कि बिम्बसार ने अपने से दस शताब्दी पूर्व की पुरानी कला को जीवित किया। अनुमानतः पश्चिमीय चित्रशाला राजपूताना में थी। उसका प्रधान कार्यकर्ता मारवाह-जन्मः श्रङ्गधर था जो उदयपुर के शासक शिलादित्य गुहिल (७वीं शताब्दी) के समय में विद्यमान था। इस चित्रशाला के चित्र यक्षशैली से बहुतांश में मिलते हैं। पूर्वी चित्रशाला के मुख्य कलाकार धीमान और उसका पुत्र वीतपालो थे,

जो वारेन्द्र (बंगाल) के राजा धर्मपाल और देवपाल (नवीं शताब्दी) की अध्यक्षता में काम करते थे। इस चित्रशाला की शैली नागशैली के अनुरूप थी। धीमान और वीतपाल भास्कर-शिल्प और धातु-क्रिया में भी निपुण थे। छठी से दसवीं शताब्दी तक कश्मीर, नेपाल, बर्मा और दक्षिण भारत में भी सहायक चित्रशालाएँ स्थापित हुई थीं, परन्तु तारानाथ के मत से वे शालाएँ उपर्युक्त तीनों चित्रशालाओं की कृतियों से ही प्रेरित हुई थीं (P Brown, ibid, p 41)।

मध्यकालीन—७०० ई० से १६०० ई० तक की चित्रकारी का वर्णन इसके अन्तर्गत है। ६४८ ई० में हर्ष की मृत्यु के पश्चात् अकबर के राजत्वकाल में १२७० ई० तक, भारतीय चित्रकला की शृङ्खला, कुछ टूटी फूटी दशा में प्राप्त होती है। इस १००० वर्ष के अन्तर के भी कुछ नमूने हमारे सामने हैं, जिनमें बारहवीं शताब्दी के आस-पास बंगाल के ताड़-पत्रों पर बनाये हुये चित्र, बारहवीं शताब्दी में निमित्त ब्राह्मणशैली के इल्लोरा के चित्र, १२वीं शताब्दी के जैन-पुस्तकों के चित्र, और कुछ विभिन्न नमूने हैं। वास्तव में इस दीर्घकाल में बड़े-बड़े राजनैतिक और धार्मिक परिवर्तन हुये, जिनके कारण देश में हलचल मची रही। हिन्दू शासकों के सामने राज्य-रक्षा का प्रश्न मुख्य था और कलाओं का संरक्षण और उनकी उन्नति इत्यादि का प्रश्न गौण रूप में था। धार्मिक रोक के कारण अकबर से पूर्ववर्ती मुसलमान शासकों को इस कला में कोई विशेष अभिरुचि नहीं थी। इसी



होगया और विशेष सफलता प्राप्त की। २. ख्वाजा अब्दुस्समद शीरीकलम— वह शीराज का रहने वाला है। यद्यपि वह इस विद्या को नौकर होने के

लिए कदाचित् चित्र कम बन सके। उक्त बातों के होते हुये भी यदि चित्र बने हों तो वायु-जल के दोष से वे मिट गये होंगे अथवा विरोधी मतावलम्बियों ने नष्ट कर दिये होंगे (Ibid, pp 43-44)। उस समय के भास्कर-शिल्प के उत्तमोत्तम नमूने एलीकैन्टा, इल्लोरा, जावा के बोरोबदूर तथा इण्डोचीन के अङ्गकोरवाट के मन्दिरों में आज भी देखे जा सकते हैं।

इस बीच में भारतीय सभ्यता और चित्रकारी बाहर फैली। चीनी तुर्किस्तान का ख़ुतन प्रदेश एक समय सम्पन्न था और भारतवर्ष के अधीन था। पहली शताब्दी में वह ग्रीक (यूनानी), भारतीय, ईरानी और चीनी सभ्यता सम्मेलन का केन्द्र था। जल-धाराओं के सूख जाने के कारण यह प्रदेश रहने के योग्य नहीं रहा। वहाँ से पड़े हुये यारक़न्द और तरीम के इस बेसिन की खुदाई ग्रूएनवेडेल, स्टीन और लेकाग (Gruenwedel, Stein and Lecog) की देख-रेख में हुई। उस बालुकार्णव के अन्दर से कला की जो बची खुची वस्तुएँ निकली हैं, उनमें भित्ति-चित्र, सचित्र हस्तलिखित ग्रंथ, चित्रांकित ऋडे, रेशम पर बनी हुई रंगीन चित्रकारी, और कटे हुये फूस तथा चूना मिले हुये धनस्पति तन्तुओं एवं संगमरमर के चूरे, पत्थर और लकड़ी की बनी हुई मूर्तियाँ मिली हैं। यह सामग्री ८वीं से ११वीं शताब्दी तक की अनुमान की जाती है। उक्त वस्तुओं के अवलोकन से उन पर हिन्दू, यूनानी, चीनी और सासानी सभ्यताओं का प्रभाव ज्ञान पड़ता है, परन्तु औरों की अपेक्षा

उनमें अजयटा के चित्रों में अधिक साम्य है। ११वीं शताब्दी में मगध और तिब्बत में विशेष धार्मिक सम्बन्ध था। इसलिए दोनों देश चित्रकला में प्रायः एक ही शैली का उपयोग करते थे। इसके अतिरिक्त तिब्बत में बौद्धधर्म का प्रचार ७वीं शताब्दी में ही हो चुका था। इसलिए वहाँ उक्त धर्म-सम्बन्धी साहित्य और कला अनुकूल वातावरण पाकर खूब फैली। तिब्बत के चैत्य और विहार अजयटा की दीवारों आदि के चित्रों के समान चित्रित हैं। उनमें कुछ चित्र पुरानी शैली के भी हैं। वहाँ की ध्वजाओं में भी साम्य है।

१२वीं शताब्दी की उल्लेखनीय कला में इल्लोरा के चित्र हैं, जो घटनामूलक और वीरतासूचक हैं। चित्रों में सिपाही कच्छी घोड़ों पर सवार हैं और कुछ सैनिक पैदल भी हैं। उनकी बड़ी-बड़ी भूँछें हैं, और ऊपर चढ़ी हुई दाढ़ी हैं। सैनिक लंबे-लंबे डग रखते हुये आगे बढ़ रहे हैं। शत्रु सेना के सिपाही बिना दाढ़ी के हैं, जो पराजित होने पर युद्ध बन्द करने को कह रहे हैं। प्रमार राजा, जो पहले हाथी के ऊपर से लड़ रहा था, पालकी पर आता है। उसके सामने योद्धा पक्षि बाँधकर चलते हैं। एक ओर एक दूसरी सेना स्थित है, और रास्ते में महिलाएँ मगल-सामग्री लिये खड़ी हैं। पराजित शत्रु भी उपस्थित है। सब चित्र रंगीन हैं। इनकी शैली अजयटा और राजपूत-मुगल शैली के बीच की कड़ी मालूम होती है (Ann. Re Arche Dept of H E H the Nizam's Dominion, 1337 F, 1927-28, Plates D. E.)

पहले से जानता था तथापि राजकीय दृष्टि-रसायन से उसकी योग्यता का पद उच्च हो गया। उसकी कृत्रिमता वास्तविकता में परिणत होगई और

चित्रों में जीवन है, और वे भाव-पूर्ण हैं। वीर सैनिक भीमकाय हैं। उनके चेहरे भरे हैं। वे कवच और गोल ढालें धारण किये हुये हैं। उनके शरीर से प्रचण्डता प्रदर्शित हो रही है। घोड़े मानों उड़ा चाहते हैं। हाथी और घोड़े लड़ाई में व्यस्त हैं। पराजित राजा घबराया हुआ है। ये चित्र राजा उदयादित्य की विजय से सम्बन्ध रखते हैं। ११३८ ई० में जब मालवा का राजा भोज वीरगति को प्राप्त हुआ तो उसके भतीजे उदयादित्य ने अपने चचा के शत्रुओं को अधीन करके “दक्षिणवालों को पराजित किया और अर्बली (अर्बुदाचल) पहाड़ तक अपना राज्य स्थापित किया। मेरी समझ में इसी विजय की यादगार में कुछ चित्र इन्होंने इलोरा के गुहा-मंदिरों में बनवाये, जिनमें राजा के चित्र के ऊपर ‘प्रमार’ लिखा हुआ है।” (जायसवाल ‘द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ’ में)। चित्र की पूरी इबारत “स्वस्ती स्त्रि प्रमारराज” (स्वस्ति श्री प्रमारराज) है। भोजराज प्रमार वंश के थे, उपयुक्त पंक्ति उन्हीं के पूर्वज के नाम से तत्कालीन विजेता राजा को सूचित कर रही है।

इसके पश्चात् इस्लामी राज्य स्थापित होने के बाद से ३०० वर्ष तक के कोई विशेष चित्र नहीं पाये जाते।

मुगलकालीन—मुगलों से पहले के मुसलमान शासकों ने धार्मिक निषेध के कारण चित्रकला को नितान्त प्रोत्साहन नहीं दिया। १४वीं शताब्दी में फ़ीरोज़ तुग़लक़ ने अपने महल की दीवारों पर तक चित्र बनाने की मनाही कर दी थी। इसके विरुद्ध मुग़ल शासक आरम्भ से ही इस कला के

प्रेमी रहे हैं। तैमूर के पुत्र शाहरूख़ मिर्ज़ा, उसके वंशज बायसंगर मिर्ज़ा एवं हिरात क हुसेन बायक़रा को इस कला में अभिरुचि थी। पिल्लुले शासक के दरबार में ही प्रसिद्ध चित्रकार बेहज़ाद (१४८७-१५२४ ई०) था। चीनी और ईरानी शैली ने उसके हृदय में सग्निस्रण का अच्छा स्थान पाया था (Ishwari Prasad, History of Muslim Rule in India, p 764, 1930)।

बाबर कला और सौन्दर्य का उपासक था। उसे उमड़ते हुये सोतों, बहते हुये झरनों तथा खिले हुये फूलों की देखकर अपूर्व आनन्द प्राप्त होता था। मालूम नहीं होता कि उसने चित्रकला की उन्नति के लिए कोई यत्न किया था, किन्तु अलवर की ‘तुजुकबाबरी’ की हस्तलिखित पुस्तक से प्रकट होता है कि पूर्वजों के समान उस (बाबर) के संरक्षण में भी चित्रकार कार्य करते थे। उक्त ग्रंथ के चित्रों से उसके शासन की प्रचलित चित्र-शैली का भी अनुमान किया जा सकता है (L Binyon, Court Painters of the Grand Moghals, Intro p 14)। बाबर कला-पारखी भी था। उसने उस समय के प्रसिद्ध चित्रकार कमालुद्दीन बेहज़ाद की कला की आलोचना करते हुये लिखा था कि “चित्रकारों या नक्काशों में उस्ताद बेहज़ाद था। वह बहुत ही सुन्दर चित्रकार था, किन्तु नए दाढ़ीरहित चेहरे अच्छे नहीं खींच पाता था। गर्दन बहुत बड़ी बनाता था। दाढ़ी वाले चेहरों का चित्रण बहुत ही अच्छा करता था।”

हुमायूँ को भी इस कला में अनुरक्ति थी। परन्तु उसकी सारी उन्न चढ़ाईयों

उसकी शिक्षा से उसके शिष्य दत्त होगये । ३ दसवंथ—यह एक कहार का पुत्र है । यह लड़का इस कारखाने में लगा रहता था और चित्रकारी

और धावों में बीती, इससे वह किसी स्थान पर स्थित नहीं हो सका और इस कला के सम्बन्ध में कोई विशेष उन्नति नहीं कर सका । उसने घुरासान के सब बाग बागीचों को घूम-घूम कर देखा था । साथ ही फ़ारस के संगीत और काव्य का भी ज्ञान प्राप्त किया था । उन्हीं दिनों उसने शाह तहमास्प के उदार सरक्षण में स्थापित चित्र शालाओं तथा शिष्यालयों का निरीक्षण किया था, और शीराज़ में मीर सैयदअली तबरेज़ी ( इसका उपनाम जुदाई था । द्वितीय ग्रंथ में कवियों के प्रकरण में २५वें नम्बर पर इसकी कविता का नमूना दिया हुआ है ) और ख़्वाजा अब्दुस्समद से उसकी भेंट हुई थी । १५१० ई० में उसने दोनों चित्रकारों को अपने काबुल के दरबार में बुला लिया । यहाँ उसने तथा उसके अल्पवयस्क पुत्र अकबर ने उपयुक्त दोनों चित्रकारों से आलेखन कला-सम्बन्धी शिक्षा ग्रहण की । यहीं उसने मीर सैयदअली को 'दास्ताने-अमीरहमज़ा' के चित्र बनाने की आज्ञा दी । इस कार्य की मीर सैयदअली और ख़्वाजा अब्दुस्समद तथा कई ईरानी और हिन्दुस्तानी चित्रकारों ने कई वर्षों में समाप्त कर पाया था । भारतवर्ष में मुगलकालीन चित्रकारी का श्रीगणेश यहीं से होता है और इसी ने आगे चलकर अकबर के समय में ख्याति प्राप्त की (Edwardes & Garrett, *Mughal Rule in India*, p 315) ।

अकबर अपने जीवन के पहले भाग में तो अन्त पुरीय संरक्षण से मुक्त होने और उज़बेग अमीरों से छुटकारा पाने तथा अपनी

शक्ति को दृढ़ करने में लगा रहा । दफ़र मीर सैयदअली 'अमीरहमज़ा' के चित्र बनाने में सलग्न रहा । जब वह मका जाने लगा तो उक्त कार्य का दायित्व ख़्वाजा अब्दुस्समद को सौंप गया । सुलेखा-चार्य होने के कारण उसको 'शीरीकलम' ( मधुरलेखनी ) की उपाधि मिली थी ( द्वितीय ग्रंथ में मसबदार नं० २६६ का जीवन चरित्र देखिये ) । जह्दागीर के शब्दों में 'उन दिनों उसके जोड़ का कोई चित्रकार नहीं था ।' 'अमीरहमज़ा' के चित्र तबरेज़ के प्रचलित चित्रों के सदृश थे । उनमें भारतीयता की फ़लक नहीं थी । परन्तु १५६२ ई० में सगीत-सम्राट् तानसेन के आने पर, जो चित्र खींचा गया था, उसमें प्रकट होता है कि उस समय हिन्दू और मुगल-शैलियों का निदिष्ट मिश्रण प्रदर्शित होना आरम्भ हो गया था (P Brown, *Indian Painting under Mughals*, p 61) । परन्तु जब भारतवर्ष के एक विशेष भाग पर अकबर का अधिकार हो गया, और उसके उत्तराधिकारी मल्लिक का जन्म भी हो चुका तो उसने शाहज़ादे के जन्मोपलक्ष में १५६६ ई० में फ़तहपुर-सीकरी का निर्माण-कार्य आरम्भ कराया, उसी मितो से मुगलशैली की कला का जड़ जमना शुरू हुआ । शाही इमारतों के चित्राङ्कन के लिए उक्त ख़्वाजा की अध्यक्षता में सो से अधिक ईरानी और हिन्दुस्तानी चित्रकार नियत किये गये । दोनों स्थानों के चित्रकार पृथक्-पृथक् कार्य करते थे, परन्तु १५७० ई० से १५८२ ई० तक दीवारों के आलेखन में पारस्परिक सम्बन्ध

सोखने की लालसा से दीवारों पर चित्र बनाया एवं आकृतियों खींचा करता था। एक दिन सम्राट की दूर दृष्टि उस पर पड़ी। उसने उससे उस्तादी

तथा पूछगछ ने इण्डो-पर्शियन ( हिन्दु-स्तानी-ईरानी ) नामक एक नवीन शैली को जन्म दिया (Ibid) ।

अकबर के १७ प्रधान चित्रकारों में १३ हिन्दू थे। मुसलमानों में इबाजा के बाद कर्तुल कलमाक था, जो १५८२ ई० में दरबार में प्रविष्ट हुआ था। इसरो कुली, जमशेद तथा पांच अन्य चित्रकार कश्मीर के थे। हिन्दुओं में बसावन, लाल, और दसवंथ ( मृत्यु १५८४ ई० ) मुख्य थे। केशव, मुकुन्द, हरिवश आदि अधिकतर कायस्थ, चितेरा, सिलावट और खाती जाति के थे। प्रधान चित्रकार ढोंचा बना देता था, फिर जो चित्रकार जिस भाग के बनाने में पटु होता था, वही उसके बनाने पर तैनात किया जाता था। 'रज्मनामा' के चित्रों के बनाने में इस नियम का पालन किया गया था। पहले उक्त कार्य दसवंथ, बसावन और लाल को सौंपा गया। उन्होंने अपना काम पूरा करके स्पष्ट अवयवों की रचना का कार्य अपने साथियों से करवाया था। चित्रशाला के अन्तर्गत एक अलकृत करने वाला विभाग था, जिसमें मुलम्मासाज़ और नक़्श आदि भी थे। चित्रशाला पर सम्राट का सीधा अधिकार था। चित्रकारों को सैनिक पद प्राप्त थे। शाला का प्रधान अधिकारी इबाजा अब्दुस्समद चारसदी मंसबदार था। इस प्रकार चित्रशाला एक उत्तम सैनिक सगठन के ढग पर थी (L. Binyon, Court etc, pp 45-46, P. Brown, Ibid, pp 120-3, Smith, Akbar, p 429-30)।

चित्रकारी की सामग्री के सम्बन्ध में भी उन्नति हुई। चित्र बनाने का उत्तम कागज़ उन दिनों फ़ारस से आता था। पीछे वैसा ही कागज़ भारतवर्ष के पुराने कारख़ानों में भी तैयार होने लगा था। इस दिशा में मुगल सम्राटों ने विशेष ध्यान दिया। रँगों का वर्णन पृष्ठ २६२ के नोट में हो चुका है। चित्र बनाने की कलम या कूची में भी सुधार किया गया था।

अकबर के समय की सचित्र पुस्तकों में 'रज्मनामा' जयपुर में, 'बाबरनामा' लन्दन के ब्रिटिश म्यूज़ियम में, और 'अकबरनामा' लन्दन के विक्टोरिया और अल्बर्ट म्यूज़ियमों में विद्यमान हैं। 'बाबरनामा' में पशु, पक्षी और वृक्षादिकों के भी चित्र हैं। ये चित्र ईरानी शैली के हैं, और प्राकृतिक से हैं। इनमें भारतीयता की झलक कम है। उनमें कुछ चित्र मसूर नक़्श के भी बनाये हुये हैं, जिसने अकबर के समय की अपेक्षा जहाँगीरी शासन में अधिक ख्याति पाई थी। उक्त ग्रंथ में एक सर्वांग सुन्दर चित्र मोर का है, जो जगन्नाथ का बनाया हुआ है। अबुल-फ़ज़ल ने जिन चित्रकारों का विशेष रूप में उल्लेख किया है, जगन्नाथ उनसे पूर्व के विख्यात चित्रकारों में था। दुर्भाग्य से सम्राट अकबर की चित्रावली में अब विरला ही चित्र बचा होगा, परन्तु ब्रिटिश म्यूज़ियम में बाबर के पिता उमरशेख़ मिर्ज़ा का शिकार-सम्बन्धी जो चित्र मौजूद है, यदि वह अकबर के राजत्वकाल का है, तो उससे भारतीय और ईरानी कला के मञ्च और आनन्दप्रद मिश्रण की

के गुण देखकर उसे ख्वाजा अब्दुस्समद को सौंप दिया। थोड़े ही दिनों में वह सब चित्रकारों से आगे बढ़ गया और अपने समय का अभ्रगण्य होगया।

कल्पना की जा सकती है, साथ ही उससे राजकीय संग्रहालय में संग्रहीत चित्रों की कला का विश्लेषण हो सकता है (Edwardes etc, *ibid*, p 320)। स्मिथ ने लिखा है कि 'आईन' में उल्लिखित सभी चित्रकारों के नमूने लन्दन में मौजूद हैं। केवल हरिवंश की कला-कारिता का उदाहरण मेरी दृष्टि में नहीं आ सका। पर उसके भी नमूने हो सकते हैं, जो मेरी दृष्टि से बच गये होंगे (Smith, *ibid*, p 428)। भित्ति-चित्रों में फ़तहपुर साकरी की दीवारों पर के बचे-खुचे और अग-भग चित्र हैं। उनमें सर्व श्रेष्ठ चित्र अकबर के शयनागार की उत्तरी दीवार पर है, जो 'नाव पर आठ मनुष्य' के नाम से पुकारा जाता है। यह इमारत लगभग १५७०—७१ ई० की है (*Ibid*, p 431)।

यद्यपि अकबर के चित्रकार गुजरात, पंजाब, कश्मीर, फ़ारम और तुर्किस्तान आदि विभिन्न स्थानों तथा अनेक जातियों और भिन्न-भिन्न मतों के थे तथापि उन कलाकारों का समूह एक शाला के रूप में परिणत होकर फला फूला। फला फूला इसलिये कि उसको एक ही उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रोत्साहन मिला था, जिसका लक्ष्य यह था कि ऐसा उत्कृष्ट काम तैयार हो, जो उसके उत्तरदायी सूत्रधार के उत्कृष्ट मस्तिष्क की स्वीकृति प्राप्त कर सके (P Brown, *ibid*, pp 123-24)।

जहांगीर प्रकृति और सौंदर्य का बड़ा उपासक था। बाबर की तरह बाग-बगीचों

फूलों और प्राकृतिक दृश्यों के देखने में उसे बड़ा आनन्द आता था। इसीलिए जहांगीर तेरह बार कश्मीर गया था। जब वहाँ वह किसी उत्तम फूल या वृक्ष को देखता था, तो अपने चित्रकारों को तुरन्त उसका चित्रण करने की आज्ञा देता था। लारेंस बिन्यान के शब्दों में वह एक उत्तम चित्र-संग्रहकर्ता, उत्कृष्ट कृति का गुणग्राहक, श्रेष्ठ कला-पारखी, अपने कलाकारों की कुशलता पर अभिमान करने वाला, और पसन्द आने वाले चित्र का अधिक मूल्य देने वाला था (L Binyon, *Court etc*, p 50)। 'तुजुकजहांगीरी' में वह कहता है, "चित्रों को पसन्द करने तथा उनके निर्णय करने का मेरा अभ्यास इस सीमा तक पहुँच चुका है कि यदि कोई भी कृति मेरे समक्ष लाई जाय, चाहे वह कृति मृतक चित्रकार की हो अथवा जीवित की, और मुझे उन चित्रकारों के नाम न बतलाये जाय, मैं तत्क्षण बतला दूँगा कि यह कृति अमुक व्यक्ति की है। यदि एक ही चित्र में कई आलेख्य हों और प्रत्येक चेहरा एक भिन्न कलाकार का निर्माण किया हुआ हो, तो भी मैं पहचान सकता हूँ कि कौन चेहरा किसका बनाया हुआ है। यदि कोई दूसरा व्यक्ति किसी चेहरे की आँखें और भौंहें बनावे तो मैं मालूम कर सकता हूँ कि मूल मुखमण्डल किसका बनाया है और उसमें नेत्र और भुकुटी का चित्रण किसने किया है (Rogers & Beveridge, *Memoirs of Jahangir*, vol 1, p 20, 1909)।" यद्यपि इन शब्दों

## पत्र-पत्रिकाएं और विद्वान् क्या कहते हैं ?

सरस्वती, इलाहाबाद—देखने से जान पड़ता है कि पाण्डेय जी ने 'बाइने-अकबरी' का कोरा-कोरा अनुवाद ही नहीं किया है, किन्तु उस महत्वपूर्ण ग्रन्थ के स्थूल-स्थूल पर उपयुक्त टिप्पणियाँ लगाकर उसे और भी अधिक उपयोगी बना दिया है। यही नहीं, उन्होंने अपनी टिप्पणियों को आवश्यक नक़्शों तथा चित्रों से अलंकृत करके सारे विषय को भले प्रकार बोधगम्य बना दिया है। इसमें सन्देह नहीं कि इस महत्वपूर्ण ग्रंथ के अपने अनुवाद को तादृश महत्वपूर्ण बनाने में पाण्डेय जी ने अपने भरसक कुछ बाज़ी नहीं रक्खा, और इसके इस तरह तैयार करने के लिए वे धन्यवाद के ही पात्र नहीं हैं, किन्तु इसके साथ यह भी आवश्यक है कि साहित्य-प्रेमी अधिक संख्या में इसके ग्राहक बनकर इस ग्रंथ के प्रकाशन में सहायक बनें।

चाँद, इलाहाबाद—“हिन्दी-भाषा का सौभाग्य है कि पं० रामलाल पाण्डेय जैसे अप्यवसायी व्यक्ति ने इस कार्य में हाथ लगाया है और मातृ-भाषा के भंडार में एक अमूल्य रत्न सज्जित करने का बीड़ा उठाया है। उन्होंने इस कार्य के लिए कितना त्याग किया है तथा प्रत्येक विषय को कितनी खोज-बीन के साथ लिखा है, इसके सम्बन्ध में भारत के बड़े से बड़े विद्वानों ने उनकी मुक्त कंठ से सराहना की है तथा उनकी सहायता के लिए आपोल की है। ...समी ने इस बात की तार्ज्ज की है कि पाण्डेय जी का अनुवाद बहुत ही शुद्ध और गवेषणापूर्ण हुआ है।

विश्वमित्र, कलकत्ता—विद्वान् अनुवादक ने इस बृहत् कार्य को सम्पन्न करने में जिस विद्वत्ता, श्रमशीलता एवं अध्यवसाय का परिचय दिया है उसकी जितनी

प्रशंसा की  
और हिन्दी

भारतीय इतिहास

### वीर सेवा मन्दिर

पुस्तकालय

वि

प्रशंसनीय

समाप्ति के

प्र

चिर अग्रणी

लाभ होगे

सामग्री और

अनुवाद ई

पाण्डेय जी

सु

ऐतिहासिक

को इसे अप

वत

उक्त ग्रन्थ

सम्पूर्ण प्रति

समावेश हो

रा०

इन्दौर—इस

उद्धृत की

सम्पूर्ण होगा,

अखिल हिन्दु

काल न०

पाण्डेय जी के  
की सकुशल

सार उनका

व से पूर्ण

द्वे की प्रचुर

का कोरा

टिप्पणियाँ

तीय है।

दी-प्रेमियों

पाण्डेय ने

कृष्ण की

कता का

ल डी,

पण्डिया

पान्तर

ग्रंथ की

## WHAT DO SCHOLARS AND THE PRESS SAY ?

*Mohammad Habib Esq., B.A., (Oxon), Professor of History and Politics  
Muslim University, Aligarh.*

Pt. Ram Lal Pandeya Sahib has devoted more than ten years under circumstances of the greatest difficulty in translating the famous *Ain-i-Akbari* of Abul Fazl into Hindi. I have compared some passages of the Persian with Panditji's translation and found it very expressive and accurate. Panditji is a very good Persian scholar, and his translation includes the passages omitted by Blochman. Panditji has taken great trouble to understand all topics dealt with by the *Ain*, and his foot-notes which not only explain the *Ain*, but also bring its information up-to-date, will be found to be comprehensive and illuminating.

*Pandit Lakshmi Kant Tripathi, M.A., Professor of History, Christ Church College, Cawnpore.*

There are passages here and there which defy translation. But Panditji has grappled most successfully with such refractory and baffling passages, and, what is much more wonderful, has faithfully presented Abul Fazl's meaning and ideas in charming and liquid language. All this work he has been doing without expecting any reward or remuneration and under most untoward circumstances whose gravity only those, who know him intimately, can appreciate. He has been engaged in this self-imposed task in a truly *nishkama* spirit like *savants* and sages of old whose devotion to their work was only equalled by the energy that they put forth. Such men are rare, indeed, in these days. The more I think of this work the more filled am I with a feeling of admiration—I had almost said—adoration for the high scholarship and unbounded energy displayed by Pandit Ram Lal Pandeya in this enterprise.

*Christopher Acroyd Esq., M.A. (Oxon), Prof. of History, Christ Church College, Cawnpore.*

I have great pleasure in expressing my appreciation of his efforts in translating a work, which is regarded as being almost untranslatable.

*Kah Shanker Bhatnagar, Esq., M.A., Prof. of History, Sanatan Dharma College, Cawnpore.*

I was agreeably surprised by the accuracy, lucidity and aptness of the translation of this difficult and encyclopaedic work. I have no doubt that when a genuine Indian School of History comes into being, Panditji will be remembered for the stupendous spade-work which this translation has involved.

*Lala Govind Ram Seth, M.A., Prof. of History, D.A.V. College, Cawnpore.*

I congratulate you on the excellence of your work.

*P. E. N., Bombay.*

In 1935, after nine years of painstaking labour, Pandit Ram Lal Pandeya of Cawnpore completed his translation of *Ain-i-Akbari* from Persian into Hindi. It is understood that, though *Ain-i-Akbari* had been translated previously into English, this is its first appearance in an Indian language.





# आईने-अकबरी

खंड १, अंक २

भाषान्तरकार तथा स. तदक

रामलाल पाण्डेय

## आईने-अकबरी के ग्राहकों के लिए नियम ।

- ( १ ) आईने-अकबरी का प्रति अंक प्रति तृतीय मास में प्रकाशित होगा, जिसमें २०×२६ साइज के २८ पौण्ड और ४० पौण्ड के काराज पर छपे हुए रायल अठपेजी ६४ पृष्ठ होंगे ।
- ( २ ) जो सज्जन कम से कम १००) एकमुश्त पेशगी देंगे, उनकी सेवा में प्रकाशन के क्रम से श्रेष्ठ संस्करण की एक प्रति भेजी जाया करेगी, और ग्रन्थ के अन्त में उनका नाम भी प्रकाशित किया जायगा ।
- ( ३ ) स्थायी ग्राहको के लिए वार्षिक मूल्य श्रेष्ठ संस्करण का ७) और साधारण संस्करण का ४।) होगा ।
- ( ४ ) एक प्रति का मूल्य डाक-व्यय के अतिरिक्त श्रेष्ठ संस्करण का २) और साधारण संस्करण का १।) होगा ।

प्रकाशक

विद्या-मन्दिर, कानपुर

## वीर सेवा मन्दिर दिल्ली

★

कम मर्यादा

काम नो

खण्ड

दी, साहित्य महारथी:—फारसी में आईने-  
डित रामलाल पाण्डेय ने उसकी सभी जिल्दों  
म किया । प्रकाशित होजाने पर उससे  
मि होगी । साहित्य की अभिवृद्धि की दृष्टि  
ना, हिन्दी भाषा के प्रेमियों और सम्पन्न

हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस:—अनुवाद  
अनुवाद मे पाये जाते हैं । ऐसा अपूर्व  
रस रखने मे उन्होने चकितकर कार्य किया

नाद करके पंडित जी ने उस रत्न को एक  
एक हर्ष ही नहीं बड़े गौरव की बात है ।

श्री महेश प्रसाद, एम एफ (आनर्स-इन-अरबी) हेड-आफ दी डिपार्टमेण्ट  
आफ अरबी, फार्सी, और उर्दू, बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी, बनारस—आईने-अकबरी  
के लेखक विद्वद्दर अबुलफज्जल की लेखन-शैली एक विशेष ढंग की है; उस विशेषता  
को पंडित जी ने खूब ही निभाया है । निदान यह अनुवाद उत्तम और विश्वास-  
पूर्ण है ।

श्रीमान् काका कालेलकर, प्रिंसिपल गुजरात-विद्यापीठ—इस ग्रंथ पर मूल  
फारसी के ऊपर से सीधा हिन्दी अनुवाद करके श्रीमान् पाण्डेय जी ने देश का  
बहुत ही उपकार किया है । ऐसे कार्य निष्ठा और परिश्रम से हो हो सकते हैं ।  
मुझे आशा है कि यह अनुवाद शीघ्र ही प्रकाशित हो जायगा, और इसका  
साहित्य-संसार में उचित आदर होगा ।

पं० अम्बिका प्रसाद बाजपेयी, परीक्षक कलकत्ता-विश्वविद्यालय, और  
भूतपूर्व सम्पादक 'भारत मित्र' और 'स्वतंत्र' कलकत्ता—वास्तव मे पाण्डेय जी  
का यह कार्य बड़ा ही प्रशंसनीय है । अनुवाद अच्छा हुआ है और मूल भाव की  
बराबर रक्षा की गई है । मैं पाण्डेय जी के उद्योग की सफलता चाहता हूँ ।

मौ० आज़ाद सुभानी—आईने-अकबरी का यह तर्जुमा निहायत सही और  
मुकम्मिल तर्जुमा है, और इसका मुस्तहक है कि मुल्क इस पर अपनी तबज्जोह  
सादिक मञ्जूर करे । मुल्क को पंडित जी का इस खिदमते जलौला के लिए जो  
इल्मी भी है और तमद्दुनी भी बेहद शुक्र गुज़ार होना चाहिए ।

## टकसाल के कर्मचारी



पृ० ३७ से ४६ तक देखिये

## टकसाल के कर्मचारी



पृष्ठ ३० से ४६ तक देखिये

## टकसाल के कर्मचारी



पृष्ठ ३७ से ४६ तक देखिये ।



तारीख २६ बहमन<sup>१</sup> सम् ३६ इलाही ( १५६२ ई० ) को दूसरा क़ानून ( अर्थात् अज़दुद्दौला का क़ानून ) म्वीकार किया गया । पर उसके अनुसार तीन चावल तक घिसी हुई मोहर और छे चावल तक कम रुपया, जो पहले पूरे वज़न का शुमार किया जाता था, पूरी तौल का माना जाना स्वीकार नहीं किया गया । इससे कमीने चोट्टे की शक्ति क्षीण हो गई । यदि टकसाल के कर्मचारी ही सिक्का उतनी तौल में कम बनाते अथवा खजाने के अधिकारी उतना वज़न कम कर दें, तो पहले के क़ानूनो में इसका कोई उपचार नहीं था । पर इस नई व्यवस्था में मचाई का बाज़ार सज गया और संसार सुखी हो गया । इसके अतिरिक्त, निर्लज्ज चोट्टे छांट कर हलकें चावलो में सिक्का तौलते थे और तीन चावल घिसी हुई मोहर को छे चावल ठहराते थे, एवं छे चावल कम होने पर नौ चावल घटाते थे । इसी प्रकार वह कमी बराबर बढ़ती जाती थी, और बहुत मा सोना बीच में ही हडप लिया जाता था तथा धूर्त लोग सदा क्षति पहुँचाने में लगे रहते थे ।

देश	मुख्य सिक्का	तुलनात्मक मूल्य	
		शि०	पैम
पेरू	लिब्रा = १० सोल	२०	०
पुर्तगाल	इस्क्युडो (स्वर्ण) = १०० सेगटावो	४	५ <sup>१</sup> / <sub>४</sub>
रूमनिया	लेउ = फ्रैंक = १०० बनी	०	५ <sup>१</sup> / <sub>४</sub>
रूस	रुब्ल = १०० कापेक	२	१ <sup>१</sup> / <sub>२</sub>
स्पेन	पिएसटा = फ्रैंक = सेगटाइम्स	०	६ <sup>१</sup> / <sub>२</sub>
स्ट्रेट्स सेटलमेण्ट	डालर (चादी)	२	४
स्वीडेन	क्रोना = १०० ऊर	१	१ <sup>१</sup> / <sub>२</sub>
स्वीट्ज़रलैण्ड	फ्रैंक = १०० सेगटाइम्स	०	६ <sup>१</sup> / <sub>२</sub>
टर्की	लीरा = १०० पियास्टर	१८	०
अमेरिका (यू० स्टेट्स)	डालर (स्वर्ण) = १०० सेगटस्	४	१
उरुग्वे (अमेरिका)	पेसो (स्वर्ण) = १०० सेगटाइम्स	४	३
युगो-स्लेविया	दीनार = १०० परम्स	०	६ <sup>१</sup> / <sub>२</sub>

(Nelson's World Gazetteer, 1932, P 575).

१—फ़ारसी का ग्यारहवां महीना जो बहुधा फाल्गुन के इधर उधर पड़ता है और कभी कभी फाल्गुन में ही । हर सौर मास के प्रति दूसरे दिन का नाम भी बहमन होता है ।

इस लिए सरकारी हुक्म से बाबागोरी<sup>१</sup> चावल बनाये गये, और उनसे सिक्के तौला जाना निश्चित हुआ। उसी वर्ष और उसी मास में इस बात का भी बहुत प्रयत्न किया गया कि खजांची और अमल परदाज प्रजा से किसी खास तरह के सिक्के न मांगे। लोग, जो कुछ भी दे, उसकी तौल और खराई में जो कमी हो, हाल की दर के अनुसार हिसाब करके—बिना कुछ और घटाये बढ़ाये—लेले। इस पवित्र आज्ञा ने भूठे व्यौहारियों की जड काट दी, लोभियों को सन्तोष की शिक्षा दी और सम्पूर्ण प्रजा को अत्याचारियों की दुष्टता से मुक्ति दिलाई।

## आईन ११। दिरहम और दीनार।

राजकीय मुद्राओं की विलक्षणता लिखी जा चुकी, अब इन दो नगदों का कुछ वृत्तान्त वर्णन करना है, और प्राचीन मुद्राओं का पद प्रकाश-शिखर पर लाता है।

१—बाबा शब्द तुर्की भाषा का है, जो पिता, प्रपिता, नाना, सरदार, सफ़ेद दाढ़ी वाले व्यक्ति तथा स्वतन्त्र मुसलमान फकीर के लिए प्रयुक्त होता है। एंग्लो इण्डियन कुटुम्बों में बाबा शब्द बच्चे के लिए प्रयोग किया जाता है। ऐंग्ला इण्डियनों का बाबा शब्द अंग्रेजी के बेबी (Baby—बच्चा) शब्द का अपभ्रंश जान पड़ता है। गोरी में तात्पर्य गोर क रहने वाले से है।

बाबागोरी वह रत्नक फकीर या शहीद कहलाता था, जिसके संरक्षण में अपने का देकर कर्मचारी खान में प्रवेश करते थे। कापलैण्ड ने १८१८ ई० में ऐसे एक साधू की क्रम के होने का उल्लेख किया है। उसका कहना है कि यह क्रम इस देश में एक चोटी पर बनी हुई है, जिसकी पूजा फकीर के बजाय देवता के रूप में अधिक

होती है? (Copland in Transactions of the Literary Society of Bombay, 1 291)।

इसके अनिश्चित एक किंवदन्ती है कि बाबा गोरी नामक एक युवराज गोरवश का था। जा उस देश में युद्ध में मारा गया था। किन्तु इतिहास में इस युवराज का कहीं पता नहीं चलता? (Hobson Jobson, P 43)।

यहां पर इन बाबा गोरियों में से किसी का अभिप्राय नहीं है। वरन् यहां पर उस उत्तम श्वेत मणि में आशय है, जिसके गुरियों की मालाएँ गुजरात के लिमदुरा में सन् १५१६ में पहनी जाती थी, (Barbosa, 67)। ब्लाकमेन के मतानुसार अकबरी दरबार के जवाहरात तोलने के सभी वाट इन्ही बाबागोरी मणियों के बने हुये थे, (Blochmann's Text Edition of Ain-i-Akbari, II, 60)।



**दिरहम**<sup>१</sup>—लोग इसे दिरहाम भी कहते हैं। यह एक चांदी<sup>२</sup> का सिक्का था, जिसकी शकल खजूर की गुठली के समान थी, खलीफा उमर फारूक के शासन काल में यह गोल बनाया गया, और जन्वीर के राजत्व काल में उस पर “अल्लाह” और “बरकत” शब्द खोदे गये। हज्जाज ने उस पर इस्लाम<sup>३</sup> की सूरत खुदवाई। अनेक व्यक्ति कहते हैं कि उसने उस पर अपना नाम भी अङ्कित कराया था। बहुत लोग कहते हैं कि दिरहम पर, जिसने सब से पहले सिक्का लगाया, वह उमर फारूक था। कुछ लोगों का कथन है कि मरवान-सुत अब्दुल मलिक के समय में रूमी दीनार और हमीरी एवं किमरवी दिरहम प्रचलित थे। अब्दुल मलिक की आज्ञा में यूसुफ-सुत हज्जाज ने दिरहम पर छाप लगाई। कुछ लोग ऐसा आलापते हैं कि हज्जाज ने खाटे दिरहमों के माल को खरा किया और उन पर “अल्लाहु अहद<sup>४</sup>” तथा “अल्लाहुममद<sup>५</sup>” का ठापा लगाया। इन दिरहमों का नाम मकर्रहा (अपवित्र) पड़ा, क्योंकि इन में ईश्वर के पवित्र नाम की प्रतिष्ठा नहीं होती थी। अथवा परिवर्तन होने के कारण लोग उनको इस नाम में पुकारने लगे थे। हज्जाज के बाद, हुवैरा-पुत्र उमर ने, अब्दुल मलिक-सुत यजीद के शासन काल में, इराक राज्य के अन्तर्गत, दिरहमों को उसमें (हज्जाज में) बहुत बढ़िया बनाया। पश्चात् इराक के शासक, अब्दुल्ला कमरी के पुत्र खालिद ने उसको और भी साफ बनाया। उसके बाद यूसुफ-सुत उमर ने उसकी शुद्धता पराकाष्ठा को पहुँचा दी। यह भी कहते हैं कि दिरहम को जिसने पहले पहल मुद्रित किया वह जन्वीर-सुत ममअ्व था। उसकी तौल तरह तरह की बतलाते हैं, जैसे १० या ६ या ६ या ५ मिसकाल। पर अन्य व्यक्ति कहते हैं कि उनका वजन २० कीरात<sup>६</sup>

१—इसका नाम दिरम भी है। कोई कोषकार इसे अरबी भाषा का और कोई फारसी भाषा का बतलाता है। किसी किसी का मत है कि लोअर रोम साम्राज्य के सिक्के द्रैहम या ड्रैकमा (Drachma) का यह विकृत रूप है। कलाममजीद के सूरण यूसुफ में दिरहम का बहुवचन दिराहम शब्द आया है। साधारणतया दिरहम ३॥ माशे तौल को कहते हैं।

२—संसार में बहुत दिनों से कई धातुओं के सिक्के चल रहे हैं। ईसा से कई सो

वर्ष पूर्व लाइकर्स ने स्पार्टा में लोहे का सिक्का चलाया था। मलय उपद्वीप में टीन का सिक्का चलता रहा है। भारत में दक्षिण पथ के अन्ध राजा सीसे के सिक्के बनवाते थे। चीन का पीतल का सिक्का तो प्रसिद्ध ही है।

३—कुरान में एक सूरत है।

४—ईश्वर एक है।

५—ईश्वर नित्य है।

६—कैरट क्रीरात का ही रूपान्तर है।

इसका उल्लेख ३२ पृष्ठ के नोट में हो चुका

१२ क्रीरात और १० क्रीरात था। उमर फारुक ने हर प्रकार का एक एक दिरहम लिया, और इन सब के तौल का तिहाई, अर्थात् चौदह क्रीरात का एक दिरहम बनाया। अनेक व्यक्तियों का यह कहना है कि उमर के समय में कई प्रकार के दिरहम प्रचलित थे, उनमें से एक प्रकार का ८ दांग का था, जिसे बगली कहते थे, यह शब्द रासबगल के नाम से सम्पर्क रखता था, जोकि एक पारखी था, और जिसने उमर खत्ताब की आज्ञा से दिरहम पर सिक्का लगाया था। किसी किसी ने कहा है कि इसका सम्बन्ध शब्द बगल से है, जो कि एक गांव का नाम है। दूसरे प्रकार का चार दांग का था, जिसको तखरी कहते थे। तीसरे प्रकार का दिरहम तीन दांग का था, जो मगरखी कहलाता था। चौथे किम्म का एक दांग का था, वह यमनी नाम से प्रसिद्ध था। उमर खत्ताब ने चारों प्रकार के दिरहमों को लेकर, उनके आधे वजन का यकवजना दिरहम चलाया। फाजिल खुजन्दी का कहना है कि प्राचीन समय में दिरहम दो

हैं। कुछ लोगों का मत है कि अरबी क्रीरात शब्द ग्रीक भाषा के Κρηάτιον शब्द से, जो कि एक पेड़ की ( जिसको अंग्रेजी में Carob कहते हैं और भूमध्य सागर की तरफ होता है ) फली का दाना है, निकला है। यह दाना हिन्दुस्तानी रसी या घुघुची के समान तोलने के काम में लाया जाता था, (Hobson-Jobson P 160)। कैरट जवाहरात तोलने के भी काम में आता था, और अब भी वे उसी से तौले जाते हैं, ( आईने-अकबरी पृ० २७ नोट )। परन्तु यह आश्चर्य की बात है कि तेरहवीं शताब्दी में सुन्दरता की जांच के लिए भी कैरट प्रयोग किया जाता था, जैसा कि मार्को पोलो की यात्रा में उल्लिखित सन् १२६८ ई० की एक घटना से प्रकट होता है—“फ्रान आज़म ने अपने कमिशनरो को प्रान्त में भेजा और आज्ञा दी कि वे चार पांच सौ युवती तथा रूपवती स्त्रियों को, उनकी सुन्दरता की जांच करके ले आवें। कमिशनरों ने प्रान्त भर की

लड़कियों को परखियों के सामने इकट्ठा किया। फिर वे अपने रूप के अनुसार क्रमान्वित की गईं। उनमें से कोई १६ कैरट की और कोई कोई १७, १८ या २० कैरट की थी। कमिशनरो ने उनमें से आवश्यक संख्या में उन सुन्दरियों को छुट लिया, जो कि खान द्वारा निश्चित परिमाण—२० या २१ कैरट के अनुकूल थी, (Marco Polo, 2nd ed 1 350-351)। साधारणतः कैरट ४ ग्रेन का माना जाता है, किन्तु वास्तव में वह ३.१ ग्रेन के लगभग होता है, और १.० ग्रेन ट्राय की १ रत्ती होती है।

१—खुजन्द क्रसबा एशिया में सीर दरिया के किनारे पर है, यह यूनिनन आक्र सोशिय-लिस्ट सोवियट रिपब्लिक्स के अन्तर्गत उज़्बेक प्रजातन्त्र है। रेशम, रुई, सूत और अंगूर आदि यहा की उपज है। इसकी जन संख्या ३७००० है। (Nelson's World Gazetteer, 1932, P 260)।

प्रकार के थे। उनमें से पहले का नाम आठ दागी और छे दागी था, जिसका १ दाग=२ कीरात, १ कीरात=२ तस्सूज, १ तस्सूज=२ हब्बा; दूसरा नाकिम था, जो ४ दाग और कुछ भिन्न भर था। इस सम्बन्ध में लोगों के और भी अनेक मत हैं।

**दीनार**<sup>१</sup>—एक सोने का मुद्रा है, एक मिसकाल भर का, १<sup>२</sup> दिरहम के बराबर। कहते हैं १ मिसकाल=६ दाग, १ दाग=४ तस्सूज, १ तस्सूज=२ हब्बा, १ हब्बा=२ जौ, १ जौ=६ खरदिल; १ खरदिल=१२ फल्स, १ फल्स=६ फतील, १ फतील=६ नकीर, १ नकीर=६ कतमीर, १ कतमीर=१२ जर्ग। इस हिसाब से एक मिसकाल ६६ जौ का होता है। मिसकाल एक वाट है, जिसमें लोग सोना तौलते हैं, और एक सिक्का किया हुआ मुद्रा भी है। कुछ प्राचीन लेखों से ज्ञात होता है कि यूनानी मिसकाल का चलन बन्द हो गया है और वह इस मिसकाल से २ कीरात कम है। साथ ही यूनानी दिरहम भी दूसरे दिरहमों से भिन्न है, वह तौल में औरों से  $\frac{1}{6}$  या  $\frac{1}{8}$  मिसकाल कम होता है।

१—दीनार नामक सिक्के का प्रचार किमी समय एशिया और यूरोप के बहुत से भागों में था। यह कहीं सोने का और कहीं चांदी का होता था। देश भेद से इसके मूल्य में भी भेद था।

मुसलमानों के आने के बहुत पहले से भारतवर्ष में दीनार चलता था। हरिवंश और महावीर चरित में दीनार का स्पष्ट उल्लेख है। साची में बौद्ध स्तूप का जो बड़ा खंडहर है, उसके पूर्व द्वार पर सम्राट् चन्द्रगुप्त का एक लेख है। उस लेख में दीनार शब्द आया है। अमरकोष में भी दीनार शब्द मौजूद है, और निष्क के बराबर अर्थात् दो तोले का माना गया है। रघुनन्दन के मत से दीनार ३२ रत्नी सोने का होता था। अकबर के समय में, जो दीनार नाम का सोने का सिक्का जारी था उसका मान एक मिसकाल अर्थात् आधे तोले

के अन्दाज़ था।

हिन्दुस्तान की तरह अरब और फ़ारस में भी प्राचीन काल में दीनार नामक सिक्का प्रचलित था। अरबी और फ़ारसी कोष-कारों ने दीनार शब्द को अरबी लिखा है, पर फ़ारस में दीनार का प्रचार बहुत प्राचीन काल में था। इसके अतिरिक्त रोमन लोगों में भी यह सिक्का दीनारियस के नाम से प्रचलित था। धात्वर्थ पर ध्यान देने से भी दीनार शब्द आर्य भाषा ही का प्रतीत होता है (शब्दसागर)। बग़दाद के खलीफ़ा हारुन रशीद (७८६-८०६ ई०) के समय का एक दीनार ब्रिटिश म्यूज़ियम लन्दन में मौजूद है। इब्न बतूता (१३६३) के अनुसार भारतीय दीनार पश्चिमी दीनार से मूल्य में दार्ढ़ गुना अधिक था, (Ibn Batuta, iii 106)।

## आईन १२ सोने और चांदी में हथकसाधियों का लाभ ।

दस वान वाले एक तोन सोने का मूल्य ११ माशे वाली एक गोल माहर है । यदि सोना चौथाई वान कम हो अर्थात्  $\frac{3}{4}$  वान का हो, तो १ मोहर में एक तोला २ रत्ती ( सोना ) लेंगे है, यदि आधा वान कम हो, तो १ तोला ४ रत्ती, यदि पौन वान कम हो, तो १ तोला ६ रत्ती, यदि सोना नौ वान का हो तो १ मोहर में १ तोला और १ माशा लेंगे है । इसी प्रकार हर वान की कमी के बदले में १ माशा सोना अधिक लेंगे है ।

१—कौटिल्य के अर्थ शास्त्र में मालूम होता है कि उस समय जनता के नाना प्रकार के आभूषण सरकारी प्रधान कर्मचारियों की देव रख में तथा टकमाल घर में बनाये जाते थे जैसा कि “मुवर्णाध्यक्ष का कार्य” के आरम्भ में लिखा है —“मुवर्णाध्यक्ष सोने चांदी के गहने बनवाने के लिये अक्षशाला (टकमाल) बनवाये, जिसमें प्रथक् प्रथक् चार कमरे हों और एक दरवाजा हो । विशिखा नामक सडक के बीच में कुलीन, विश्वसनीय और चतुर सुनार को रक्वा जाय । सोवर्णिक ( राजकीय सुनारों का अध्यक्ष ) ग्रामीणों तथा नागरिकों का सोना चांदी लेकर कारीगरों से उनकी चीजें बनवाये । कारीगर नियत समय तथा कार्य के अनुसार काम करें । जो काम का बहाना करके नियत समय पर काम पूरा न करें अथवा काम बिगाड़ दें उनका वेतन काट लिया जाय और वेतन का दुगुना जुर्माना किया जाय । देर करने पर चौथाई वेतन काटा जाय तथा उसका दुगुना दंड दिया जाय । जितना तथा जैसा माल लिया जाय वैसा ही लोटाया जाय । ( कौटिल्य-अर्थशास्त्र, अधिकरण २ ) ।

सुनारों की तरह तरह की चोरी को रोकने के लिये कौटिल्य ने उनका इस प्रकार वर्णन किया है —“सुनार लोग चालाकी से सोने को इस प्रकार गलाने हैं कि उसका कुछ अंश पहले से ही आग में गिर जाय । बहुधा परीक्षा के समय उसे दूसरी धातु से बदल लेते हैं । इन युक्तियों से सोना निकाल लेते हैं । इसको विस्त्रावण कहते हैं ।” इसी प्रकार उसने तुलाविषम, अपसारण, पेटक, पिक, परिकुटन, अवच्छेदन, उल्लेखन और परिमर्दन नामक रीतियों में तरह तरह के उपायों से चोरी का सविस्तर वर्णन किया है । जैसे, “हडताल, मैनमिल, सिगरफ आदि में से किसी एक को कुरुविन्द (रत्न या धातु विशेष) के चूर्ण के साथ मिलाकर और उसको कपड़े में रखकर रगड़ने का नाम परिमर्दन है । परिमर्दन से सोने तथा चांदी के वर्तन घिस तो जाते हैं किन्तु देखने में ज्यों के स्थो बने रहते हैं । टूटे हुये टुकड़ों एवं घिसे हुये गहनों में उन्हीं के समान गहनों के द्वारा, पत्र वाले गहनों में टूटे हुये पत्र के द्वारा, और बिगड़े हुये गहनों में तपाने तथा पानी में रगड़ने के द्वारा सोने की चोरी का पता लगाना चाहिये ।”

सौदागर १०० लाल जलाली मोहरों में, १३० तोले २ माशे  $\frac{1}{2}$  रत्ती हुन का सोना, जो  $\frac{1}{2}$  बान का होता है, खरीदना है। इसमें से २२ तोले १० माशे  $\frac{1}{2}$  रत्ती आग में जल जाता और खाके-खलास में मिल जाता है। १०० तोले ४ माशे  $\frac{1}{2}$  रत्ती खालिस सोना शेष रह जाता है। जब वह सोना, राजकीय छाप द्वारा मुकीर्ति प्राप्त करता है, अर्थात् सिका किया जाता है, तो उसकी १०५ मोहरे बनती है, और लगभग  $\frac{1}{2}$  तोला सोना जिसका मूल्य ४ रु० होता है, शेष रह जाता है। खाके-खलास में २ तोले ११ माशे ४ रत्ती सोना, और ११ तोले ११  $\frac{1}{2}$  माशे  $\frac{1}{2}$  रत्ती चांदी हाथ लगती है। दोनों का मूल्य ३५ रुपए १२  $\frac{1}{2}$  तंगे होता है। इस प्रकार उपर्युक्त सोन की पूर्ण उपलब्धि १०५ मोहरे, ३६ रुपए, २५ दाम होते हैं।

“सुवर्णाध्यक्ष को चाहिये कि “वह अवजेष ( इधर उधर सोने को छिपाना ) प्रतिमान ( बट्टे की घटी बढ़ी ), अग्नि, गंडिका ( निहाई ), भडिका ( घरिया ), अधिकरणी ( बिछोना ), पिच्छ ( कटिया ), सूत्र ( सूत ), चेल बोलन ( वस्त्र ), पगड़ी, उन्मंग ( जंघा ), मल्लिका, शरीर निरीक्षण ( शरीर को इधर उधर देखना ), सोना बुझाने का पानी का बर्तन और अग्निष्ठ ( अंगीठी ) इत्यादि को देखकर चोरी का पता लगावे” ( कोटि०—अर्थ०, अधिकरण २ )।

१—प्लाकमैन के अनुवाद में गलती में  $\frac{1}{2}$  रत्ती छप गया है।

२—संस्कृत में जो टक (देखिये पृ० २६ का नोट २) शब्द है, महाराष्ट्र भाषा का टाक उम्मी का रूपान्तर है। मालूम होता है कि उम्मी में टका और तंगा शब्द बने हैं। कई कोषकारों के अनुसार तंगा तुर्की भाषा का शब्द है। गयामुल्लुगात में तंगा का अर्थ सोने, चांदी अथवा तांबे का प्रचलित सिक्का लिखा हुआ है। यह ठीक भी है क्योंकि फ़ीरोजशाह ने सोने और चांदी के तरह तंग के

तंगे बनवाये थे (Tarikh-i-Firoze Shahi, in Elliot, in 351)। आज कल तंगा विशेषतः तुर्किस्तान में चलता है और वह चांदी का होता है। डब्लु इस्कन का कहना है कि तंगा चगताई तुर्की के तंग शब्द से निकला है, जिसका अर्थ सफ़ेद होता है। “गयामुल्लुगात” के अनुसार तुर्किस्तान और बदायुन में तंग नाम के प्रदेश हैं। संभव है, इन्हीं के नाम से सिक्के का नाम तंगा पड़ गया हो। तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी में टंका या तंगा दिल्ली के बादशाहों का एक लोकप्रिय सिक्का रहा है, पीछे से यही रूप के रूप में परिवर्तित हो गया (Hobson-Jobson)। टंका—चांदी का एक पुराना सिक्का, रुपया (शब्द सागर)। बंगाल में टंका—टाका के नाम से आज तक प्रचलित है और बंगभाषा भाषी उसे रूप के लिए प्रयोग करते हैं। इबन बतूता ने भी उस समय के सिक्कों का नाम, जिसको कि उसने देखा था, तंगा या सोने का दीनार लिखा है। और उसका तुलनात्मक मूल्य चांदी के दस दीनार बत-मसालिकुलअवयगर’ ( १३४०

इसका हिसाब इस प्रकार से होता है। पहले, २ रु० १८ $\frac{१}{२}$  दाम कारीगर अपनी मजदूरी में उस हिसाब से लेते हैं, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है। दूसरे, ५ रु० ८ दाम ८ जीतल का मसाला खर्च होता है, यथा—धातु के साफ करने में १ रु० ४ दाम १ $\frac{१}{२}$  जीतल व्यय होता है (२६ दाम १६ $\frac{१}{२}$  जीतल के कंडे + ४ दाम २० जीतल की सलोनी + १ दाम १० जीतल का पानी + ११ दाम ५ जीतल का पारा), खाके खलास की कार्रवाई के लिए ४ रु० ४ दाम ६ $\frac{१}{४}$  जीतल (२१ दाम ७ $\frac{१}{४}$  जीतल का कोयला, ३ रुपए २२ दाम २४ जीतल का सीसा)। तीसरे, ६ रुपए ३७ $\frac{१}{२}$  दाम माल वाला व्यापारी से इस कारण से लेता है, कि उसने सोने को उक्त लाभ प्राप्ति के लिए लगाया था। यदि यह पूंजी खालसा की हांती है तो उपर्युक्त रकम (६ रुपए ३७ $\frac{१}{२}$  दाम) दीवान के पास जाती है। चौथे, व्यापारी सोना लाने के बदले में १०० लाल जलालो मोहरे लेता है। पाचवें, १२ रुपए ३७ दाम ३ $\frac{१}{२}$  जीतल, व्यापारी लाभ स्वरूप लेता है। छठे, ५ मोहर १२ रुपए ३ $\frac{१}{२}$  दाम खालसा में जमा होते हैं। व्यापारी इस हिसाब से लाभ उठाते हैं।

यद्यपि भारतवर्ष में सोना (बाहर से) आता है, परन्तु इस देश के उत्तरीय पर्वतों में वह बहुत होता है और तिब्बत में भी पैदा होता है। गंगा और सिंध नदी की घाटों से भी, सलोनी क्रिया द्वारा सोना निकाला जाता है। इस देश के बहुत से दरियाओं की घाटों में सोना मिला हुआ है, परन्तु परिश्रम की विशपना और व्यय की अधिकता के कारण, प्रत्येक नदी के किनारे उक्त क्रिया नहीं की जा सकती।<sup>३</sup>

खालिस चांदी एक रुपए की १ तोला २ रत्ती बिकती है, अतः व्यवसायी ६४० रुपए में ६६६ तोले ६ मासे ४ रत्ती खरीदता है। इसमें से ५ तोले

६०) के लेखक ने इन्ही चांदी के दीनारों की 'भारतवर्ष का चांदी का दीनार' लिखा है। फ़ीरोज़शाह तुग़लक (१३२८-१३२९) के शासनकाल में तंगो पूर्ववत् बनते रहे किन्तु बहलोल लोदी (१४८८-१४९७) के समय में वे तांबे के बनने लगे। उस समय चांदी का एक तंगा तांबे के २० तंगों में चलता था। गोआ में अब भी इस नाम से एक सिक्का ६० रेई या २ पैसे में चलता है। ब्लाकमैन के अनुसार १ तंगा=२ दाम,

आज कल १ तंगा=२ पैसा (Ain-i Akbari translated into English by H. Blochmann 1873, Vol. I, P. 37, note)।

३—मोरलैण्ड ने लिखा है कि अबुल-फ़ज़ल के समय में भारतवर्ष में 'मूल्यवान् धातुओं में सोना उल्लेख करने के योग्य नहीं उत्पन्न होता था। दक्षिण प्रदेश में आये हुये पर्यटकों के साक्ष्य से सिद्ध होता है कि उन दिनों मैसूर की खानों में कार्य होना आरम्भ नहीं हुआ था। अबुलफ़ज़ल ने

४<sup>३</sup>/<sub>४</sub> रत्ती चांदी, सलाख बनाने में जल जाती है। शेष चांदी में १००६ रुपए तैयार होते हैं, और २७<sup>१</sup>/<sub>२</sub> दाम की चांदी बच रहती है। इसमें हानि लाभ का विवरण इस प्रकार है—पहले, २ रुपए २२ दाम १२ जीतल कारीगरो की मजदूरी होती है (अर्थात् तराजूकर ५ दाम ७<sup>३</sup>/<sub>४</sub> जीतल; चाशनीगीर ३ दाम ४<sup>१</sup>/<sub>४</sub> जीतल,

उत्तर भारत में नदियों की रेतों से सोना निकालने का उल्लेख किया है, वह प्रथा अब भी जारी है। चांदी भी केवल परिमित परिमाण में प्राप्त होती थी। अबुल-फज़ल ने आगरा की एक खान का उल्लेख किया है किन्तु उसमें खर्च तक नहीं निकलता था। नदियों तथा कुमायूँ के पर्वतों से चांदी निकालने की बात भ्रमात्मक है, कुमायूँ एक ऐसा राज्य था, जिसका मुगल शासकों को बहुत कम निश्चित ज्ञान था।

भारतवर्ष की दुमरी मुख्य धातुओं में पारा, रागा, सीसा, जस्ता, तांबा और लोहा हैं। इनमें से पहली चार धातुएँ विशेषतर बाहर से आती थी, यद्यपि अल्प परिमाण में सीसा और जस्ता राजपूताने में भी पैदा होते थे। दक्षिण भारत में तांबा बाहर से आता था, किन्तु उत्तर भारत स्थानीय खानों पर आश्रित था। पर, लोहे के सम्बन्ध में सारा देश अपने साधनों पर अवलम्बित था।” (India at the Death of Akbar, by W H Moreland, 1920 P 146 147)।

मोरलैण्ड का यह मत कहां तक सत्य है और अबुलफज़ल की खोज कहा तक असत्य है, उपस्थित सामग्री के आधार पर इसका ठीक ठीक निर्णय होना कठिन है। पर यह तो निश्चय ही है कि आज से पांच हजार वर्ष पहले अर्थात् महाभारत काल में, चिन्तामणि विनायक वैद्य के शब्दों में “यहां सुवर्ण की उत्पत्ति बहुत होती थी। हिन्दुस्तान के प्रायः सब भागों में सोने की उत्पत्ति होती थी। हिमालय के उत्तर में

बहुत सोना मिलता था। उत्तर हिन्दुस्तान की नदियों में सुवर्ण के कण बहकर आते थे। दक्षिण के पहाड़ी प्रदेशों में सोने की बहुत सी खानें थीं, और अब भी हैं।” बोल, पाण्डू और दक्षिण के अन्य राजाओं तथा हिमालय की ओर से आने वाले लोगों ने युधिष्ठिर को नज़राने में सोना दिया था इसका सविस्तर उल्लेख महाभारत सभापर्व में है। उसी में एक स्थल पर लिखा है—

खसा. एका सना. ह्यर्हां. प्रदरादीर्घ वेणवः,  
पारदाश्च कुलिदाश्च तंगणा परतंगणा।  
तद्वैपिपीलिक नाम उद्धृतं यत्पिपीलिकैः,  
जातरूपं द्रोणमेय महापुं. पुञ्जशो नृपा.।  
(महाभारत सभापर्व १२)

हिमालय के उस पार रहने वाले खस आदि तङ्गण और परतङ्गण लोगों ने युधिष्ठिर को ‘जातरूप’ नामक सोना भेंट में दिया था। इस सोने को चिट्ठियाँ अपने बिलों से निकालती थीं और लोग एकत्र कर लेते थे। इसी से हमें ‘पिपीलिक स्वर्ण’ कहते थे। इसका उल्लेख मैगस्थनीज़ और सिकन्दर के साथ आये हुये इतिहासकारों ने भी कुछ अतिशयोक्ति के साथ किया है। तिब्बत में कहीं कहीं यह बात आज भी दिखलाई पड़ती है। तिब्बत वाले इस सोने को छोटी छोटी थैलियों में भर कर भारतवर्ष में लाते थे। हिन्दुस्तान का एक भाग इसी सोने की भरी हुई थैलियों में फ़ारस को कर चुकाता था।

यह सच है कि हिमालय के आगे और नदी के रेत में सुवर्ण रज मिलते थे

गुदाजगर ६ $\frac{1}{2}$  दाम; जरीब २ ६० १ दाम; सिक्की ६ $\frac{1}{2}$  दाम) । दूसरे, १० दाम १५ जीतल का मसाला लगता है ( १० दाम का कोयला, १५ जीतल का पानी ) । तीसरे, ५० रुपए १३ दाम शाही दीवान को दिये जाते हैं । चौथे, ६५० ६० सौदागर चांदी के बदले में लेता है, और ३ ६० २१ दाम १० $\frac{1}{2}$  जीतल

और इस प्रकार निर्मल सोना अनायास मिल जाता था । तथापि यह बात भी नीचे के श्लोक से स्पष्ट मालूम होती है कि महाभारत काल में पत्थर की खानों से सुवर्ण मिश्रित पत्थरों से सोना निकालने की कला विदित थी ।

अप्सुन्मत्ताप्रलपतो बालाञ्च परिजल्पत,  
सर्वतः सार मा दद्यादरमभ्य इव काञ्चनम् ।

( उद्योग पर्व ३४ )

प्राचीन काल में पत्थर तोड़कर और उसकी बुकनी बनाकर भट्टी में गलाकर सोना निकालने की कला प्रसिद्ध रही होगी, ” ( महाभारतमीमांसा, सवत् १६७७, पृ० ३७३-७४ ) ।

कोटिल्य अर्थशास्त्र में भी खनिज पदार्थों के सम्बन्ध में एक पूरा प्रकरण है, जिसमें खानों के अध्येक्ष के कर्तव्यों में बतलाया गया है कि वह “तांबा आदि धातुशास्त्र, पारा निकलने और माणिक परखने आदि की विद्याओं को जान कर या जानकार लोगो तथा मेहनती मजदूरों को साथ लेकर कच्ची धातु, कोयला, राख, खुदाई आदि चिन्हों को भूमि या पहाड़ों पर पाकर भार, रंग, गंध और स्वाद के अनुसार खान की परीक्षा करे । परिचित स्थानों, पहाड़ों, गड्ढों, गुफाओं, तराइयों और गुप्त छेदों से बहने वाले या ( जामुन, आम, ताड़, हाथी, हर-ताड़, शहद, सिगरफ़, कमल, तोता, मोर आदि के रंग वाले ) काई की तरह चिक्के चमकीले और बोझ वाले जलों को सोने से मिश्रित जाने ( अर्थात् वहां पर सोने की खान समझे ) । परन्तु यदि वह तरल

पदार्थ पानी पर डालते ही नीचे बैठ जाय, तेज की तरह सब तरफ़ फैल जाय और मटियाले रंग का हो जाय तो उसको चांदी तथा तांबे से मिश्रित समझना चाहिये । ” जहां जहां सोना चांदी पैदा होती थी उसी के अनुसार उनके नाम होते थे, जैसे जम्बू नदी में निकला हुआ सोना जाम्बू-नद कहलाता था और हाटक की खानों से निकला हुआ हाटक स्वर्ण और वेणु पर्वत से प्राप्त हुआ वैष्णव नाम से पुकारा जाता था । जिस ‘जातरूप’ सोने का उल्लेख महाभारत काल के प्रसंग में ऊपर हो चुका है, कोटिल्य ने भी उसका उल्लेख किया है ( आईने-अकबरी पृ० ३३ ) । इसी प्रकार अर्थशास्त्र में कई प्रकार की चांदी का वर्णन है, जैसे तुथो-द्रागत—जो तुथ पर्वत से प्राप्त होती थी, गोडिक—जो गौड देश की उपज थी इत्यादि । इतनाही नहीं कोटिल्य ने खान के नियम उल्लंघन करने पर खान के कर्मचारियों के लिए तरह तरह के दंड भी नियत किये हैं, ( कोटिल्य-अर्थशास्त्र अधिकरण २ ) ।

उपयुक्त विवरण को ध्यान पूर्वक पढ़ने से मालूम होता है कि अशुलक्रांत की खोज का बहुतांश महाभारत और कोटिल्य से मिलता हुआ है, इसलिए उसे भ्रमात्मक नहीं माना जा सकता । समुद्रगुप्त और अलाउद्दीन के राजत्वकाल के ऐतिहासिक साहित्य से पता चलता है कि दक्षिण प्रदेश सचमुच उन दिनों सोने की चिड़िया था । मलिक काफ़ूर ने १६००० मन सोना अलाउद्दीन को दिया था । विजय नगर के



लाभ प्राप्त करता है। यदि व्यवसायी खोटी चांदी लेकर उसे अपने घर पर साफ करता है, तो बहुत फायदा उठाता है। परन्तु जब वह उसे सिका<sup>१</sup> लगवाने के लिए लाता है, तो उसको उतना नफा नहीं मिलता।

कृष्ण राजा के महल से भी सोने की अधि-कता का पता चलता है, (A forgotten Empire, by Sewell, 1924)। मैसूर की सोने की खान का उल्लेख भले ही विदेशी पर्यटक न करें, परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि वह खान चालू नहीं हुई थी। कोलर की प्रसिद्ध खान तो आज से पांच हजार वर्ष पूर्व अर्थात् मोहेनजोदड़ो और हरप्पा की सभ्यता के समय भी चालू थी, जैसा कि डाक्टर राधा कुमुद मुकर्जी ने लखनऊ यूनीवर्सिटी में भाषण करते हुये कहा है कि “उनका (हरप्पा और मोहनजोदड़ो निवासियों का) सोना कोलर (मैसूर का एक ज़िला) और अनन्तापुर से आता था” (Dr Radhakumud mookerjee's Lecture delivered at Lucknow University on January 29, 1935)। इस से सिद्ध है कि खान चालू पहले से ही थी किन्तु या तो उस समय किसी कारण से उसकी खुदाई स्थगित कर दी गई होगी अथवा पर्यटकों के उल्लेख करने से रह गई होगी। मोरलैण्ड की यह बात भी ध्यान में नहीं जमती कि मुगल शासकों को कुमायूँ का हाल नहीं मालूम था। अबुलफ़ज़ल सुदूरवर्ती स्थानों का हाल सही लिख सकता था किन्तु कुमायूँ, जैसे निकटवर्ती स्थानों का मूल्यवान् धातुओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी पता नहीं लगा सकता था, यह बात समझ में नहीं आती। मोरलैण्ड ने कल्पना से बहुत काम लिया है, इसी लिए सर यदुनाथ सरकार और डाक्टर बेनीप्रसाद ने मोरलैण्ड के उक्त ग्रंथ में प्रदर्शित बिचारों से अनेक स्थलों

पर मतभेद प्रकट किया है (Modern Review January 1921, P 15, and August 1921, P 214)।

आजकल “हिन्दुस्तान में प्रायः सभी प्रान्तों में सोना पाया जाता है। पर मैसूर (कोलर) और हैदराबाद की खानों में अधिक मिलता है। पिछली शताब्दी में कैली फ़ोर्निया और आस्ट्रेलिया में भी इसकी बहुत बड़ी खानें मिली हैं” (शब्द सागर)।

१—“दिसम्बर १५७७ ई० में जब अकबर ने नारनोल के समीप (जो कि पटियाला राज्य में है, और जहां शेरशाह पैदा हुआ था) पड़ाव डाला और एक विशेष सभा की आयोजना की तथा राजा टोडरमल और ख्वाजा शाहमंसूर से परामर्श करके अनेक बातें तय कीं, उनमें एक महत्वपूर्ण विषय टकसाल का था। उस समय तक विभिन्न टकसालें छोटे कर्मचारियों अर्थात् चौधरियों के हाथ में थी, उन अधिकारियों में सन्तोषजनक शासन संचालन योग्य न वैयक्तिक गुरुत्व था और न उनके पास उपयुक्त पद ही था। अब उक्त विभाग की अधिकार में रखने के लिए राजधानी में एक उत्तरदायी टंकशालाध्यक्ष नियत किया गया, और इस पद पर ख्वाजा अब्दुस्समद शीराजी ‘शीरी क़लम’ नियुक्त किया गया। यह हुमायूँ का अभिन्न हृदय मित्र था। अकबर ने लङ्कन में उस से प्रारम्भिक डाइरैक्ट की शिक्षा पाई थी। १५७७—७८ में यह कलाकार अधिक आयु वाला हो गया होगा। सूयों की पांच प्रधान टकसालों में से हर एक एक उत्कृष्ट

लागी? और शाही चांदी तथा दूसरे प्रकार की खोटी चांदी एक रुपया की एक तोला ४ रत्ती मिलती है। इस हिसाब से, सौदागर ६५० रुपए से ६८६ तोले ७ माशे चांदी खरीदता है, जिसमें से १४ तोले १० माशे १ रत्ती सच्चाई कीया में जल जाती है। अर्थात् १½ तोला प्रति सैकड़ा के हिसाब से वह घट

राजपदाधिकारी को सौंपी गई। राजा टोडरमल बंगाल का उत्तरदाता बनाया गया, मुजफ्फर खॉं, इबाजाशाह मंसूर, इबाजा इमामुद्दीन हुसेन और आसफ खां द्वितीय को क्रमशः लाहौर, जौनपुर, गुजरात या अहमदाबाद, और पटना की टकसालें सौंपी गईं। उसी दिन चौकोर जलाली रुपयो के बनाने की आज्ञा दी गई।

चांदी और तांबे के सिक्के बहुत से क्रस्बो में तैयार होते थे, जिनकी कि एक सूची अबुलफ़ज़ल ने भी दी है किन्तु वह अपूर्ण है। पिछले वर्षों में टकसाल के कानूनों में फिर सुधार हुआ। धातु की शुद्धता, तौल की पूर्णता और कलाकारिता की दृष्टि से नाना प्रकार के अपने सिक्कों की श्रेष्ठता के लिए अकबर बधाई का पात्र है। मुगल मुद्रानिर्माण कार्य की, जब किन-इलीज़बेथ तथा अन्य तत्कालीन यूरोपीय राजाओं के मुद्रण कार्य से तुलना की जाय, तो वह उनसे हर पहलू से अत्युत्कृष्ट घोषित किया जायगा। मालूम होता है कि अकबर और उसके उत्तराधिकारी सिक्कों की खराई और तौल को मिलोनी के द्वारा कम करने के लालच में कभी नहीं पड़े। अकबर के अधिकतर सिक्कों का सोना वस्तुतः शुद्ध था” (Akbar the great Mogul, 11Ed 1919, P 156-157)। अबुल-फ़ज़ल ने सोने के सिक्कों की केवल चार टकसालें बतलाई हैं (आई ने अकबरी पृष्ठ २८); किन्तु संभवतः १५७८ ई० में उपयुक्त छे स्थानों में केवल सोने के सिक्के

बनते थे।

१—“लारी फ़ारस का सिक्का था, और व्यापार द्वारा भारतवर्ष में बहुत बड़ी तादाद में आता था। यह नाम से सिक्का नहीं समझा जा सकता था, क्योंकि यह चांदी की खमदार सलाख या छड़ की शक्ल का था, जिसके सिरे पर छाप लगी हुई थी और अकबर के आधे रुपए से भी कम मूल्य का था, (India at the death of Akbar, by W H Moreland, P 57, 1920)। इसके अतिरिक्त दक्षिण में ‘बराहु’ या इन नाम का एक और सिक्का था, जिसको विदेशियों ने पगोडा लिखा है। यह साधारण-तया अकबर के रुपए के साढ़े तीन गुने मूल्य का था। यह सोने का सिक्का था। फ़नाम नामक सोने का एक और छोटा सिक्का था। इनके अतिरिक्त चांदी और तांबे के भी सिक्के चलते थे। सीकीन या चिकीन नामक एक सोने का विनीशिया का सिक्का था, जो मूल्य में अकबर के चार रुपए के बराबर था और लाल सागर या फ़ारस की खाड़ी से व्यापार द्वारा यहां आता था। इटली का दुक़ात भी उपर्युक्त मार्ग से ही आता था। सोने का दुक़ात अकबर के चार रुपए और चांदी का दुक़ात दो रुपए के बराबर था। रियल्स आक्र-एट (Reals of eight) नामक एक स्पेन का सिक्का था उसका मूल्य २ अकबरी रुपए था। पोर्चुगीज़ों की टकसाल गोआ में थी वहां का सोने का परडाओ नामक सिक्का पहले मूल्य में पगोडा के बराबर था फिर रद्दोबदल होने

जाती है। ४ तोले ११ माशे ३ रत्ती सलाख बनाते समय गुदाजगर की क्रिया द्वारा आग में जल जाती है। बाकी चांदी में १०१२ रुपए तैयार होते हैं, और खाके कहरल से  $३\frac{१}{२}$  रुपए की चांदी निकल आती है। हानि लाभ का व्योरा इस प्रकार है—पहले, ४ रुपए २७ दाम  $२४\frac{३}{४}$  जीतल मजदूरी होती है ( तराजूकश—५ दाम  $७\frac{३}{४}$  जीतल; सव्वाक—२ रुपए १६ जीतल, कर्सकूब—४ दाम १६ जीतल, चाशानीगीर—३ दाम ४ जीतल, गुदाजगर— $६\frac{१}{२}$  दाम, जर्गीब—२ रु० १ दाम, सिक्की—६ दाम  $१२\frac{१}{२}$  जीतल )। दूसरे, ५ रुपए २४ दाम १५ जीतल अन्य आवश्यक कार्यों में व्यय होते हैं ( अर्थात् ५ रु० १४ दाम का सीसा, १० दाम का कोयला, १५ जीतल का पानी )। तीसरे, ५० रुपए २४ दाम राजदरबार को दिये जाते हैं। चौथे, ६५० रु०, व्यापारी अपनी चांदी के बदले में पाता है, और ४ रुपए २६ दाम लाभ उठाता है। बहुधा वह सस्ती चांदी खरीदता है और बहुत लाभ प्राप्त करता है।

एक मन ताबा १०४४ दाम में मिलता है, और १ सेर ( तांबा ) २६ दाम  $२\frac{१}{२}$  जीतल में। एक मन में १ सेर ताबा आग में जल जाता है। एक सेर में ३० दाम बनते हैं। इस हिसाब से सब मिला कर ११७० दाम मुद्रित होते हैं। जिनमें व्यापारी अपना मूलधन लेता है और १८ दाम  $१६\frac{१}{२}$  जीतल का फायदा उठाता है। ३३ दाम १० जीतल मजदूरी निकल जाती है। १५ दाम ८ जीतल आवश्यक सामग्री में व्यय होते हैं ( अर्थात् १३ दाम ८ जीतल का कोयला, १ दाम का पानी, १ दाम की मिट्टी )।  $५८\frac{१}{२}$  दाम सरकार को दिये जाते हैं।

## आईन १३।

### धातुओं की उत्पत्ति ।

सृष्टिकर्ता ईश्वर ने चार तत्व प्रकट किये, और अद्भुत आकृतियों निर्माण की। अग्नि—उष्ण, शुष्क और नितात हल्की, वायु—तप्त, आर्द्र और अपेक्षतया लघु; जल—शीतल, गीला और अपेक्षतया गुरु, पृथ्वी—ठंडी, शुष्क और सर्वथा भारी।

पर अकबर के  $२\frac{१}{४}$  रु० के बराबर रह गया  
(India at the death of Akbar, by  
Moreland P 57 & 56) ।

१—इन मर्हों का जोड़ १०१५ रु० २५ दाम  $१४\frac{३}{४}$  जीतल है, जो कि अबुलफज्जल के दिये हुये जोड़ १०१५ रु० २० दाम से कुछ ही अधिक है।

उष्णता पदार्थ में हल्कापन लाती है, और शीतलता भारीपन । आर्द्रता परमाणुओं को सरलता से प्रथक् कर देती है, और शुष्कता उनको अलग अलग होने से रोकती है । इस विचित्र व्यवस्था से चार प्रकार के मिश्रित पदार्थ आविर्भूत हुये, अर्थात् 'आकाशीय', खनिज, बनस्पति, जीवधारी । सूर्य आदि की गरमी से जल कण हलके होकर वायु में मिल जाते और ऊपर चढ़ जाते हैं, उस मिश्रित को बुखार<sup>१</sup> कहते हैं । उसी कारण से पार्थिव-परमाणु वायु से मिलकर ऊपर चले जाते हैं, वे दुखां<sup>२</sup> कहलाते हैं । कभी वायु-कण भी उस (पृथ्वी) में मिल जाते हैं । कुछ तत्ववेत्ता उपर्युक्त दोनों मिश्रितों को बुखार कहते हैं, परन्तु जो मिश्रण जल कणों से उत्पन्न होता है, उसको बुखारे-तर तथा बुखारे-आबी (आर्द्र वाष्प) कहते हैं, और जो पदार्थ पार्थिव-अणुओं के संयोग से प्रकट होता है उसको बुखारे-खुश्क तथा बुखारे-दुखानी (शुष्क वाष्प) कहते हैं । इन दोनों से भूमि के ऊपर मेघ, वायु, वृष्टि और हिम इत्यादि बनते हैं, और उसके (पृथ्वी के) अन्दर भूकम्प, सोते और खाने । बुखार शरीर के स्थान पर समझा जाता है और दुखां आत्मा की जगह पर । उनके गुण और परिमाणों की विभिन्नता के कारण नाना प्रकार के पदार्थ अस्तित्व-जगत में आते हैं, जैसा कि वैज्ञानिक ग्रन्थों में उल्लेख है ।

खनिज<sup>४</sup> (पदार्थ) पांच प्रकार से अधिक नहीं होते —पहले, वे जो अपनी शुष्कता के कारण नहीं पिघलते हैं, जैसे, पारा, तीसरे वे, जो गलने तो हैं पर न घनाघात से बढ़ते हैं और न आग से जलते हैं, जैसे फिटकरी, चौथे, वे, जो आघात वर्द्धनीय तो हैं, किन्तु आग से भस्मीभूत हो जाते हैं, जैसे गंधक, पांचवे, वे, जो आघात से बढ़ने वाले हैं, परन्तु आग से नहीं जलते, जैसे सोना । पिण्ड के पिघलने का तात्पर्य यह है कि अवयवी के अवयव उसके शुष्क और आर्द्र मूलतत्वों के संयोग से बह चले । आघातवर्द्धनीयता का आशय है पिण्ड का इस प्रकार दबना कि उसका विस्तार, लम्बाई और चौड़ाई के रूप में परिणित होकर फैल जाय, बगैर इसके कि उसमें से कोई चीज अलग की जाय या जोड़ी जाय ।

१—बादल, ओले, बरफ आदि ।

२—गैस (Gas) वाष्प ।

३—धूम (Vapour) ।

४—"कौटिल्य-अर्थशास्त्र" के अधिकरण दो में "खनिज पदार्थों के व्यवसाय-संचालन" में खनिज पदार्थों के उपयोग का विशेष रूप से उल्लेख है ।

जब बुखार दुखां के साथ इस प्रकार मिले, कि पहला ( बुखार ) परिमाण में अधिक हो और मिलने तथा पकने के पश्चात् सूर्यकी गरमी उसको जमादे, पारा<sup>१</sup> बन जायगा। यतः उसका कोई अंश दुखां से रहित नहीं होता, इसलिए उसमें शुष्कता अनुभव होती है, और छूने पर हाथ में नहीं चिपकता, वरन् भागता है। इसका सटान ( मिलान ) ताप से होता है, इस लिए गरमी इसे नहीं पिघलाती। यदि बुखार और दुखां का मिश्रण लगभग तुल्य परिणाम में हो, तो चिकनी चिपचिपी आर्द्रता उत्पन्न होती है। खमीर होने के समय, वायुकरण उसमें प्रविष्ट हो जाते हैं, और सर्दी उसको जमा देती है। यह पिण्ड दहनशील होगा। यदि दुखां और चिकनाई कुछ विशेष हो, तो गंधक पैदा होगी, वह लाल, पीले, नीले और सफेद रंग की होती है। अगर दुखां अधिक हो और चिकनाई कम हो, तो हरताल बनेगी, जो लाल और पीली होती है। यदि बुखार ज्यादा हो, तो पिण्ड बंधने पर नफ्त<sup>२</sup> हो जायगा, वह काला और सफेद होता है। यत इसके पिण्ड बंधने का कारण शीतलता है, इसलिए यह तापसे द्रवित होने लगता है। स्निग्धता की अधिकता और गीलाई की विशेषता के कारण यह दहनशील है और आर्द्रता की अधिकता से यह आघातवर्द्धनीय नहीं होता। ३

१—पारा एक अद्भुत खनिज पदार्थ है। अधिक सरदी पाकर वह जम जाता है। गंधक और पारा मिला हुआ द्रव्य ईगुर कहलाता है। विशेष क्रिया द्वारा दोनों अलग अलग कर लिये जाते हैं। भारतवर्ष में पारे की खान केवल नेपाल में है। इस देश में आजकल चीन जापान और स्पेन से भी पारा आता है। पारे पर गरमी का प्रभाव सब से ज्यादा पड़ता है, इसी से गरमी तापने के यंत्रों में उसका उपयोग होता है। पुराणों और वैद्यक ग्रंथों में पारे का अनेक स्थलों पर उल्लेख है, और उसके माहात्म्य में उसको ब्रह्म या शिव स्वरूप तक बतलाया गया है। पारे के आधार पर एक रसेश्वर दर्शन निर्मित किया गया है, जिसमें पारे से ही सृष्टि की उत्पत्ति कही गई है, और उसके द्वारा मुक्ति

का उपाय रससाधन बतलाया गया है। भावप्रकाश में सफेद, पीला, लाल और काला पारे के चार भेद बतलाये गये हैं। सफेद सब से उत्तम माना गया है। अनेक रासायनिक प्रयोगों में आने के कारण ही इसे रसराज कहते हैं।

२—इसका शुद्ध उच्चारण निम्न है। अधिकतर लोग नफ्त ही बोलते हैं। यह एक प्रकार का तेल है, जो सफेद और काले रंग का होता है। सफेद रंग का ज्यादा अच्छा होता है। यह शेरवान देश की भूमि से उबलता है। कहीं कहीं यह शब्द बारूद के अर्थ में भी व्यवहृत होता है।

३—वर्तमान भौतिक विज्ञान (Physical Science) के प्रचार के पहले, प्रायः सभी देशों के विचारवान् भौतिक जगत के मूल-पदार्थ केवल पांचही—पृथ्वी, जल, अग्नि,

यद्यपि सप्त-पिण्डों के अस्तित्व का मूलधन पारा और गंधक है, तथापि एक दूसरे के गुणों में विभिन्नता, संसृष्टि में भेदभाव एवं शुद्धता में अंतर होने के कारण नाना प्रकार के पदार्थ उत्पन्न होते हैं। जब ये दोनों वस्तुएं पार्थिक-कणों से मिश्रित न हो, पदार्थ स्वच्छ रहे, पूर्णतया पक कर आपस में मिल जायं,

वायु और आकाश—मानते थे, किसी किसी विचारक ने आकाश को अन्य पदार्थों का अधिष्ठान (Space) मान कर उसको मूल पदार्थों की कोटि से पृथक् कर दिया है। फ्रांसीसी, अरबी के अनेक विज्ञानवेत्ता तथा चार्वाक आदि पिछले मत के ही पोषक रहे हैं। परन्तु वर्तमान विज्ञान वेत्ताओं ने विश्लेषणक्रिया द्वारा बानवे मूल द्रव्य खोजे हैं। उनको अंगरेजी भाषा में एलीमेंट्स (Elements) कहते हैं, इन द्रव्यों में कुछ धातुएं (जैसे सोना, चांदी, तांबा, लोहा आदि), कुछ दूसरे खनिज (जैसे, गंधक, संखिया आदि) और कुछ वायव्य द्रव्य (जैसे, आक्सिजन, हाइड्रोजन और नाइट्रोजन आदि) हैं। वैज्ञानिक मूल पदार्थ (Element) उसको मानते हैं, जो किसी रासायनिक प्रक्रिया द्वारा दो या अधिक पदार्थों का बना हुआ सिद्ध न हो सके अथवा जो दो या अधिक पदार्थों के संयोग से न बनाया जा सके।

जिम पृथ्वी का प्राचीन विद्वानों ने मूल-तत्व माना है, वर्तमान कालीन वैज्ञानिकों ने उसमें सभी मूल पदार्थ अर्थात् बानवे द्रव्य पाये हैं। जल को इंग्लैण्ड निवासी प्रसिद्ध

वैज्ञानिक कैविएण्डस् दो गैसीय मूल पदार्थों अर्थात् आक्सिजन (Oxygen) और हाइड्रोजन (Hydrogen) का मिश्रण सिद्ध कर चुका है। वायु कितने ही प्रकार के गैसीय मूल एवं मिश्रित पदार्थों का मिश्रण साबित हुई है, उन पदार्थों में आक्सिजन और नाइट्रोजन मुख्य हैं, इनमें भी पंचमांश आक्सिजन है और शेष चार भागों में अधिकांश नाइट्रोजन है।

रासायनिक खोज संबंध में मुख्य सिद्धान्त “डाल्टन का परमाणुवाद” (Dalton's Atomic Theory) है। इसके मत में प्रत्येक मूल पदार्थ एकही प्रकार के अनेक परमाणुओं का समूह मात्र है। आक्सिजन के सभी परमाणु एक से हैं, और इसी प्रकार हाइड्रोजन आदि सभी मूल पदार्थों के भी परमाणु समान होते हैं। मूल पदार्थों में सबके परमाणुओं से हाइड्रोजन का परमाणु सब से हलका पाया जाता है। इस लिए इसके भार (Atomic weight) को इकाई मान कर वैज्ञानिकों ने सभी मूल पदार्थों के परमाणुओं के भार निकाले हैं, जिनकी तालिका नीचे दी जाती है।—

मूल पदार्थ	परमाणुभार	मूल पदार्थ	परमाणुभार ।
हाइड्रोजन	Hydrogen १	नाइट्रोजन	Nitrogen १४
हीलियम	Helium ४	आक्सिजन	Oxygen १६
लीथियम	Lithium ६.९४	फ्लोरिन	Fluorine १९
बेरीलियम	Beryllium ९.१	नियन	Neon २०.२
बोरन	Boron १०.८	सोडियम	Sodium २३
कार्बन	Carbon १२	मैग्नीशियम	Magnesium २४.३२

साथ ही गंधक सफेद हो और पारे के परमाणु अधिक हों, तो चांदी<sup>२</sup> पैदा होगी। यदि दोनों बराबर हो और गंधक लाल हो तथा उसमें रंगीन बनाने का बल भी हो तो सोना दर्शन देगा। उसी परिस्थिति में यदि मिश्रण के पश्चात् और पूर्ण परिपक्व होने के पहले सरदी उसे जमादे, तो खारचीनी उत्पन्न होगी। उसे

मूलपदार्थ	परमाणुभार	मूलपदार्थ	परमाणुभार
एल्यूमीनियम्	Aluminium २७ १	रुथीनियम्	Ruthenium १०१ ७
सिलिकन्	Silicon २८ ३	रूहोडियम्	Rhodium १०२ ६
फास्फोरस	Phosphorus ३१	पैलेडियम्	Palladium १०६ ७
सल्फर (गंधक)	Sulphur ३२	सिल्वर (चांदी)	Silver १०७ ८८
क्लोरीन	Chlorine ३५ ४६	कैड्मियम्	Cadmium ११२ ४
अर्गन	Argon ३६ ६	इण्डियम्	Indium ११४ ८
पोटैशियम्	Potassium ३९ १	टिन (रांगा)	Tin ११८ ७
कैल्शियम्	Calcium ४० ०७	पेण्टीमनी (सुर्मा)	Antimony १२० २
स्केण्डियम्	Scandium ४५ १	टेल्यूरियम्	Tellurium १२७ ५
टाइटैनियम्	Titanium ४८ १	आयोडिन	Iodine १२६ ६२
वनेडियम्	Vanadium ५१	ज़िनन	Xenon १३० ४
क्रोमियम्	Chromium ५२	केशीयम्	Cesium १३२ ८१
मैंगनीज़	Manganese ५४ ९३	बेरियम्	Barium १३७ ३७
आयरन् (लोहा)	Iron ५५ ८४	लेन्थैनम्	Lanthanum १३९
कोबाल्ट	Cobalt ५८ ९७	सीरियम्	Cerium १४० २५
निकेल	Nickel ५८ ७	प्रेसीडोमियम्	Praseodimium १४० ६
कापर (तांबा)	Copper ६३ ५७	न्योडीमियम्	Neodimium १४४ ३
ज़िंक (जस्ता)	Zinc ६५ ३७	इलीनियम्	Illium —
गैलियम्	Gallium ७० १	समैरियम्	Samarium १५० ४
जर्मेनियम्	Germanium ७२ ५	यूरोपियम्	Europium १५२
आर्सेनिक	Arsenic ७४ ९६	गडोलीमियम्	Gadolinium १५७ ३
सेलेनियम्	Selenium ७८ २	टर्बियम्	Terbium १५९ २
ब्रोमीन	Bromine ७९ ९२	डाइप्रोमियम्	Dysprosium १६२ ५
क्रिप्टन	Krypton ८२ ९२	होलमियम्	Holmium १६३ ५
रूबीडियम्	Rubidium ८५ ४५	इरबियम्	Erbium १६७ ७
स्ट्रॉन्शियम्	Strontium ८७ ६३	थूलियम्	Thulium १६८ ५
यट्रियम्	Yttrium ८९ ३	टरबियम्	Terbium १७३ ५
ज़िर्कोनियम्	Zirconium ९० ६	लुटेसियम्	Lutecium १७५
नायोबियम्	Niobium ९३ ५	हैफ़नियम्	Hafnium १७८ ६
मोलिब्डेनम्	Molybdenum ९६	टैन्टलम्	Tantalum १८१ ५
मैसूरियम्	Masurium —	टंग्स्टन	Tungsten १८४

आह्नवीनी भी कहते हैं। वास्तव में वह कच्चा सोना होता है; पर कुछ लोग उसे एक प्रकार का तांबा ख्याल करते हैं। यदि केवल गंधक साफ न हो, और उसमें पारे की अधिकता हो एवं जलाने की शक्ति विद्यमान हो, तो तांबा तैयार होगा। यदि एक दूसरे की मिलावट ठीक तरह से नहीं होती और सीसा अधिक

मूलपदार्थ	परमाणुभार	मूलपदार्थ	परमाणुभार		
रीनियम्	Rhenium	—	—		
आसमियम्	Osmium	११०.६	रेडन	Radon	—
इरीडियम्	Iridium	१९३.१	—	—	—
प्लेटिनम्	Platinum	१९५.२	रेडियम्	Radium	२२६
गोल्ड (सोना)	Gold	१९७.२	एक्टीनियम्	Actinium	—
मर्करी (पारा)	Mercury	२००.६	थोरियम्	Thorium	२३२.१५
थैलियम्	Thallium	२०४	प्रोटोएक्टिनियम्	Protoactinium	—
लेड (सीसा)	Lead	२०७.२	यूरेनियम्	Uranium	२३८.२
बिस्मथ	Bismuth	२०८	(The outline of Wireless, by Ralf		
पोलोनियम्	Polonium	२१०	Stranger, 1932, P 30-31)		

भौतिक विज्ञान के आचार्यों ने यह भी सिद्ध किया है कि प्रत्येक परमाणु दो प्रकार के विद्युत् अणुओं से बना है। एक विद्यु-दणु ऋणात्मक है और इलैक्ट्रॉन (Electron) कहलाता है, दूसरा धनात्मक है जो पोजिट्रॉन (Positron) कहलाता है। एक ही रासायनिक परमाणु में अनेक विद्युदणु होते हैं, और इस दृष्टि से एक एक परमाणु हमारे सौर मण्डल से भी अधिक पेचीदा मंडल है, जिसमें सूर्य स्थानीय परम लघु धनात्मक विद्युत केन्द्र है और उसके चारों ओर अनेक ऋणात्मक विद्युदणु ग्रहों की नाई नियत कक्षाओं में परिभ्रमण करते रहते हैं। इस प्रकार प्रत्येक परमाणु एक प्रकार का वृहत ब्रह्माण्ड है। जब यह ऋणात्मक विद्युदणु रूपी ग्रह अपनी कक्षा से विचलित कर दिये जाते हैं तभी प्रकाश प्रकट होता है। सारांश यह है कि वर्तमान विज्ञान ने 'यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे' की उक्ति को प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दिया है।

वर्तमान रासायनिकों ने कुल १२ मूल पदार्थों को दो भागों में बांटा है, एक धातु (metal) और दूसरे अधातु (non-metal)। इनमें आधे के लगभग धातु और शेष अधातु हैं। धातु और अधातु के भेद का प्रकटीकरण भी रासायनिक प्रक्रिया पर अवलम्बित किया गया है। पदार्थों के जलने से (आक्सीजन के मिलने से) जो मिश्रित पदार्थ बनता है वह उस मूल का ऑक्साइड (oxide) कहलाता है। कुछ ऑक्साइड चार (alkaline) रूप होते हैं और कुछ अम्ल (acid) रूप। जिन मूल पदार्थों के ऑक्साइड चार रूप होते हैं वे धातु हैं और दूसरे अधातु।

जगत् के असंख्यो प्रकार के इन्द्रिय गोचर पदार्थ हम प्रकार से बने हैं। ऋणात्मक और धनात्मक (electrons & positrons) विद्युदणुओं से परमाणु (atoms) बनते हैं और परमाणुओं के संयोग से अणु (molecules) संगठित होते हैं। इन अणुओं से



होता है, तो मिश्रित रांगा बन जायगा। कुछ लोग कहते हैं कि दोनों के बिना स्वच्छ हुये, पदार्थ नहीं बनता। यदि दोनों मिश्रित द्रव्य निकृष्ट हो, कठोरता से मिले हो, पारे के पार्थिव कणों में पार्थक्य का भाव हो और गंधक में जलने की शक्ति हो, तो लोहा प्रकट होगा। यदि उस अवस्था में पूर्ण मिश्रण न हो, और

शुद्ध रासायनिक पदार्थ (compounds) आविर्भूत होते हैं, और इन शुद्ध रासायनिक पदार्थों से असंख्यों प्रकार के इन्द्रियगोचर पदार्थ बनते हैं। वास्तविक बात यह है कि मूल पदार्थ में एक ही प्रकार के परमाणु होते हैं, किन्तु जब वे दूसरे प्रकार के परमाणुओं से मिलते हैं, तभी तीसरे प्रकार का द्रव्य तैयार होता है।

अनेक विद्वानों का मत है कि प्राचीन और अर्वाचीन मूल पदार्थों के सम्बन्ध में जो मनभेद है वह केवल विचारप्रणाली के कारण है। प्राचीन विचारकों की वृत्ति अन्तर्मुखी होने के कारण वे दृष्टा को मुख्य मानकर दृश्य को गौण समझते थे। इस लिए उनका पदार्थ विभाजन दृष्टा की अपेक्षा से है। दृष्टा की दृष्टि के पांच मूल साधन पांच इन्द्रियां हैं। वाद्य-जगत का समस्त ज्ञान दृष्टा तक इन्हीं पांच द्वारों से पहुँचता है। यहाँ तक तो वर्तमान वैज्ञानिक भी सहमत हैं। प्राचीन विचारकों के मतानुसार “जिस पदार्थ का ज्ञान केवल एक ही इन्द्रिय की सहायता से हो वह मूल पदार्थ है और जिसके ज्ञान के लिए दो इन्द्रियों की अपेक्षा हो वह मिश्रित पदार्थ है।” इधर वर्तमान वैज्ञानिकों की वृत्ति वहिर्मुखी होने के कारण दृश्य को दृष्टा की अपेक्षा अधिक महत्त्व देते हुये कहते हैं, कि इन्द्रिय जन्य ज्ञान अस्पष्ट, अधूरा और कभी कभी भ्रान्त होता है, प्रकृति का ठीक ठीक ज्ञान उसी के बने हुये यन्त्रों द्वारा हो सकता है। अतएव उन्होंने अपने मूल पदार्थ रासायनिक

प्रक्रियाओं से निश्चित किये हैं।

पर मूल पदार्थों का विश्लेषण नितान्त न हो सके, यह बात नहीं है। गत तीस वर्षों में वैज्ञानिकों ने ऐसी प्रक्रियाएँ ढूँढी हैं, जिन के द्वारा मूल पदार्थों का विश्लेषण भी संभव प्रतीत होने लगा है, यद्यपि साधारण रासायनिक प्रक्रिया द्वारा उनका विभाजन असंभव है। हम इसको इस प्रकार भी कह सकते हैं कि जो पदार्थ रासायनिक प्रक्रिया द्वारा मूल एवं अविश्लेषणीय है वही कुछ भौतिक प्रक्रियाओं द्वारा मिश्रित और विश्लेषणीय सिद्ध हो जाता है जैसा कि ऊपर लिखा गया है। इस दृष्टि से प्राचीन और अर्वाचीन दोनों ही मत ठीक हैं, क्योंकि दोनों ही अपनी अपनी दृष्टि से पदार्थों को देखते और तदनुसार परिणाम निकालते हैं।

२—कोटिल्य ने चांदी के चार भेद लिखे हैं—(१) तुथोद्गत—जोकि तुथ पर्वत से निकाली जाती है, (इसका रंग चमेली के समान सफ़ेद होता है—बट्ट स्वामी का भाष्य), (२) गौडिक जो कि गौड देश की उपज है (यह अगर के रंग की होती है—बट्ट स्वामी का भाष्य)। (३) काम्बुक जो कि कंबु पर्वत से प्राप्त की जाती है। (४) चाक्र-वालिक—जो कि चक्रवाल पर्वत से निकलती है। [ तीसरे और चौथे प्रकार की चांदी का रंग कुंद (एक प्रकार की चमेली) के समान होता है—बट्ट स्वामी का भाष्य। Kautilya's Arthshastra, Translated by Dr R Sham Sastri P 99 ] किन्तु डा० प्राणनाथ

पाग अधिक हो तो सीसा प्रदर्शित होगा। ये सात धातुएं सप्तपिण्ड कहलाती हैं। लोग पारे को पिण्डों की माता और गंधक को पिण्डों का पिता कहते हैं तथा पारे को जीवात्मा और हरताल तथा गंधक को श्वास ख्याल करते हैं। जस्त—जो कुछ लोगों के मतानुसार तृतीया की रूह है, और जिसकी सूरत शकल सीसे के समान होती है, विज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थों में उसका उल्लेख कहीं नहीं पाया जाता। हिन्दुस्तान में, जालौर की सीमाओं में जो कि सूबे अजमेर के इलाके में है, उसकी खान है। रासायनिकों का मत है कि रिसास (जस्त) एक प्रकार की चादी है कुष्ठ-रोग ग्रस्त, और पाग एक तरह की चांदी है जिसको फालिज की बीमारी है, सीसा एक प्रकार का सोना है कुष्ठ-रोग पीड़ित, और तांबा कच्चा सोना है। रासायनिक वैद्य की तरह उपचार द्वारा इन धातुओं को उनके सदृश अथवा उनके जोड़ का बना देते हैं।

बुद्धिमान कार्यकुशल, उपर्युक्त सप्तपिण्डों से मिश्रित कई धातुएं बनाते हैं, जिन से आभूषण और बर्तन इत्यादि बनते हैं। मैं उनमें से कुछ का हाल वर्णन करता हूँ :—

**सफेद रू**—हिन्दुस्तान के लोग इसे कॉप्पी कहते हैं। चार सेर तौबा और एक सेर कलई (रागा) गलाकर इसे बनाते हैं।

**रूई**—इस में चार सेर तौबा और डेढ़ सेर मीमा रहता है। हिन्दुस्तानी इसको भगार कहते हैं।

**बिरज**—हिन्दू इसे पीतल कहते हैं। इसको तीन प्रकार में बनाते हैं। पहली, वह पीतल, जो टढ़ी होने पर आघात से बढ़ने के योग्य हो, उसके अंश इस प्रकार हैं— $2\frac{1}{2}$  सेर तांबा, १ सेर रूह तृतीया। दूसरी, वह जो तपाकर पीटने से बढ़ सके, वह २ सेर तांबे और  $1\frac{1}{2}$  सेर रूह तृतीया में तैयार होती है। तीसरी जो घनाघात में बढ़ने के अयोग्य है। उसे ढालने के काम में लाते हैं। वह २ सेर तांबे और १ सेर रूह तृतीया से बनती है।

**सीमेखुइता**—सीसा, चांदी, और तांबे में मिलकर बनता है। इसका रंग काला चमकदार होता है, और नक्काशी के काम में आता है।

**हपत-जोश**—खार चीनी की तरह यह भी कही नहीं प्राप्त होता। यह छै

विद्यालङ्कार ने अपने भाषान्तर (कौटिल्य— भेद लिखे हैं—१-तुथोद्गत, २-गौडिक, अर्थ-शास्त्र पृ० ७७) में चांदी के पांच १-काममल, ४-कबक, ५-चाक्रवालिक।

धातुओं से मिलकर बनता है। कोई कोई इसको तालीकून कहते हैं। पर कुछ लोग तालीकून साधारण तांबे को ही ख्याल करते हैं।

**अष्ट-धात (अष्टधातु)**—यह आठ चीजों का मिश्रण है; छे हस्तजोश के अंश और रूह तूतिया तथा कांसी। यह सात चीजों से भी बनता है।

**कौल-पत्र**—२ मेर सफेद रू और एक सेर तांबे से बहुत रंगीन और सुहावना तैयार होता है। यह सम्राट् के पवित्र आविष्कार में से है।

## आईन १४।

### पदार्थों की लघुता और गुरुता।

यह लिखा जा चुका है कि अनन्त प्रकार के मिश्रितों की सृष्टि, वाष्प (बुखार) और धूम (दुखा) के संयोग में होती है, और वे दोनों तत्वों के प्रभाव से हलके और भारी होते हैं। इसके अतिरिक्त बुखार खुरक हो या तर, कभी ऐसा होता है कि वे मिलने के पहले पकते हैं अथवा पीछे, और कभी कभी उक्त दोनों दशाओं में से एक में। इस कारण वह मिश्रित पदार्थ, जिसके वायु और अग्नि सम्बन्धी अवयव, जल और पृथ्वी के कणों से प्रबल होते हैं उस खनिज द्रव्य में हलका होता है, जिस में जल और पृथ्वी के कण अधिक होते हैं। इसी प्रकार वह खनिज पदार्थ जिसका बुखार दुखा में विशेष होता है उसमें हलका होता है, जिसका दुखा बुखार में अधिक होता है। इसी तरह वह खनिज वस्तु, जिसमें बुखार और दुखा की परिपक्वता विशेष हो उस में अधिक भारी होता है, जो उस दर्ज को नहीं पहुँचता है, क्योंकि परमाणुओं का अंतर और वायु का प्रवेश ही हर शरीर को बड़ा बनाता और हलका करता है। इस अनुभव के द्वारा प्रत्येक वस्तु की लघुता और गुरुता जानने का साधन उपलब्ध होता है। पूर्वजों में से एक व्यक्ति ने पदार्थों की गुरुता का अंतर कुछ पदों में वर्णन किया है —

१—इस व्यक्ति से आशय अबू नासिर-फ़राही से है। यह सिजिस्तान के क्रूबे फ़राह का रहने वाला था। इसका असली नाम मोहम्मद बदरुद्दीन था। इसने निमाबु-स्सिबियां नामक एक पद्यात्मक शब्दकोष बनाया था, जो फ़ारस और हिन्दुस्तान के

फ़ारसी के अधिकतर मंदिरों में शताब्दियों से पढ़ाया जाता है। (Journal of Asiatic Society Bengal, 1868 P 7)।

“हमने पदार्थों की गुरुता इस प्रकार नियत की है — सोना १६२६, पारा १३६, सीसा ११३२५, चाँदी १०४७,

कृता ।

ज रह जुम्सा-ए हप्तादों यक दिरम सीमाब,  
चिलो शशस्तो ज अर्जीज सी ओ हश्त शुमार ।  
जहब सदस्त सरब पंज हो नुह आहन चिल,  
बिरंजो मिस चिहलो पंज नुकरा पिजहो चार ।

“पारे की गुरुता ७१ दिरम है, रुई की ४६, रांगे की ३८, सोने की १००, सीमे की ५६, लोहे की ४०, पीतल एवं तांबे की ४५ और चांदी की ५४।” कुछ लोगो ने इस गणना को अक्षरो की संख्याओं में वर्णन किया है —

कृता ।

नुह फिलज्जे मुस्तवी उल हज्म रा चूं वर कशी,  
इरिल्लाफे वज्जन दारद हर यके वे इश्तिबाह ।  
ज्वर लकन जीवक अलम असरब दहन अर्जीज हल,  
फिज्ज नद आहन यके मिस्सो शब मह रुप माह ।

अर्थात् यदि तुम समान विस्तार वाली नौ धातुओं को तोलो, तो उनके वजन में, निस्सन्देह इस प्रकार अन्तर पाओगे — सोना लकन = १००, पारा अलम = ७१, सीसा दहन = ५६, रांगा हल = ३८, चांदी नद = ५४, लोहा यके = ४०, पीतल और ताँबा माह = ४५, रुई माह = ४६।

यदि उपरोक्त धातुओं के कुछ टुकड़े, जो लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई में बराबर हो, लेवे, तो तोलने पर भार में वे एक दूसरे में भिन्न निकलेगे। कुछ

ताँबा ३, टिन ७ ३२, लोहा ७ ७, जिसके समानुपात के लिए पानी मान है। अबुल फ़ज़ल ने सोने को मान माना है, और उसकी गुरुता ११ २६ निश्चित की है। इस हिसाब से पारा १३ ८७, सीसा ११ ३६, चांदी १० ४०, तांबा ८ ६७, लोहा ७ ७६, टिन ७ ३२, रुई ८ ८६ होता है” — ब्लाकमैन (Blochman's translation of Ain-i-Akbari, Vol 1, P 42, Note 1)। टिन शब्द कलई के लिए प्रयोग किया गया है। कलई को हिन्दी में रांगा कहते हैं।

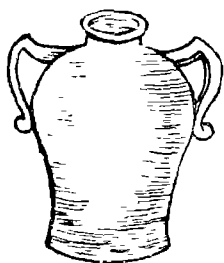
१—फ़ारसी भाषा में प्रत्येक अक्षर के लिए कुछ अंक नियत हैं, जैसे—लाम के

लिए ३०, काफ़ के लिए २०, नून के लिए ५०। लकन = लाम + काफ़ + नून = ३० + २० + ५० = १००। इसी प्रकार ओरों की भी संख्याएं जानना चाहिये। पुराने फ़ारसीदां तारीख़ निकालने में संख्याओं का बहुधा प्रयोग करते थे।

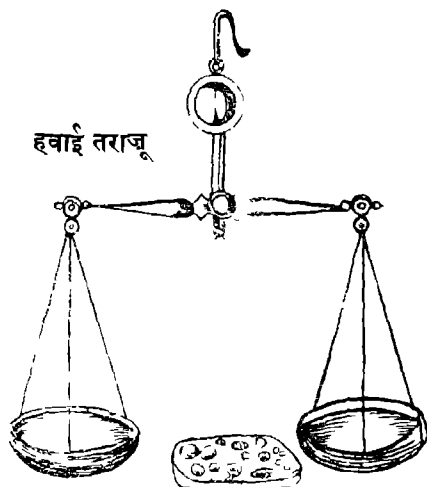
२—पहले धातुओं में उन्हीं द्रव्यों की गणना थी जो पीटने पर बिना खंडित हुये या चूर हुये बढ़ सकते थे—जैसे सोना, चांदी आदि। पर आजकल चूर होने वाले द्रव्य भी—सखिया, हरताल, सुरमा, सजीखार आदि—धातुओं के अन्तर्गत माने जाते हैं। पुराने ग्रंथों में अबुमीनियम्, प्लेटिनियम्, निकल, कोबाल्ट और रेडियम् आदि का



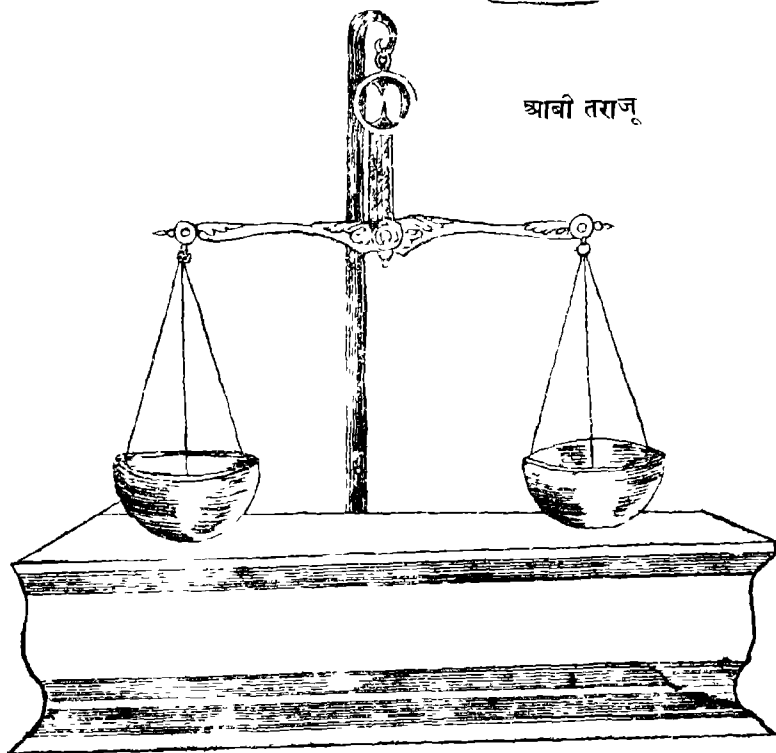
पानी का वर्तन



हवाई तराजू



आबी तराजू



चुष्ट न० देखिये ।

बुद्धिमान धातुओं के मानान्तर का कारण, उनके पिण्डों की गुण सम्बन्धी विभिन्नता ख्याल करते हैं ; और उनका हलकापन, भारीपन, पानी पर तैरना, डूब जाना, और भारों का अंतर, हवाई और आबी तराजू पर तौल कर मालूम कर लेते हैं ।

कितने ही तीक्ष्ण-दृष्टि वैज्ञानिक सब पदार्थों की नाप-जोख पानी से करते हैं । वे एक विशेष प्रकार का पात्र बनाते हैं, और उसका पानी से भर देते हैं । फिर उसमें सब धातुएं सौ सौ मिसकाल डालते हैं । उनके डालने से जितना पानी बाहर गिर जाता है, उससे उनके विस्तार और गुरुता का अन्तर जान लेते हैं । जिस पदार्थ का गिरा हुआ पानी ज्यादा होता है उसका विस्तार अधिक और गुरुता न्यूनतर होती है, पर जिसका निकला हुआ पानी कम होता है वह उसके विरुद्ध होता है । इस प्रकार उपर्युक्त परिमाण ( १०० मिसकाल ) में चांदी को बर्तन में डालने पर उसका पानी  $६\frac{1}{3}$  मिसकाल कम हो जाता है, और उतनाही सोना डालने पर  $५\frac{1}{8}$  मिसकाल घट जाता है । जब किसी पदार्थ के गिरे हुये पानी का परिमाण उसके वायु संबंधी भार ( हवाई वजन ) में से घटादे, तो जो कुछ शेष रहेगा वह जल संबंधी भार ( आबी वजन ) होगा । हवाई तराजू वह है जिसके दोनों पल्ले हवा में रहे, और आबी तराजू उसे कहते हैं जिसके दोनों पल्ले पानी पर रहे । भारी पदार्थ में डूबने का बल विशेष होता है, इसलिए प्रत्येक दशा में वह केन्द्र की ओर दौड़ेगा । यदि दोनों तराजूओं में से कोई पानी की सतह पर हो और दूसरी वायु में, तो हवाई यद्यपि हलकी होती है तो भी डूब जायगी, क्योंकि वायु जल से सूक्ष्म होती है, इससे इस हद तक प्रतिरोध नहीं करती । पर यदि बाहर गिरा हुआ पानी, अन्दर डाले हुये पिण्ड के विस्तार के बोझ से न्यूनतर हो, तो वह पिण्ड डूब जायगा । यदि गिरा हुआ जल अधिक होगा तो पिण्ड पानी पर तैरने लगेगा । और यदि बाहर निकला हुआ पानी, पिण्ड के वजन के बराबर हो, तो वह पानी में इतना डूबेगा कि उसका ऊपरी भाग पानी के धरातल के बराबर रहे । इस सम्बन्ध में अबूरैहान बेरुनी ने एक तालिका तैयार की है, लोगों की जानकारी के लिए, मैं उसका यहां पर उल्लेख करता हूँ :—

पता नहीं चलता । वैद्यक ग्रंथों में सोना, चांदी, तांबा, रागा, लोहा, सीसा और जस्ता को सप्तधातु बतलाया गया है । सोनामाखी, रूपामाखी, तूतिया, कासा, पीतल, सिंदूर और शिलाजीत ये सात उपधातु कहलाती हैं । वैद्यक के ग्रंथों में पारे को धातु नहीं माना है, वरन् उसे रस

बतलाया है । गंधक, इंगुर, अभ्रक, हरताल, मैनसिल, सुरमा, सुहागा, चुम्बक, फिटकरी, गेरू, खरिया, कसीस, खपरिया, बालू, मुरदामख की गणना उपरमों में है । पारा द्रव अवस्था में मिलता है, इस लिए यूरोप वाले इसे बहुत दिनों तक धातु नहीं मानते थे । जब

## धातुओं की लघुता और गुरुता की तालिका ।

नं०	धातुओं तथा रत्नों के नाम	उस जल का परि- माण जो १०० मिसकाल धातु या रत्न डालने पर बाहर निकल जाता है ।			धातुओं और रत्नों के वजन पाना में जब कि हवा में वे १०० मिसकाल हो ।			धातुओं और रत्नों की तौल हवा में जब कि उनका विस्तार १०० मिसकाल सोने या १०० नीले याकृतो के बराबर हो ।		
		मिसकाल	द्वानक	तस्मूज	मिसकाल	द्वानक	तस्मूज	मिसकाल	द्वानक	तस्मूज
१	सोना	५	१	२	६५	४	२	१००	×	×
२	पारा	७	२	१	६२	३	३	७१	१	१
३	सीसा	८	५	३	६१	१	३	५६	२	२
४	चांदी	८	४	१	६०	१	३	५४	३	३
५	कासा	११	२	३	८८	४	३	४६	२	३
६	तांबा	११	३	३	८८	३	३	४५	३	३
७	पीतल	११	४	३	८८	२	३	४५	३	५
८	लोहा	१२	५	२	८७	३	२	४०	×	×
९	रांगा ( कलई )	१५	४	३	८६	२	३	३८	२	२
१०	याकृत आसमानी	२५	१	२	७४	४	२	६४	३	३
११	याकृत सुवर्ण	२६	८	३	७४	३	३	६४	३	३
१२	लाल	२७	५	२	७२	३	२	६०	२	३
१३	जसुरद	३६	२	३	६३	४	३	६६	३	३
१४	मांती	३७	१	३	६२	५	३	६७	५	२
१५	लाजहवर्द	३८	३	३	६१	३	३	६५	३	२
१६	अक्कीक	३९	३	३	६१	३	३	६४	४	२
१७	कहरवा	३९	३	३	६०	३	३	६४	३	१
१८	बिलौर	४०	३	३	६०	३	३	६३	३	३

मालूम हुआ कि अधिक सरदी से पारा जम जाता है तब उसकी गणना धातुओं में की । अमेरिका वाले बहुत दिनों तक उत्का पिंडो के लोहे का ही व्यवहार करते रहे । उनको और किसी प्रकार के लोहे के व्यवहार का ज्ञान ही नहीं था । जब यूरोप वाले वहां पहुँचे तो उनको तरह तरह के लोहे का व्यवहार मालूम हुआ । धातुओं में प्रसिद्ध धातु सोना, चांदी, तांबा, लोहा, सीसा और रांगा हैं । इन पर लोगों का बहुत प्राचीन काल में ध्यान गया था । इनमें सब से हलकी धातु रांगा है, जो जल से लगभग आठ गुना भारी होता है ।

१-४ तस्मूज = १ द्वानक या दांग, ६ द्वानक = १ मिसकाल । इस हिसाब से इस तालिका की अनेक धातुओं की तौल में साधारण अन्तर प्रतीत होता है, क्योंकि बाहर के जल का भार और पानी की धातु की तौल १०० मिसकाल होना चाहिए । याकृत आसमानी पारा और चांदी की तौल तो ठीक है परन्तु अन्य धातुओं तथा रत्नों की तौल दूसरी हस्त-लिखित पुस्तकों की संख्याओं से नहीं मिलती ।

२-जिन अणुओं के संयोग से ये धातुएं बनी हैं, आजकल के वैज्ञानिक उनमें दो चीजें मानते हैं.—एक द्रव्य (matter) और दूसरी शक्ति (energy) ।



## आईन १५ । अन्तःपुर' ।

विश्व-विभूषक सम्राट् को आवादी की बड़ी चिन्ता रहती है, इससे कार्य योग्यता से होते हैं, सृष्टि सत्यता की हरित-भूमि हो जाती है और वाह्यता आत्मिकता का रूप प्रदर्शित करती है । इसी कारण से, स्त्रियों की अधिकता ने,—जिसने बड़े बड़े ज्ञानवानों को मोह के अंध-पाश में फास दिया है—सम्राट् का ज्ञान-प्रकाश बढ़ाया और सांसारिक बन्धन के गढ़े से निकाल कर विरक्ति-शिखर पर पहुँचाया । उत्तमोत्तम ढंग से, अन्त पुर आवाद हो गया और परिवार सुन्यवस्थित हो गये । सम्राट् ने हिन्दुस्तान एवं अन्य देशों के श्रेष्ठ पुरुषों के साथ विवाह-सम्बन्ध स्थापित किये, और इस एकता के नाते के द्वारा अशान्त जगत शांत हो गया ।

१—महाभारत काल में 'राजा का महल बहुधा किले के अन्दर हुआ करता था । उसमें कई आगन और कच्चाएँ होती थीं । बाहर की कच्चा में सब लोगों को आने की इजाजत थी, और दूसरी कच्चा में केवल अधिकारी और दरबारी जा सकते थे । तीसरी कच्चा में यज्ञशाला राजा के स्नान तथा भोजनगृह आदि का प्रबन्ध रहता था । चौथी कच्चा में अन्तःपुर होता था । यहाँ का स्थान विस्तीर्ण होता था, उस में बड़े बड़े बाग बगीचे लगे रहते थे । राजा के अन्तःपुर में स्त्रियाँ रहती थीं' ( महाभारत भीमासा, पृ० ३१४ ) ।

कोटिल्य ने अन्त पुर निर्माण के सम्बन्ध में लिखा है ।—“अन्त पुर में अनेक कमरे हों । उसके चारों ओर दीवार, द्वार तथा खाइयाँ हों । राजा का निवास-स्थान कोषगृह के अनुरूप बनाया जाय । एक मोहन-गृह बनाया जाय, जिसकी दीवारों से होकर आने जाने के मार्ग हों । राजा का निवास-स्थान इसके मध्य में भी हो सकता है । इसी प्रकार एक महल बनाया जाय और भूमिगृह तैयार किया जाय,

जिसके दरवाजों पर मूर्तियाँ बनी हों, दीवारों में सीढ़ियाँ लगी हों, अन्दर बाहर जाने के लिए अनेक सुरंगें हों, सब खम्भे पोले हों और उनसे होकर आने जाने के मार्ग हों । उनकी छतों की कल और यंत्रों से इस प्रकार रचना की गई हो कि आवश्यकता के समय वे एक क्षण में बिठलाई जा सकें । इस महल को भी राजा अपना निवास-स्थान बना सकता है । सहपाठी और बचपन के साथियों से बचने के लिए और आकस्मिक आपत्ति के समय आत्म-रक्षा के लिए उपर्युक्त उपाय आवश्यक है । अन्तःपुर के पिछले भाग में स्त्रियों के रहने का स्थान, गर्भोपयोगी जड़ी बूटियों का क्षेत्र और तालाब बनाया जाय । बाहर की ओर लड़के लड़कियों का निवास, और आगे की तरफ शृङ्गार-गृह, दरबार, राजकुमारों तथा अध्वर्यों के रहने के स्थान हों" ( कोटिल्य अर्थशास्त्र प्रथम अधिकरण ) ।

विजयनगर के राजा कृष्णदेव राय ( १५०६—१५२९ ई० ) के महल का वर्णन बहुत विस्तृत और मनोरंजक है । उसके प्रासाद में कितने ही सहन, कितने ही

जिस प्रकार सम्राट ने अपने ज्ञान के प्रकाश से बाहर के योग्य सेवकों को गुमनामी की धूल से उठाकर उच्चपद प्रदान किये, उसी प्रकार उसने अपनी दूरदर्शिता से महल के सभी दास दासियों की योग्यतानुसार पदवृद्धि की। अदूरदर्शी तो यह जानता है कि उसने मिट्टी से सौदे हुये सोने को चमका दिया है, पर सूक्ष्मदर्शी समझता है कि यह अकसीरसाजी या रसायन बनाना है। जब जड़ी बूटी धातुओं को और का और बना देती हैं, अर्थात् तांबा और लोहा सोना हो जाता है तथा रागा और सीसा चांदी बन जाती है, तो यदि कोई श्रेष्ठ पुरुष किसी अयोग्य व्यक्ति को मनुष्य बना दे, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है :—

च नीको जदन्द ई मसल होशमन्दा,

कि अकसीर बरन्तस्त चश्मे-बलन्दां।

अर्थात् बुद्धिमानो ने यह कहावत क्या ही अच्छी कही है कि महापुरुषों की दृष्टि भाग्य की रसायन है। सम्राट में प्रबन्ध के सभी गुण, जैसे ज्ञानाचता, सूक्ष्मदर्शिता, पद-ज्ञान, गुणग्राहकता, कार्य-प्रियता और सहनशीलता विद्यमान है। वह क्रोध में भी सन्मार्ग नहीं त्यागता, अधिक दया करने पर दृष्टि रग्वता है, सुनी हुई बातों को दूरदर्शिता से तौलता है, और कल्पित विचारों से दूर रहता है। वह मनुष्यों की सद्भावनाओं की प्राप्ति को दुर्लभ समझता है, और सांसारिक मदिरा से अपने ज्ञान-मणि को आघात नहीं पहुँचाता है।

महल और अनेक कमरे थे, जो सोने, चांदी और जवाहरात से सजे हुये थे। किसी किसी महल के सब कमरे हाथी दाँत के थे। उनमें हाथी दाँत के ही गुलाब और कमल के फूल बने हुए थे। कितने ही कमरों में रत्न जड़े हुये थे। ये इतने सुन्दर और मूल्यवान थे कि पर्यटक पेई (Paes) के शब्दों में “अन्यत्र वैसे कठिनाई से देखने को मिलते।” एक कच्चा में मानव-जीवन की सब अवस्थाओं के चित्र थे, उनको अबलोकन करके राजमहिषीं सब जातियों (पुर्तगीज़ों तक) के रहन-सहन के तरीकों को जान सकती थीं। वे भिखारियों और अन्धों तक की अवस्था से परिचित थी। एक महल में सोने से मड़े हुये दो सफ़ल थे। उसी जगह पर हरित सूर्यकान्तमणि का

एक तख़्ता था, जो उस महल का एक अपूर्व पदार्थ था। उसके बाद एक बहुत बड़ा सहन था, जिसमें रानियों के लिए फूलने पड़े हुये थे। चार खम्भों पर सधा हुआ एक निवास था जिसके सायबान में नर्तकियों की मूर्तियां थी। इनके अतिरिक्त और भी सुन्दर मूर्तियां थीं। यहीं पर एक आराध्य मूर्ति थी, जो पूजा के समय स्वर्ण सिंहासन पर ले जाई जाती थी। एक दालान तथा एक कमरे में दो पलंग थे जो चांदी की जंजीरों से टंगे हुये थे। उनके पाये सोने के थे। उनमें रत्न जड़े हुये थे। इसके बाहर सहन में धनुष और बाण धारण की हुई महिलाओं की मूर्तियां थीं। एक दूसरे स्थान पर सोने के तीन बड़े बड़े कढ़ाह या डेगें थीं, उनमें गाय का आधा अङ्ग छिप सकता

सम्राट् ने एक विशाल दुर्ग बनाया है, उसके रम्य भवनों में वह विश्राम करता है । ५००० से अधिक महिलाएँ हैं, उनमें से प्रत्येक के लिए एक पृथक् गृह मनोनीत किया है । अलग अलग टोलियाँ बनाकर, वह उनको उत्तम सेवाओं पर तत्पर रखता है । चरित्रवती ललनाएँ हर झुण्ड की निरीक्षणता के लिए दारोगा पद पर नियुक्त की गई हैं । इन शीलवती सीमन्तनियों में से उसने एक बरवाणिनी को लेखिका बनाया है । उसने बाहर की तरह यहाँ भी कारखाने आवाद किये हैं, और प्रत्येक स्त्री का, उसकी योग्यतानुसार उपयुक्त वेतन नियत किया है । यद्यपि सम्राट् की बख्शिश का अनुमान लेखनी द्वारा नहीं किया जा सकता तथापि जो रकम केवल मासिक वेतन के रूप में प्रत्येक सरदार महिला पाती है वह १६१० रुपए से १०२७ रुपए तक है । कुछ मेविकाओं को ५१ से २०

था । अन्तःपुर का एक कमरा, जिसमें बैठ कर राजा नृत्य देखा करता था, स्वर्णभय था । उसके फर्श और दीवारों पर सोने के पत्र मढ़े हुये थे । इसी कमरे में दीवार के बीचोंबीच में बारह वर्ष की कन्या के बराबर एक सोने की मूर्ति थी (A Forgotten Empire, by Sewell, 1924, P 284—88 ) ।

१—दारोगा या दारोगा शब्द को कुछ कोषकारों ने फ़ारसीभाषा का माना है ( शब्दसागर पृ० १२४३ ) । पर फ़ारसी की कई प्रसिद्ध लुगतों में वह नहीं है । किसी किसी ने उसे मंगोलभाषा का बतलाया है (Kovalevsky's Dictionary, No 1672) । मंगोल भाषा में यह प्रान्त के गवर्नर या नगर के शासक के लिये प्रयुक्त होता था । मंगोलभाषा के सन् १३१४ ई० के एक शिलालेख में यह शब्द प्रान्तीय गवर्नर के लिये ही प्रयुक्त हुआ है । चीन के शेन्सी प्रान्त में यह लेख प्राप्त हुआ था (Pauthier in his Marco Pollo, P 773) । सुदूरपूर्व से ही यह शब्द इधर लाया गया है । तैमूर और उसके कुछ पिछले उत्तराधिकारी इस शब्द को गवर्नर के ही अर्थ में प्रयुक्त करते रहे, किन्तु कुछ दिनों के बाद यह साधारण अधिकारियों के लिए भी व्यवहृत

होने लगा (Hobson-Jobson P 279) । विल्सन के मतानुसार हिन्दुस्तानियों के राज-त्वकाल में यह शब्द पहले विभिन्न विभागों के सुपरिन्टेन्डेन्टों तथा मैनेजरों के लिए इस्तेमाल किया जाना था, परन्तु पीछे से केवल चुगी, आबकारी और पुलिस थानों के प्रधान अधिकारियों के लिए काम में लाया जाने लगा । १७६३ ई० में १८६२—६३ ई० तक स्थानीय पुलिस का चीफ़ या हेड कांस्टेबिल तक दारोगा कहलाता था । सयुक्त प्रान्त में थाने के ईंचार्ज को अब भी दारोगा कहते हैं ।

कौटिल्य-अर्थशास्त्र का अध्ययन शब्द दारोगा शब्द से मिलता जुलता है । यद्यपि दोनों के अधिकारों में कुछ अन्तर है तथापि कोई कोई शब्द भाव घोटक अवश्य हैं, जैसे कौटिल्य का गोअध्यक्ष और आर्द्देन-अकबरी का दारोगा गावड़ाना आदि ।

२—मूलग्रन्थ में “अज्ञ यक हज़ार-ओ शशसद-ओ दह रुपया ता बीस्त-ओ हफ़्त” पाठ है, जिसका साधारण अर्थ १६१० से २७ ह० तक होता है । परन्तु यह वेतन “मिहीन बानों” ( उच्च-पदस्थ महिला ) का है । इससे २७ रुपया नहीं हो सकता । यदि सोलह सौ की अनुवृत्ति

रुपए तक, और कुछ को ४० से २ रुपए तक मिलते हैं। दरबार खास में वह एक आज्ञा पालक उत्तम लेखक मुशरिफ ( दीवान ) पद पर नियुक्त करता है, जो कि राजभवन के आय व्यय की देख भाल करता है और नगदी तथा जिस का हिसाब रखता है। इस समुदाय की महिलाएं जो कुछ चाहती हैं, अपने वेतन के अनुसार अन्दर के एक तहवीलदार ( खजांची ) से मांग लेती हैं। तहवीलदार उसकी याददाश्त ( स्मरण-पत्र ) फाटक के मुशरिफ के पास भेजता है। वह उसे जाचता है। प्रधान कोषाध्यक्ष उसके अनुसार रुपया चुका देता है। इस प्रकार की मांग में बरात<sup>१</sup> नहीं दी जाती है।

इसके अतिरिक्त मुशरिफ वार्षिक व्यय की बराबुर्द<sup>२</sup> बनाकर संक्षेप में कञ्ज<sup>३</sup> तैयार करता है, जिस पर राज्य के मंत्रियों की मोहर का निशान लगाया जाता है। उसके बाद उस पर खास शाहंशाही मोहर से छाप लगाई जाती है। यह मोहर केवल अन्त पुर सम्बन्धी व्यय-पत्र के लिए ही बनाई गई है। फिर यह कञ्ज वसूलयात्री के लिए जारी होती है। इस प्रमाण-पत्र के आधार पर प्रधान खजांची बाहर के प्रधान तहवीलदार को रुपया दे देता है। वह उस रुपए को मुशरिफ के आदेशानुसार छोटे तहवीलदारों को बांट देता है, वहां से रनिवास के नौकरों को मिल जाता है। वेतन का हिसाब किताब वर्तमान समय के रुपए की दर ( ४० दाम=१ रु० ) के अनुसार होता है।

रनिवास के आस पास भीतर की ओर सौ शुद्धाचारिणी एवं सचेत महिलाएं पहरा देती हैं<sup>४</sup>। विशेष कर सम्राट के निवास स्थान पर शीलवती वाकपटु और

मानी जाय तो पिछली संख्या १६२७ होनी चाहिए पर अबुलफज़ल बहुधा बड़ी संख्या पहले लिखता है और छोटी संख्या बाद को। इस कारण से कदाचित् १६०० की अनुपुत्ति नहीं होगी वरन् दस सौ की होगी। इस हिसाब से २७ की संख्या १०२७ मानी जायगी। मो० ज़काउल्ला ने अपने “इक़बालनामा अकबरी” में उक्त संख्या १०२७ ही लिखी है, किन्तु ब्लाक्मैन के अनुवाद में १०२८ है। एक प्रति के पाठान्तर से ब्लाक्मैन की भी संख्या ठीक है।

१—चेक।

२—चिट्ठा।

३—कञ्जुलवसूल।

४—कौटिल्य ने अर्थ-शास्त्र (अधिकरण १, आत्मरक्षा-प्रकरण) में लिखा है कि “सोकर उठते ही राजा का आदर सत्कार धनुषबाण धारण की हुई सैनिक महिलाएं करें।” इससे प्रकट है कि उस समय महिलाएं शस्त्र धारण करती थीं और अन्तःपुर में राजा की निकटस्थ शरीर रक्षिका होती थीं। इसके आगे लिखा है कि “बूसरी कला में चोगा, पगड़ी और वर्दी आदि पहने हुये बुद्धे अन्तःपुर के नौकर, तीसरी कला में कुबड़े, बौने तथा किरात लोग, और चौथी कला में मंत्री, सम्बन्धी तथा छद्मीदार स्वागत करें।”

कुशाग्रबुद्धि बरवर्णिनी उपस्थित रहती हैं। बाहर की ओर शुभचिन्तक ख्वाजा-सरा ( नपुंसक गण ) सेवकाई के लिये उत्सुक रहते हैं। इन से समुचित दूरी पर राजभक्त चौकसी करते हैं। उनके बाद सच्चं और परिश्रमी फाटकों के चौकीदार चौकीदारी पर प्रस्तुत रहते हैं। इनके अतिरिक्त बाहर की तरफ चारों ओर अमीर, अहदी और अन्य सैनिक, अपने अपने पदों के अनुसार रखवाली करते हैं।

विजयनगर के राजा कृष्णदेवराय की बारह रानी थीं उनमें तीन पटरानी थीं। हर एक महिषी की अनेक दासिया एवं शरीर रक्षिकाएँ थीं। नपुंसक रत्नों को छोड़कर रनिवास में कोई नहीं जा सकता था। हाँ, राजा की अनुग्रह में वृद्ध उच्चपदस्थ कभी उनको देख सकते थे। वे बन्द पालकियों में बाहर जाती थीं। तीन चार सौ नपुंसक उनके साथ होते थे, और सब लोग दूर रहते थे। इनके अतिरिक्त अन्त-पुर में बारह सौ स्त्रियाँ और बतलाई जाती थीं। उनमें से अनेक स्त्रियाँ ढाल तलवार चलाती थीं, बहुतसी महिलाएँ कुश्ती लड़ती थीं, कितनी ही तरह तरह के बाजे बजाती थीं और बहुतसी स्त्रियाँ फाटक के अन्दर उसी प्रकार विभिन्न पदों और कार्यालयों में काम करती थीं, जैसे कि बाहर पुरुष काम करते थे। राजा महल के अन्दर रहता था। जब वह किसी रानी से मिलना चाहता था तो नपुंसक को आज्ञा देता था। नपुंसक रनिवास में नहीं जा सकता था। वह अपेक्षित रानी की शरीर-रक्षिका से कहता था। शरीर-रक्षिका रानी को सूचना देती थी। तब रानी की कोई सहेली या दासी उसको राजा के पास पहुँचा देती अथवा राजा को वहाँ बुला ले जाती थी (A Forgotten Empire P 247—249)। राजा के लिए ऐसे बन्धन क्यों थे, इसका उत्तर पेई या न्यूनीज़ के (Narrative of Domingos Paes &

Chronicle of Fernao Nuniz) विवरणों में स्पष्ट नहीं है। वरन् इसका उत्तर कौटिल्य के निम्न-लिखित वाक्यों से मिल जाता है — घर के अन्दर पहुँचकर राजा बुद्धी स्त्री के द्वारा पटरानी को कहलादे और जब कोई उसके पास न रहे तभी उसमें मिलकर बात चीत करे। क्योंकि भाई ने रानी के कमरे में छिपकर भद्रसेन को, माता की चारपाई में छिपकर लड़के ने कारुश को, खीलों में शहद के बजाय ज़हर लगाकर रानी ने काशिराज को, बिप में बुझे पायज़ेव से रानी ने ही वैरव्य को, हीरे की कर्धनी से रानी ने ही सौवीर को, दर्पण से रानी ने ही जालूथ को, और बालों के जूड़े में शस्त्र छिपाकर रानी ने ही विदूरथ को मारा था।" न्यूनीज़ के विवरण में मालूम होता है कि कृष्णदेवराय के उपाधिकारी अच्युतराय के पाँच सौ रानियाँ थीं। इनके अतिरिक्त महल के अन्दर चार हज़ार और स्त्रियाँ थीं। उनमें से कुछ नर्तकियाँ, कुछ रानियों की पालकी ढोने वाली, कुश्ती लड़ने वाली, फलित ज्योतिष की ज्ञाता, भविष्य कहने वाली, फाटक के अन्दर के खर्च का हिसाब किताब रखने वाली राज्य के विषयों का विवरण लिखने वाली तथा लिखचुक्ने के बाद उनको बाहर के लेखकों से मिलान करने वाली, गान-विद्या निष्णाता और वाद्यकला विशारदा थी। राजा की रानियाँ भी गान विद्या में बड़ी कुशल थी (A Forgotten-Empire, P 370, 382)।

जब कभी बेगमे, अमीरो की पत्नी तथा अन्य शुद्धाचारिणी महिलाएँ चाहती हैं कि सम्राट की सेवा में उपस्थित होकर प्रणाम करके सौभाग्यवती हो, तो वे पहले अन्तःपुर के सेवकों को सूचना देती हैं और उपयुक्त उत्तर पाती हैं। फिर उनके प्रार्थना-पत्र दरबार के पेशकारों के पास भेजे जाते हैं। इसके बाद जो स्त्रियाँ अधिकारिणी होती हैं, अन्दर जाने की आज्ञा पाती हैं। किन्हीं विशेष बेगमों को एक मास पर्यन्त रहने की आज्ञा मिल जाती है।

सत्यशील रत्नों के विद्यमान होते हुये भी सम्राट अपनी सूक्ष्म दृष्टि नहीं हटाता है और अपना अनुभव काम में लाता है।

## आईन १६।

### यात्राओं में निवास-व्यवस्था ।

पड़ावों के पूरे प्रबन्ध का हाल वर्णन करना कठिन है, परन्तु जो व्यवस्था और सजावट शिकारों और निकटवर्ती यात्राओं में दृष्टि गोचर होती है, उसका थोड़ा सा हाल लिखता हूँ और आदर्श उपस्थित करता हूँ।

**गुलालखार**—एक अद्भुत बड़ा घेरा होता है<sup>१</sup>, सम्राट ने उसका आविष्कार किया है। उसके दरवाजे बहुत मजबूत होते हैं और ताले कुंजी से खुलते तथा बन्द होते हैं। वह सौ बर्ग गज से कम नहीं होता। इसके पूर्वोक्त किनारे पर एक डेरा खड़ा करते हैं, जिसमें दो प्रवेश-द्वार और चौवन कोठे होते हैं। प्रत्येक की लम्बाई चौबीस गज और चौड़ाई १४ गज होती है उसके बीच में एक बड़ी **चौबीरावटी**<sup>२</sup> खड़ी करते हैं और उसके आस पास दूसरे **सरापदे**<sup>३</sup> लगा देते हैं। इस चौबीरावटी से मिला हुआ एक दुखंडा **चौबीकाख**<sup>४</sup> खड़ा किया जाता है, यह सम्राट का उपासना-मन्दिर होता है। प्रातःकाल उस की छत पर बैठकर वह लोगों के अभिवादन (कोनिश) स्वीकार करता है<sup>५</sup>। रनिवास से

१—इनमें से बहुतों का वर्णन फ़र्ग्यसनाने (इक्वीसेवें आईन) में भी है। २—लकड़ी की रावटी। ३—वे बड़े पर्दे जो आड़ करने के लिये खेमों के इधर उधर दीवार के तौर पर लगाये जाते हैं। ४—काष्ठ-भवन।

५—भारतवर्ष के शासकों में सम्राट हर्षवर्द्धन के पड़ावों की व्यवस्था किसी हद तक अकबर से मिलती जुलती है। डा० राधाकुमुद मुकर्जी ने 'हर्ष', नामक अपनी पुस्तक में लिखा है।—सम्राट (हर्षवर्द्धन) दीवे में

सम्बन्ध रखने वाली महिलाएँ बिना आह्वा उसके अन्दर नहीं जासकतीं। उसके बाहर, १० गज लम्बी ६ गज चौड़ी, २४ चोबी रावटियों सुचारु रूप से खड़ी की जाती हैं, और हर एक क़नातो से अलग कर दी जाती है। श्रेष्ठ बेगमे इन्हीं में शयन करती है। कुछ और भी तंबू और खेमे खड़े किये जाते हैं, जिनमें ख़ाम लोग निवास करते हैं। इनको ज़बर्ज़त, ज़रदोज़ और मख़मल के साथवानो से सजाते हैं।

चलित भवनों में ठहरता था। उसके ठहरने पर क़न्नौज में राज-सभा के लिए एक ऐसा ही प्रासाद निर्मित किया गया था। यह यात्रा-निवास भी कहलाता था, ऐसा ही एक भवन कज़ुविर में बनाया गया था। ये भोंपड़ों के समान कटे हुये फूस अथवा डालियों और शाखाओं से बनाये जाते थे, और सम्राट् के प्रस्थान करने पर आग लगाकर नष्ट कर दिये जाते थे। बाण ने अजिरवती नदी के तट पर मणितार शिविर का जो वृत्तान्त वर्णन किया है, उसमें सम्राट् का ठाठ के साथ भ्रमण करना प्रकट होता है। वहाँ का राजकीय शिविर प्रसिद्ध अधीन राजाओं के अनेक शिविरों से—जो कि अपनी फ़ौजफाँटे के साथ उपस्थित थे—घिरा हुआ था। इसके अन्तर्गत चार विभिन्न प्रकार के सहन थे। चौथी क़ड़ा के एक ढेर में मोती के सदृश पाषाण-सिंहासन पर बैठकर पद्मराग मणि और नीलम की तिपाई पर पैर रखकर, सम्राट् लोगो को दर्शन देता था। शिविर के मार्ग भी उसी प्रकार मुशोभित और सज-धज के थे। राजद्वार गज वीथियों के कारण तमसाच्छुन्न हो रहा था, एक स्थान पर घोड़े लहरों में गोते लगाते हुये दृष्ट पड़ रहे थे। ऐसा मालूम होता था कि मानों वे अपनी चञ्चलता के कारण आकाश की ओर को उड़ने लगे। एक दूसरा स्थान ऊँटों की सेनाओं से भूरा हो रहा था। एक अन्य स्थान सफ़ेद छतों और चवर्तों से श्वेत वर्ण हो रहा था। राज-शिविर के द्वार पर द्वारपाल

थे, जिनका प्रधानाधिकारी पारियात्र था। यह सम्राट् का विशेष प्रिय पात्र था। शिविर के भीतर एक अस्तबल था, जो सम्राट् के प्रिय घोड़ों से भरा हुआ था, उसमें राज्य का प्रसिद्ध हाथी दर्पशात भी था। इन चलित भवनों का महत्व सम्राट् के राजकीय महत्मानों के कारण और अधिक बढ़ गया था। आसाम के राजा कुमार ने उससे बंगाल के शिविर में भेंट की थी, उसके पायक २०,००० हाथियों और ३०,००० जहाज़ों पर आये थे। हुआन चुआंग ने इन राजकीय यात्राओं के सम्बन्ध में लिखा है— सम्राट् ने अपने समस्त राज्य का निरीक्षण जाजाकर किया, वह किसी स्थान पर अधिक समय तक नहीं ठहरा, किन्तु अपने रहने के लिए उसने पड़ावों पर अस्थायी निवास बनवा लिये। वर्षाऋतु के तीनमहीनो में वह बाहर नहीं गया। इस प्रकार की यात्रा में भी ५०० ब्राह्मणों और १००० बौद्ध भिक्षुओं को राजकीय अस्थायी निवासो से भोजन मिलता था।”

“इस प्रकार राजा अपने राज्य में सर्वोत्तम यात्री था और अपनी सवृद्धि में राज्य के निम्नलिखित स्थानों में उसने पड़ाव डाले थे—राजमहल, क़न्नौज, प्रयाग, मणितार (अवध), उड़ीसा,—इनके अतिरिक्त काश्मीर, वज्जनी, रीवा और गजाम को एक आक्रमक की हैसियत से गया था (Harsh by Prof. Radhakumud mookerji, M A, Ph D, 1926, P 86-88)

उससे लगा हुआ ६० गज लंबा चौड़ा गलीमोहरा पर्दा खड़ा करते हैं; इसमें कई खेमे लगाये जाते हैं। ये डेरे उर्दू बेगियों तथा अन्य पवित्र महिलाओं के विश्राम-स्थान होते हैं।

उसके बाहर खास दौलतखाने तक १५० गज लंबा और १०० गज चौड़ा एक चित्ताकर्षक सहन सजाते हैं, उसको महताबी कहते हैं। उसके दोनो ओर पहले की तरह से कनातें लगाते हैं, और हर दो गज के फासले पर छे गज्जी चौबे खड़ी करते हैं, जो एक एक गज जमीन के अन्दर गड़ी रहती हैं। जिनके ऊपरी सिरो पर पीतल के कलश होते हैं। उनको भीतर और बाहर दो रस्सियों से कस देते हैं। पहरण पूर्व-रीत्यनुसार पहरा देते हैं।

१—मूल में उर्दू बेगियां पाठ है। यह शब्द उर्दू और बेगियां से मिलकर बना है। तुर्की भाषा में उर्दू लश्कर, सेना या शिविर को कहते हैं। सन् १४०४ ई० में तैमूर ने इसका प्रयोग किया था। उस समय वह एक द्विभाषिया पर असन्तुष्ट होकर कहने लगा था—“तुम फ्रैंक राजदूतों के साथ नहीं थे, इस लिए मैं तुमको दंड दूंगा, और इस प्रकार भविष्य में सर्वदा के लिए कर्तव्य-पालन करने के निमित्त तुमको सख्त करूंगा। मैं तुम्हें देता हूँ कि तुम्हारे नथुने छेद्रे जाय और डोरी डाली जाय और दंड स्वरूप तुम सारी उर्दू (सेना) में घुमाये जाओ (Clavigo in Hobson-Jobson, P. 640 1903)। बाबर के भारत-वर्ष में आने पर यह शब्द राजकीय-निवास के लिये व्यवहृत होने लगा था। उस समय राज-निकेतन को उर्दू-ए-मुअल्ला (छोटा शिविर) कहते थे। दरबार और शिविर में जो मिश्रभाषा बोली जाती थी वह ज़बाने-उर्दू कहलाती थी। पर उस समय वह विकसित नहीं हो सकी थी। अकबर के राजत्व-काल में उर्दू शब्द केवल सेना या शिविर के अर्थ में ही प्रयुक्त होता रहा। उर्दू कहने से उर्दू भाषा नहीं समझी जाती थी। अबुलफ़ज़ल ने उर्दू

भाषा का आईने-अकबरी में कहीं उल्लेख नहीं किया है। इसके विरुद्ध हिन्दी भाषा के लिये हिन्दी शब्द अनेक स्थलों पर प्रयोग किया है। शाहजहाँ के शासन काल में उर्दू शब्द से उर्दू भाषा समझी जाने लगी। उर्दू उम समय बाज़ारू भाषा थी। पीछे से इसने साहित्य का रूप धारण किया और इस समय (१६३५ ई०) इसके गद्य और पद्य दोनों उत्कृष्ट माने जाते हैं। आजकल उर्दू कहने से अधिकतर लोग उर्दू भाषा ही समझते हैं, सेना या शिविर नहीं। पर हाँ, पेशावर की हद्द पर आज कल भी उर्दू शब्द से रणक्षेत्र की सेना का पबाव, छावनी, कैम्प या शिविर समझा जाता है। बेगशब्द भी तुर्की भाषा का है। इसका अर्थ स्वामी और सर्दार होता है। बेगम शब्द इसी का स्त्रीलिङ्ग है। बेगी इसी का रूपान्तर है। उर्दू-बेगियों से महिला सैनिकों अथवा शस्त्रधारी स्त्रियों का तात्पर्य है। हिन्दी में किसी किसी लेखक ने इन्हीं उर्दू-बेगियों को उर्दू-बेगिनियों लिखा है। इन्हीं स्त्रियों के समान पहरेदारों में एक और स्त्री-दल था, जो कलमाकनी कहलाता था, इनको बिवाह करने की आज्ञा नहीं होती थी।



इस आनन्द प्रद औंगन के बीच में एक चबूतरा<sup>१</sup> बनाते हैं, जिस पर चार चौबो से नमगीरा<sup>२</sup> तान देते हैं। सम्राट् सायङ्काल वहाँ पर बैठता है। विशेष व्यक्तियों के अतिरिक्त और कोई वहाँ नहीं जाने पाता। गुलालवार में मिला हुआ एक घेरा वृत्ताकार बनाते हैं, जिसमें बारह हिस्से होते हैं, जिनमें से प्रत्येक ३० गज का होता है। उसके दरवाजे महताबी की ओर खुले रहते हैं। उसमें एक दस गजी चौबी रावटी और चालीस भागो का ज़मींदोज़ (खेमा) सजाते हैं। उस पर बारह बारह गज के बारह शामियानें तान देते हैं। और कुछ कनाते लगाकर उनको एक दूसरे से पृथक् कर देते हैं। इस एकांत-स्थान को इबच्छीख़ाना<sup>३</sup> कहते हैं। हर निवास स्थान में उत्तम प्रकार का एक सेहतख़ाना तैयार करते हैं। सम्राट् ने तहारतख़ाने (पायख़ाना) का नाम सेहतख़ाना रक्खा है। उसके समीप १५० गज लंबा चौड़ा एक गलीमी सरापदी खड़ा करते हैं। इसमें ३६ वर्ग गज वाली १६ कोठरियाँ होती हैं। इसे भी पूर्वोक्तरीति में चौबो और कलशों से अलंकृत करते हैं। उसके बीच में एक हजार फ़रीश बुजुग बारगाह बनाते हैं उसमें ७२ कमरे होते हैं, और १५ गज चौड़ा खुलाव रहता है। उस पर खेमे की तरह एक फ़लंदरी तान देते हैं, जो मोमजामे या किसी हल्की चीज की बनी हुई होती है। वह वर्षा और गरमी में सुख देती है। उसके आसपास चारों ओर बारह बारह गज के ५० शामियाने लगे रहते हैं। इस दौलतख़ानाखास<sup>४</sup> में भी दरवाजे और ताले लगे होते हैं। बड़े बड़े अमीर और सेना के उच्च अधिकारियों को बख़्शी<sup>५</sup> हुक्म लेकर उसमें आने देते हैं। हर महीने के आरम्भ में, सम्राट् के सम्मुख उपस्थित होने के लिए नई आज़्ञा प्राप्त करनी पड़ती है। इस स्थान को बाहर भीतर वेलबूटेदार फ़र्शों से सजाते हैं, जिससे एक विचित्र फुलवाड़ी खिल जाती है। उसके बाहर ३५० गज की दूरी तक रसियाँ खिंची होती हैं, और वे हर तीन गज के फासले पर एक चोब से बाँध दी जाती हैं। उसके आसपास मनुष्य रखवाली करते हैं। यही दीवाने-आम होता है। इसके चारों ओर पूर्वोक्तरीति से

१—फ़तहपुर सीकरी के भग्नावशेषों में अब भी इसका कुछ दृश्य देखा जा सकता है (Ain-i-Akbari, translated by Blochmann, Vol 1, P 46, note, 1873)।

२—वह कपड़ा जो सायबान के रूप में पलंग आदि के ऊपर ताना जाता है।

३—गुप्त-भवन।

४—निवासस्थान चित्र में देखिये।

५—सेना को वेतन बाँटनेवाले-सेना-नायक भी बख़्शी हुआ करते थे, क्योंकि जो भूमि उनको अपनी सेना का वेतन चुकाने के लिए दी जाती थी उसकी वे तहसील वसूल करते थे (Blochmann's, translation of Ain-i-Akbari, P 47, note)।

पहरेदार चौकसी करते हैं। इस आनन्द-निकेतन के अंतिम छोर पर, ६० गज वाली १२ रस्सियों की दूरी पर नक्कारखाना बनाया जाता है और उस मैदान के बीच में आकाश-दिया जलाया जाता है।

दौड़े में, पूर्वलिखित सामान में से कुछ साथ लेचलते हैं। फर्तीले फर्शीश उन खेमो में से एक को उस स्थान पर खड़ा करते हैं, जिसको मीरमंजिल पसन्द करते हैं। दूसरे सामान को आगे लेजाकर लगाते हैं, और सम्राट् के शुभागमन की प्रतीक्षा करते हैं। १०० हाथी, ५०० ऊँट, ४०० छकड़े और १०० कहार इन खेमो की बागबरदारी करते हैं। ५०० सवार, मंसबदार और अहदी इत्यादि तथा ईरानी, तूरानी और हिन्दुस्तानी १००० फर्शीश, ५०० बेलदार, १०० सक्के, ५० बर्दई, खेमे सीनेवाले और मशालची, ३० मोची, और १५० मेहतर सदा सेवा में मंलग्न रहते हैं। प्यादे का मामिक वेतन २४० दाम से १३० दाम तक है।

## आईन १७।

### सेना का पड़ाव<sup>१</sup>।

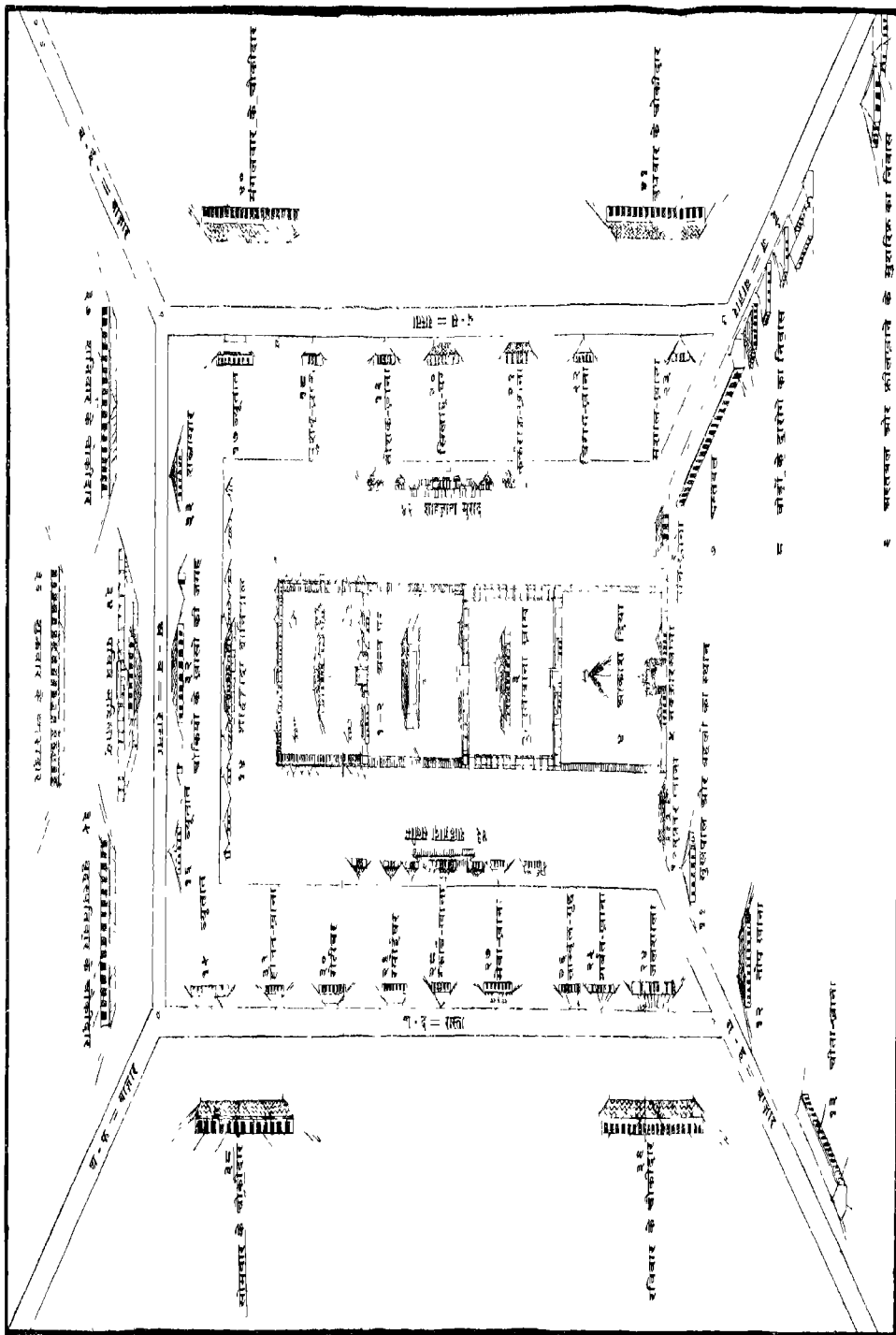
सम्राट् अपनी सेनाओं को एकत्र होने की बहुत कम आज्ञा देता है। अधिकतर विजयिनी सेना, जिस ओर सम्राट्, चढ़ाई करता है उसी तरफ इकट्ठी होजाती है। परन्तु वह अनेक सेनाओं को प्रति पार्श्व प्रदेश के कार्यों में लगाकर भेज देता है, और साथ जाने की आज्ञा नहीं देता। मनुष्यों की अत्यधिक भीड़ और सेनाओं के बहुत बड़े जमघट के कारण, अनेक दिन बीत जाते हैं पर सिपाही एक दूसरे का डरा नहीं ढूँढ पाते, फिर परदेशी की तो चर्चा ही क्या। सम्राट् ने अपनी बुद्धि के प्रकाश से इस सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रशंसनीय मार्ग खोजा है, जिससे जन समूह सुख पाते हैं। एक रम्य भू-भाग पर, जिसकी लंबाई १५३० गज हांती है, पूर्व लेखानुसार रनिवास, दरबारे-आम, दरबारे-खास और नक्कारखाना बनाया जाता है। उसके दाहिने, बाये और पीछे की ओर ३०० गज खुला मैदान छोड़ दिया जाता है। चौकीदारों को छोड़कर, और कोई आदमी उसमें नहीं जा सकता। इसके बीच में १०० गज की दूरी पर केन्द्र स्थल में

१—पानी खींचने वाले, भिखारी।

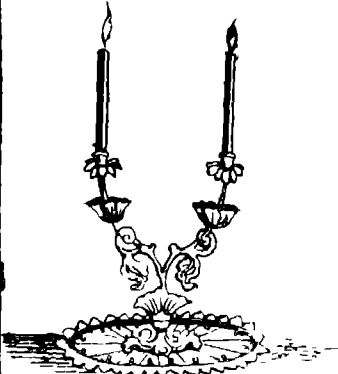
२—शब्दार्थ “सेना के उतरने का आईन।”



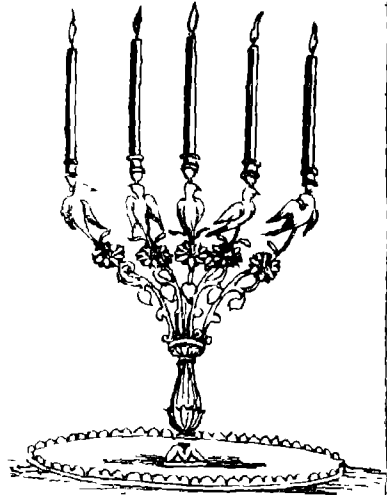
## सेना का पड़ोस



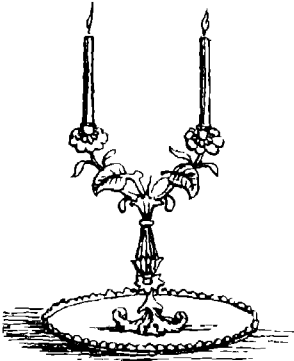
## दीप-प्रदीपन



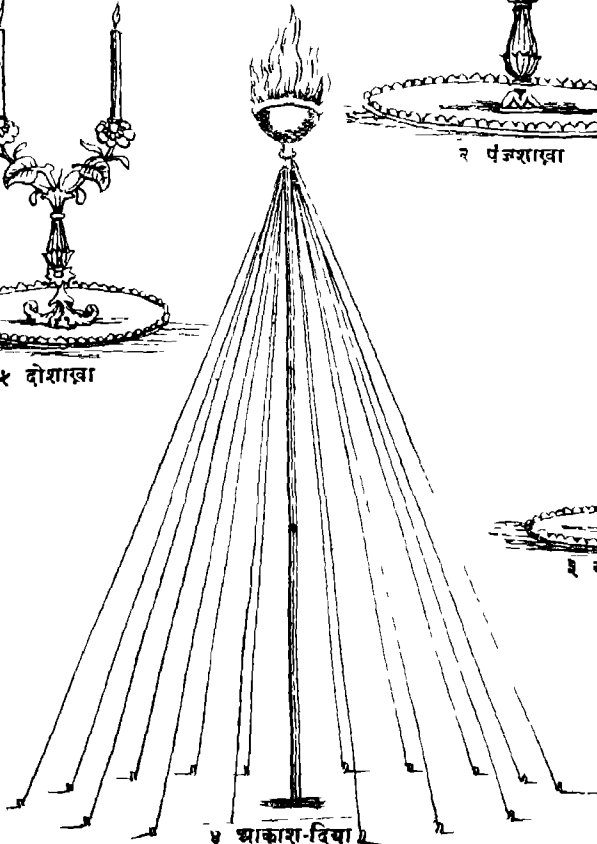
१ दोशाखा



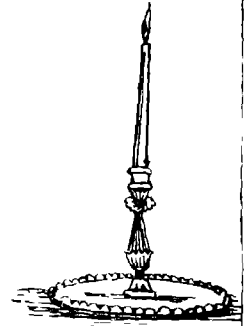
२ पञ्चाखा



४ दोशाखा



४ आकाश-दिवा



३ एकशाखा

मरियममकानी<sup>१</sup>, गुलबदन बेगम<sup>२</sup>, और अन्य पवित्र महिलाएँ तथा शाहजादा दानियाल<sup>३</sup> ठहरते हैं। दाहिनी ओर शाहजादा सुलतानसलीम<sup>४</sup> उतरते हैं, और बाईं ओर शाहजादा शाहमुराद<sup>५</sup>। इन खेमों के पीछे कुछ दूरी पर कार्यालय (दफ्तर और कारखाने) सुव्यवस्थित होते हैं। उनके पीछे ३० गज छोड़कर हर कोने में बाजार सजता है। अमीर लोग, अपने अपने पदों के अनुसार चारों ओर ठहरते हैं। बृहस्पति, शुक्र और शनिवार के पहरेदार मध्यस्थल में, रविवार और सोमवार के दाहिनी ओर, मङ्गल और बुधवार के बाईं तरफ अपने अपने दर्जे के अनुसार रहते हैं।

## आईन १८ । दीप-प्रदीपन ।

बुद्धिमान सम्राट् ज्योति की उपासना को ईश्वर की आराधना एवं परमात्मा की वन्दना समझता है। अन्ध-हृदय मूर्ख उसे ईश-विस्मरण और अग्नि-पूजन ख्याल करता है। पर सूक्ष्मदर्शी ज्ञानी इसे बहुत अच्छी तरह से जानता है कि जब शिष्टों की बाह्य-पूजा योग्यता का लक्षण माना जाता है और उसका न करना अशुभ समझा जाता है, तो यह उत्कृष्ट और श्रेष्ठतम तत्व (अग्नि)—जो मनुष्य-मात्र के जीवन-अस्तित्व और स्थिरता का साधन है—कैसे आराधनीय नहीं है। और ऐसे विषय में अनिष्ट विचारों को क्यों प्रविष्ट होने दिया जाय। शेख शरफुद्दीन मुनैरी<sup>६</sup> ने क्या ही अच्छा कहा है :—“जिस किसी का सूर्य अस्त होजाय, यदि वह दीपक से अनुकूलता न करे, तो क्या करे।” ज्वाला उसी प्रधान ईश्वरीय स्रोत (सूर्य) की आभा है, और उसी पवित्र मणि (सूर्य) का चिह्न है।

१—यह अकबर की माता की उपाधि थी। इसका असली नाम हमीदाबानो बेगम था।

२—गुलबदन बेगम अकबर की बुआ का नाम था, अर्थात् वह हुमायूँ की बहिन थी और खिज़्र ख्वाजा की पत्नी थी।

३—अकबर का छोटा पुत्र, जो उसको अधिक प्रिय था।

४—अकबर का उ्येष्ठ पुत्र, जो पीछे से

जहाँगीर बादशाह के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

५—शाह मुराद अकबर का संकला पुत्र था।

६—मुनैर बिहार में एक क्रूरा है। शेख शरफुद्दीन वही का प्रसिद्ध मुसलमान फकीर था। इसकी फ़ारसी की कृतियों एशियाटिक सोसायटी बंगाल की लायब्रेरी में मौजूद हैं। इसकी मृत्यु पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में हुई थी।

यदि अग्नि और सूर्य न होते तो भोजन और औषधियाँ क्योकर उत्पन्न होती, और नेत्रों की चालुप शक्ति किस काम आती। इस ऐश्वर्य दीप की अग्नि आकाशीय अग्नि है।

दोपहर को भास्कर के ऊपर चढ़ने पर, जब प्रकाश संसार में फैल जाता है, एक सफेद चमकदार गोल पत्थर जिसको हिन्दी में **सूरजक्रान्त**<sup>१</sup> कहते हैं, उसको सूर्य के सामने रखते हैं। और कुछ रुई उसके समीप रख देते हैं। पत्थर के द्वारा गर्मी से उसमें आग लग जाती है। वह आसमानी आग कार्य कुशल व्यक्तियों को सौंप दी जाती है। चिरागची मशालची इसी आग से अपना काम निकालते हैं। जब वर्ष प्रसन्नतापूर्वक समाप्त हो जाता है तो फिर उसी रीति से नई आग ले लेते हैं। वह पात्र, जिसमें इस अग्नि को सुरक्षित रखते हैं, **अग्निगिरि** अथत् “अंगीठी” कहलाता है।

एक और श्वेत रंग का चमकदार पाषाण है, जिसको **चन्द्रक्रान्त**<sup>२</sup> कहने हैं। जब उसको चन्द्रमा के सामने रखते हैं, पानी टपकने लगता है।

जब एक घड़ी दिन शेष रहता है, सम्राट् यदि सवार होता है, तो उतर पड़ता है, और यदि सांता होता है, तो जगाया जाता है। वह अपने राजसी ठाठ को उतार कर एक आंग्र रख देता है और अपने वाह्य (आकृति) को अन्तःकरण के अनुरूप बनाता है। जब विश्वभास्कर अस्ताचल को जाते हैं, सौभाग्यवान सेवक सोने और चादी के बारह दीपदानों में कपूर को बत्तिया जलाकर सम्राट् के समक्ष लाते हैं, और एक उत्तम सुरीला गायक, बत्ती हाथ में लेकर ईश-बन्दना करता है, और अनेक प्रकार से गाता है। अन्त में, सदा राजा की बढ़ती बनी रहने के लिए प्रार्थना करता है, और इसी पर अपना कथन समाप्त करता है। सम्राट् विनय और प्रार्थना को बहुत महत्व देता है, और नवीन प्रकाश की प्राप्ति के लिए याचना करता है।

शमादानों और फानूसों के रूप रंग और भेदों की प्रशंसा करना असंभव है और गुणियों के कृत्यों का वर्णन लेखनी की शक्ति से बाहर है। कुछ दसमनी बनाये गये हैं और कुछ इसमें भी अधिक भारी, साथ ही वे अनेक आकृतियों से विभूषित किये गये हैं। कुछ यकशाखा है, कुछ दोशाखा और कुछ इसमें भी अधिक शाखा वाले हैं, वे आभ्यान्तरिक नेत्रों का भी प्रकाश बढ़ाने वाले हैं। सम्राट् ने एक फानूस<sup>३</sup> ईजाद किया है, जिसकी उँचाई एक इलाही गज है। उसके ऊपरी

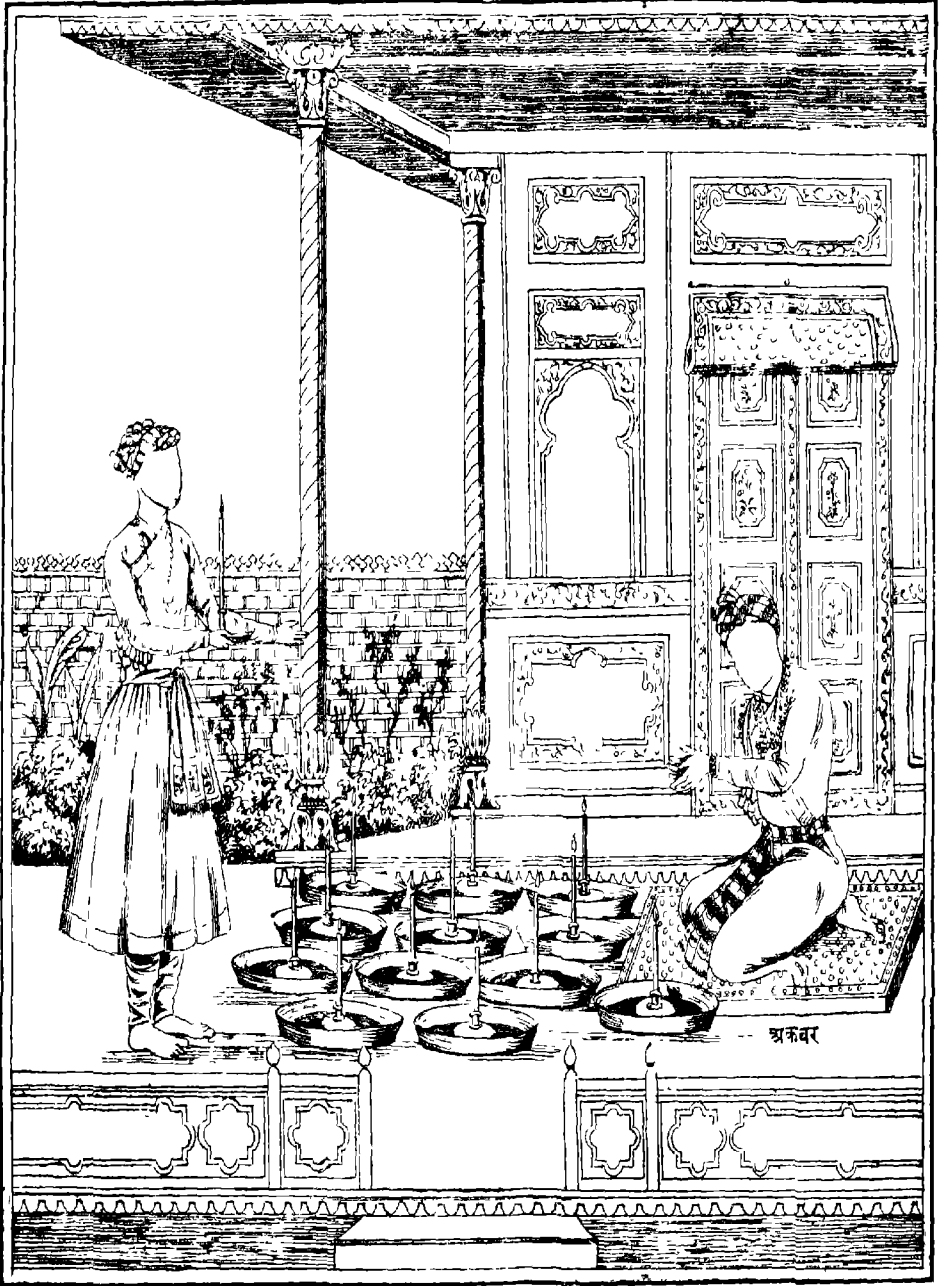
१—शुद्ध शब्द सूर्यकांत है। यह एक प्रकार का स्फटिक या बिलौर है, जिसको यदि सूर्य के सामने रक्खा जाय तो आग निकलने लगती है।

२—शुद्धरूप चन्द्रकांत है। इसे

चन्द्रमणि भी कहते हैं। प्राचीन ग्रंथों में इसका उल्लेख है। परन्तु आजकल यह दुष्प्राप्य सा है।

३—फानूस अरबी भाषा का शब्द है। इसका अर्थ जुगलझोर है। फानूस से रोशनी

## दीप-प्रदीपन





सिरे पर पाँच फानूस लगाये गये हैं। इनमें से हर एक पर एक जानवर की आकृति बनी हुई है। इसमें कुछ काफूरी बत्तियाँ तीन गजों तथा इसमें भी ज्यादा ऊँची लगाई जाती हैं, और सीढ़ी से चढ़कर उनका गुल काटा जाता है। अन्दर और बाहर रोशनी की ज्यादाती के लिए मशालें भी जलाते हैं। चंद्रमास की पहली दृमरी और तीसरी रात को, जबकि प्रकाश बहुत कम होता है, आठ फतीले (पत्तीले) जलाते हैं। चौथी से दसवीं रात तक एक एक कम करते जाते हैं। यहाँ तक कि दसवीं को जब ज्योत्स्ना का आधिक्य होता है, एक ही पत्तीला जलाने पर सन्तोष करते हैं। पन्द्रहवीं रात्रि तक दसवीं की तरह एक ही बत्ती जलाते रहते हैं, और सोलहवीं से उन्नीसवीं तक एक एक बत्ती बढ़ाते जाते हैं। बीसवीं को उन्नीसवीं की तरह रोशनी होती है। इक्कीसवीं और बाइसवीं को एक एक बढ़ाते हैं। तेइसवीं को बाइसवीं की भाँति प्रकाश का प्रबन्ध होता है। चौबीसवीं रात्रि से अन्तिम निशा तक आठ बत्तियाँ जलाते हैं। हर फतीले में एक सेर तेल और आधा सेर रुई इस्तेमाल करते हैं। किसी किसी जगह पर चर्चिदान जलाते हैं और तेल की बत्तियों के स्थान पर चर्ची की बत्तियाँ जलाते हैं। फतीले की छोटाई-बड़ाई पर तेल और रुई के जलने का परिमाण निर्भर है।

इसके अतिरिक्त सम्राट ने दरबार खोजनेवालों के पथप्रदर्शन के लिए एक दीपक जलवाया है। कर्मचारी ४० गज से ज्यादा ऊँचा एक खंभा खड़ा करते हैं और उसको सोलह रसियों से कस देते हैं। उसके ऊपर एक बड़ा फानूस जलाते हैं, उसे आकाश-दिपा कहते हैं। वह बहुत दूर में उजाला देता है। दूढ़ने वाले उसके द्वारा दरबार तक आजाते हैं, और फिर अपने परिचित स्थान पर पहुँच जाते हैं। इस दिये के (प्रचार के) पहले, लोग यात्राओं में कष्ट उठाते थे और निश्चित मार्ग नहीं पाते थे।

इस कारखाने में बहुत से मसबदार, अहदी और सैनिक सेवा करते हैं। प्यादे का मासिक वेतन २४०० दाम से अधिक और ८० दाम से कम नहीं है।

बाहर की चली जाती है, इससे इसका यह नाम पड़ गया। यह पिजड़े के आकार का एक गोल या अठपहल अथवा चौकोर मंडप सा होता था। यह कागज या पतले कपड़े से मड़ा जाता था। इसके अन्दर चिरागादान पर पहले चिराग रखा जाता था, फिर यह ऊपर रख दिया जाता था। बड़ी कंदील

को भी फानूस कहते हैं। शीशे के मृदंग, कमल तथा ग्लास आदि आकृतियों के पात्रों को भी—जिनमें बत्तियाँ जलाई जाती हैं—फानूस कहते हैं। आजकल बड़े बड़े नगरों में फानूस के स्थान में बिजली की बत्तियाँ प्रयुक्त होती हैं।

## आईन १६।

### राज्य के वैभव की सामग्री।

राज्य के तत्व का शम्सा ईश्वरीय तज है, जो मानवीय सामर्थ्याचित-प्रयत्नो के बिना दैवी शक्ति के द्वारा राजाश्र को प्राप्त होता है। बुद्धिमान शासक ऊपरी बनाव चुनाव में चित्त लगाते हैं और उसको ईश्वरीय प्रकाश का मुग्धादघा-टन करना ग्याल करते हैं। उसका कुछ हाल लिखना है और अपने समय की व्यवस्था चित्रित करना है।

१ औरंग—( मिहसन ) नाना प्रकार की आकृतियों के बनाये जाते हैं। उन पर मूल्यवान मणियों तथा सोने और चांदी आदि का जड़ाऊ काम होता है।

२ चत्र—( छत्र ) बहुमूल्य रत्नों में जड़ा जाता है। वे सात से कम नहीं होते।

३ सायबान—यह अंडाकार बना होता है, एक गज लंबा। उसका दस्ता छत्र की तरह का होता है, और उस पर जरबस्त आदि लपेट देते हैं तथा उन्नत मणिमुक्ताओं से उसे जड़ते हैं। फुर्तिल अनुचर उसे लिए रहते हैं, और मूर्य की धूप में लगाते हैं। उसका आफताब-गीर भी कहते हैं।

४ कौकबा—कुछणक दरबार के सामने लटकाए जाते हैं।

ये चांग चीजे वर्तमान सम्राट् को छोड़कर और किसी का वैभव नहीं बढ़ाती हैं, अर्थात् और कोई इन्हे धारण नहीं कर सकता।

५ अलम—( झंडा ) सवारी के समय कोर के साथ पाच से कम नहीं होते हैं। सदा मुकरलात के गिलाफो में रखे जाते हैं। उत्सवों और युद्ध-क्षेत्रों में वे निकालकर फहराये जाते हैं।

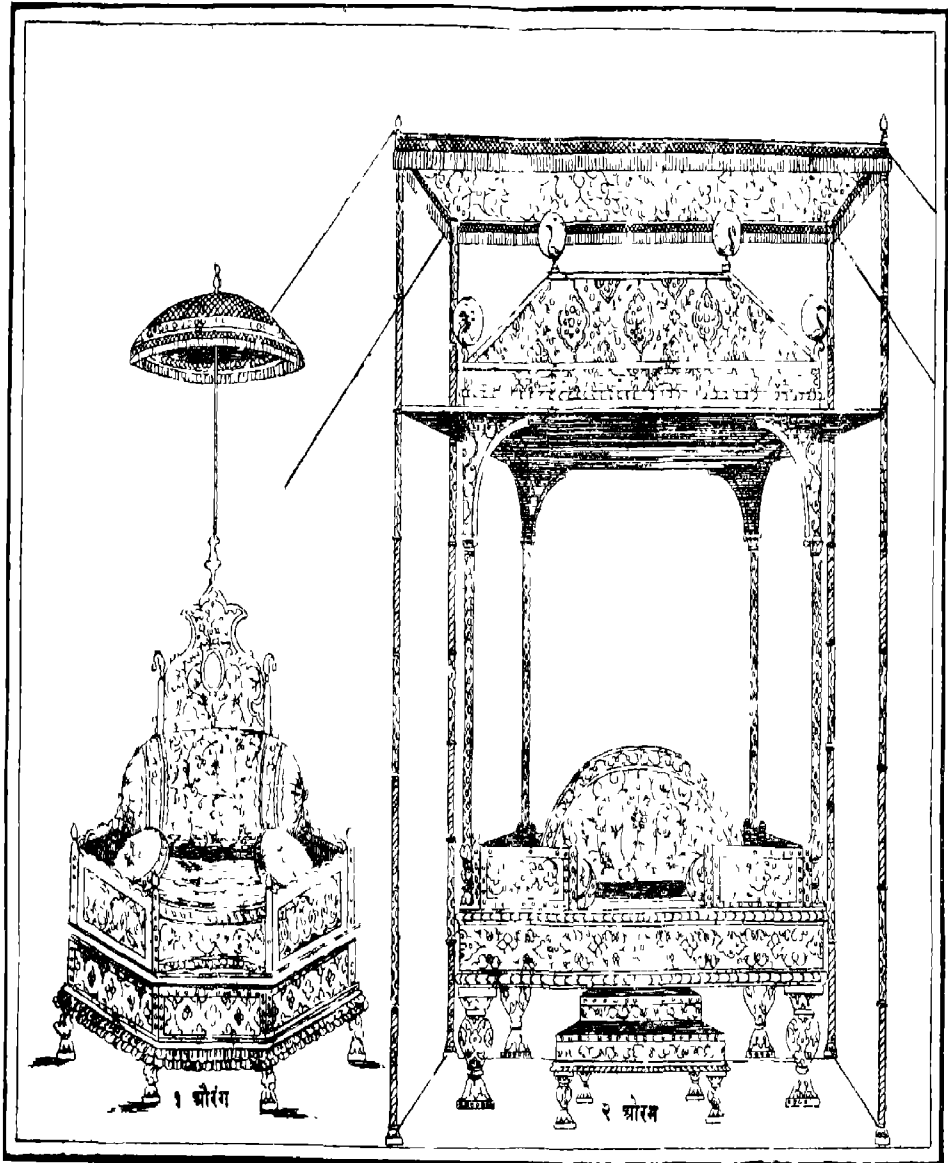
६ चत्र-तौक—एक प्रकार का अलम ही है, परन्तु उससे छोटा होता है। उस पर सुरागाय की पूँछ के गुच्छे लगाते हैं।

१—शम्सा—उस रोशनदान को कहते हैं, जिससे प्रकाश आवे। गुम्बजों तथा कलशों पर के लट्ठुओं को भी शम्सा कहते हैं। पर यहा पर शम्सा से अभिप्राय उस सूर्य के चित्र से है, जो प्रासादों के फाटकों और दीवारों पर लगाया जाता था, और वह रात्रि में झिलमिलाता था।

२—यह तुर्की भाषा का शब्द है। झंडो, शस्त्रों, एवं अन्य वैभव-सामग्री के समूह को कोर कहते हैं। जहां सम्राट् जाता था, कोर भी साथ जाता था।

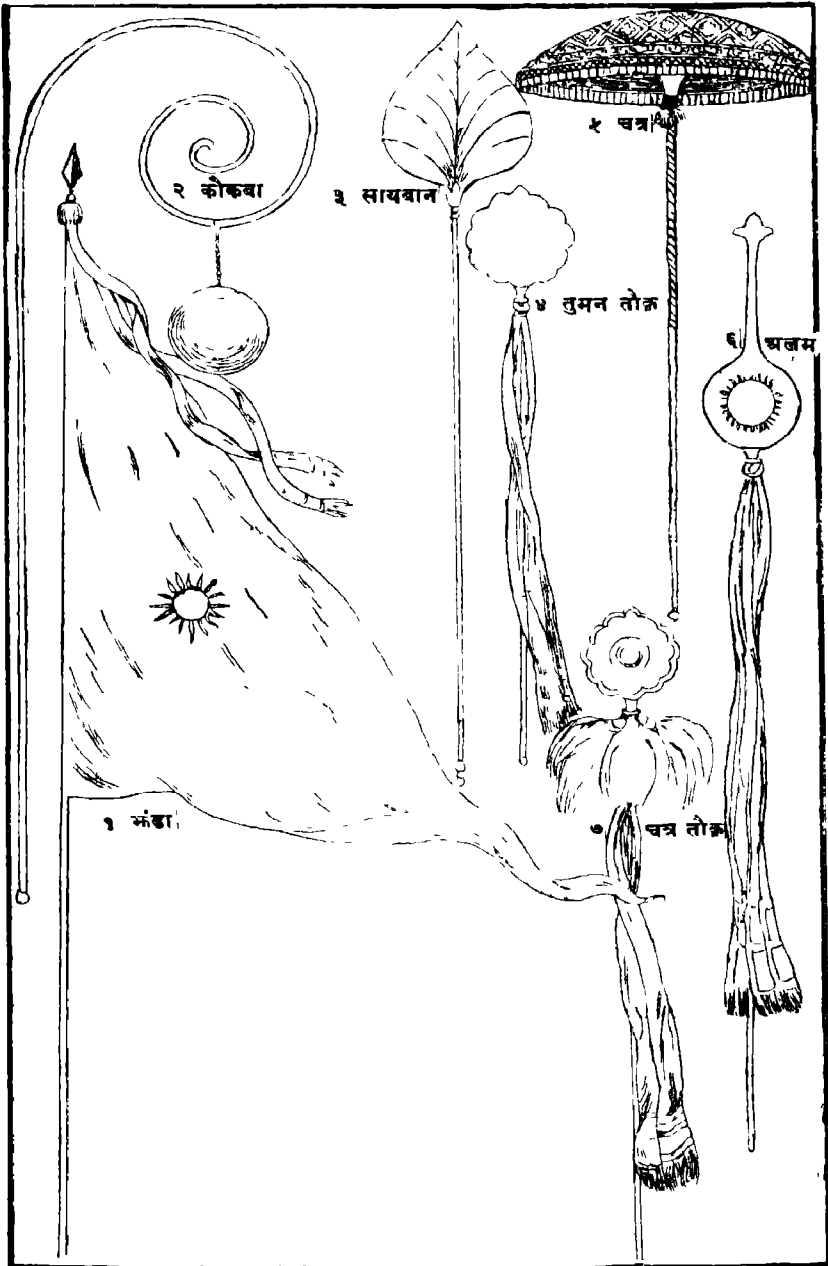
३—चैवर।

## राज्य के वैभव को सामग्री



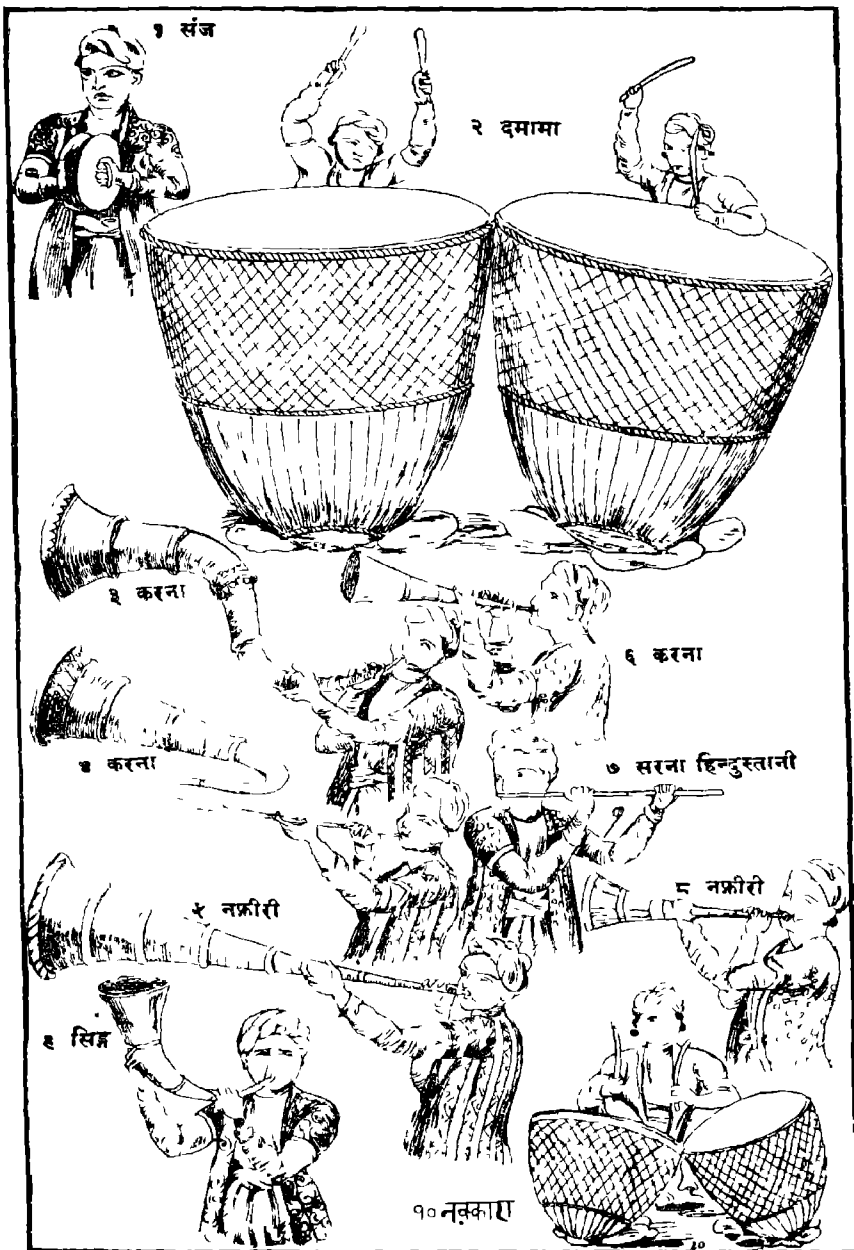


## राज्य के वैभव की सामग्री





## राज्य के वैभव की सामग्री



७ **तुमन-तौक**—चत्र तौक के सदृश होता है, परन्तु उससे कुछ लम्बा। अलमों में इन दोनों का पद उच्चतर माना जाता है। अमीरो तथा शाहजादों के लिए चत्रतौक नियत है।

८ **भट्टा**—यह हिन्दुस्तानी पताका है। कोर में हर प्रकार का एक झंडा होना अनिवार्य है। बड़े अवसरों पर वे अधिक बनाये जाते हैं।

नक्कारखाने में, जो बाजे बजाये जाते हैं, उनका विवरण इस प्रकार है :—

१ **कुवर्गा**—अरबी भाषा में इसे **दमामा** कहते हैं। इनके न्यूनाधिक अठारह जोड़े हैं, जो बड़े जोर के साथ बजते हैं।

२ **नक्कारा**—(नगाडा) कमांवेश २० जोड़े बजते हैं।

३ **दुहुल**—(ढोल) कितनों में से चार बजते हैं।

४ **करना**—सोने, चाँदी और पीतल इत्यादि के बनाये जाते हैं, और चार से कम नहीं बजते हैं।

५ **सरना**—ये ईरानी और हिन्दुस्तानी हैं, और एक साथ नौ तक बजते हैं।

६ **नफीर**—ये ईरानी, फिरंगी और हिन्दुस्तानी होते हैं, उनमें से हर प्रकार के कुछ बजते हैं।

७ **सिंग**—इसे तांबे का, गाय के सींग की शक्ल का बनाते हैं, और एक साथ दो का उपयोग करते हैं।

८ **सज**—(झांझ) तीन जोड़े बजाये जाते हैं।

पहले जब चार घड़ी रात और चार घड़ी दिन रहता था, नौबत बजाई जाती थी। परन्तु अब, पहले आधी रात को, जब सूर्य ऊपर चढ़ने लगता है, नौबत बजती है, और फिर प्रातः काल में। सूर्योदय के एक घड़ी पहले, जादू सा काम करने वाले सुरीले गायक सरना बजाकर सबको सचेत करते और सोने वालों को जगा देते हैं। फिर एक घड़ी के बाद, प्रारम्भिक वादन करते हैं, कुवर्गा को कुछ ऊँचे स्वर में बजाते हैं, और नक्कारे को छोड़ कर करना, नफीर तथा वैभव के अन्य वाद्यों का उपयोग करते हैं। कुछ देर बाद फिर सरना बजाते हैं, और आनन्द प्रदायिनी नफीरियों से ताल दते रहते हैं। जब एक घड़ी और बीत जाती है, नक्कारा बजाने लगते हैं, और सभी गुणी कर्मचारी बड़े उच्च स्वर से राज्य का जय घोष करते हैं। फिर सात चीजें आनन्द बढ़ाती हैं। १, **मुरसली**—यह एक ध्वनि या गति है, जो मुसिल से आरंभ की जाती है। फिर बर्दाश्त पर आजाते



हैं, इसकी भी कई गतियां हैं। इस अवसर पर सभी गुणी बाजे बजाने लगते हैं। इसके बाद भीमे पड़ जाते हैं और ऊँचे स्वर से नीचे स्वर में लाते हैं। २, चार ताल स्वरो का गाना, अर्थात् इस्खलाती, इक्तिदाई, शीराज़ी, क़लन्दरी निगर क़तरा<sup>१</sup> या नख़ुद क़तरा; ये एक घड़ी भर आमोद बढ़ाते हैं। ३, तीसरे नए और पुराने ख़्वारज़्मियो की आलापें, सम्राट् ने दो सौ से अधिक निकाली हैं। छोटे बड़े सभी इनसे आनन्दमग्न होते हैं; विषेप कर जलालशाही, महामीर, करकत और नौरीज़ी से। ४, शादियाने का जोश पर रखना। ५, बमियाने-दौर की गति का बजाना। ६, अज़फ़र की ताल और गति पर ध्यान रखना। यह गति 'राहे-बाला' कहलाती है और पीछे से नीचे स्वर में लाई जाती है। ७, मुसिल ख़्वारज़्मी बजाकर, मुसिली की ओर झुक पड़ते हैं। फिर उमे बन्द करके मंगलात्मक आशीर्वाद के साथ समाप्त करते हैं। इसके बाद नौबत नीचे कर देते हैं और चित्तापहारक वाक्य एवं प्राणप्रवर्द्धक कविताएं पढ़ते हैं; इस प्रकार एक घड़ी और मनोरंजन रहता है। इसके पश्चात् सरना वाले बजाने में जादू का सा काम दिखाते हैं, और एक घड़ी और आनन्द में व्यतीत होती है। इस प्रकार यह मनोरंजक काम समाप्त होता है।

सम्राट् को संगीत-विद्या में ऐसा ज्ञान है, जैसा कि इस कला के विशेषज्ञों को भी नहीं है। उसी प्रकार, वह उसके व्यावहारिक साधनों पर भी अधिकार रखता है, विशेषकर नक्कारा बजाने में।

इस विभाग में मंसबदार, अहदी और दूसरे सैनिक सेवा में संलग्न हैं। प्यादो का मासिक वेतन ३४० दाम में अधिक और ७४ दाम से कम नहीं है।

## आईन २०

### शाही छाप ।

राज्य के तीनों स्तम्भों की आज्ञाएं उस (शाही मोहर) से जारी होती हैं, इतना ही नहीं वरन् काम काज में हर समुदाय के लिए वह अनिवार्य है। शासन के आरम्भ में मौलाना मकसूद मोहरकन, मोहर बनाने का काम करते थे। उन्होंने पहले एक गोल फौलादी टुकड़े के समतल पर, सम्राट् का तथा तैमूरलंग

१—इनमें से अनेक अलापें अस्पष्ट हैं। २—शाखा या गृह, सेना और साम्राज्य विभाग।

तक उसके प्रतिष्ठित पुरुषों के नाम रिका खत में खोदे ; फिर केवल सम्राट् का नाम नस्तालीक़ खत में लिखा । न्याय सम्बन्धी कार्यों के लिए महराबी शक़ल की मोहर<sup>१</sup> बनाई गई, और उसमें सम्राट् के नाम के चारों ओर यह शेर खोद दिया गया :—

रास्ती मूजिबे रज़ाए खुदास्त,  
कस न दीदम कि गुम शुद अज़ रहे-रास्त ।

अर्थात् सत्यता ईश्वर की प्रसन्नता का साधन है ; मैंने किसी को नहीं देखा, जो सन्त्यमार्ग में भटका हो ।

तमकीन ने दूसरे नम्बर की मोहर को नए ढंग से बनाया । उसके बाद मौलाना अलीअहमद देहलवी ने दोनों पर सुधारात्मक अक्षर लिखने में जादूगरी दिखलाई । उनमें से छोटी गोल छाप उज़्जूक<sup>२</sup> कहलाती है, और वह फरमाने सक्ती<sup>३</sup> पर लगाई जाती है । बड़ी मोहर, जिसमें सम्राट् के पुरुषों के नाम अंकित हैं, पहले केवल विदेशी राजाओं के पत्र-व्यवहार पर लगाये जाने के लिए नियत थी, पर आज वह दोनों कामों के लिए इस्तेमाल की जाती है । दूसरे हुक्मों के लिए एक और चौकोर मोहर रहती है, जिस पर “अल्लाहो अकबर जल्ल जलालहू” खुदा हुआ है । राजमहल के उपयोग के लिए एक स्वाम मोहर मनोनीत की गई है । दूसरे फरमानों पर शाही छाप लगाने के लिए एक पृथक् मोहर बनाई गई है, जिस पर कई प्रकार की लिखावट है ।

मोहर खोदने वालों में से कुछ का हाल लिखा जाता है<sup>४</sup> :—

१, मौलाना मक़सूद हिरवी<sup>५</sup>—यह हुमायूँ के सेवकों में से था । यह

१—चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में भी राजकीय मुद्रा का चलन था । कौटिल्य-अर्थशास्त्र में लिखा है :—“अन्दर जाने वाले तथा बाहर जाने वाले सभी माल पर कड़ी निगाह रखी जाय । बिना राजमुद्रा लगा हुआ कोई माल न अन्दर जाने पावे और न बाहर भेजा जावे ( कौटिल्य-अर्थशास्त्र, अन्त पुर का प्रबन्ध, अधिकरण १ ) ।

२—उज़्जूक चगताई भाषा का शब्द है ।

३—इस फ़रमान का वर्णन द्वितीयग्रंथ के ग्यारहवें आइन में है ।

४—यह वाक्य मूल में नहीं है । आवश्यकता समझ कर ब्लाकमैन के भाषान्तरानुसार जोड़ दिया गया है ।

५—पृ० ५२ देखिये । हिरवी अर्थात् हिरात निवासी । हिरात अफ़ग़ानिस्तान में है । यह नगर भी है और एक प्रान्त भी । इसमें काफ़ी सेनाएं रहती हैं, और यह “भारतवर्ष की बंजी” कहलाता है, क्योंकि इस स्थान पर भारत, रूस, मध्य एशिया तथा ईरान को जाने वाले कई मार्ग मिलते हैं । यह उपजाऊ तराई में स्थित है ।

रिका और नस्तालीक़ ख़त अच्छा लिखता था । उसने उस्तुलीब<sup>२</sup>, कुरा<sup>३</sup> और कुछ मिस्तर<sup>४</sup> ऐसे बनाये कि उन्हें देग्वकर गुणी लोग चक्कर में पड़ गये । सम्राट की कृपा दृष्टि से उसने उन्नति की, और इस कला में अलौकिकता प्राप्त की ।

२, तमकीन काख़ुली—उसने अपने घर में ही शिक्षा प्राप्त की और उन्नति की । इस कला को तमकीन ने उस स्थान पर पहुँचाया कि मौ० मकसूद ईर्या करने लगा । इसने नस्तालीक़ लिखने में उसे (मकसूद को) मात दे दिया ।

३, भीरदोस्त काख़ुली—यह अकीक<sup>५</sup> पर रिका और नस्तालीक़ खोदता है । यद्यपि यह मकसूद और तमकीन की समता नहीं कर सकता, तथापि इसका रिका खत नस्तालीक़ से ज्यादा अच्छा होता है । उसको इस कला के परग्वने का भी पर्याप्त ज्ञान है ।

१—रिका और नस्तालीक़—ये लेखों के भेद हैं । खत का अर्थ लेख या लिखावट है ।

२—यह एक यन्त्र था, जिससे पुराने पाश्चात्य ज्योतिषी सूर्य का उच्च और नीचा होना मालूम करते थे । इसके द्वारा वे आकाश सम्बन्धी शुभ और अशुभ लक्षणों को भी जान लेते थे । इसका आविष्कारक दार्शनिक अरस्तू माना जाता है । यूनानी भाषा में उस्तर तराजू को कहते हैं और लाभ सूर्य को । इससे सूर्य सम्बन्धी बातें मालूम की जाती थी, इस लिए यह उस्तु लाँब कहलाता था । यह पीतल का बनता था और इसकी आकृति गोल टिकिया के समान होती थी । उसके अन्दर पीतल के कुछ पत्र से होते थे । उन पर अनेक वृत्त एवं रेखाएँ खिंची रहती थी ।

३—गोला ।

४—पहले इसके तैयार करने की क्रिया इस प्रकार थी । कापीनवीस जितने बड़े कागज़ पर लिखना चाहते थे, उसी के बराबर एक दफती लेते थे । पहले उस पर लम्बाई में दोनों ओर, दफती के किनारों से लगभग एक एक इंच जगह छोड़ कर,

सीधी रेखाएँ खींचते थे । इन लाइनों पर बराबर की दूरी पर दोनों ओर छेद करते थे । उन छेदों में से पहले, दोनों ओर के पहले छेदों में डोरी डालते थे, फिर दूसरों में, फिर तीसरों में, इसी प्रकार सब में । यह ध्यान रखते थे कि आड़ी डोरिया समानान्तर पर रहे । इसे मिस्तर कहते थे । मिस्तर सतर में बना है । सतर पंक्ति या रेखा को कहते हैं । कापीनवीस सादे कागज़ को मिस्तर पर रख कर दबाते थे, जिसमें उसकी डोरियों के चिन्ह कागज़ पर आजाते थे । उन चिन्हों के बन जाने से लेख की पंक्तियाँ टेढ़ी नहीं होने पाती थी (Blochmann's translation of Am, Vol 1 P 52, note 5) । आजकल डिवाइडर आदि के द्वारा मिस्तर बड़ी सरलता से तैयार हो जाता है । दफती और डोरियों की आवश्यकता नहीं पड़ती । यह बहुधा पीले रंग का होता है, और लीथो की छपाई में काम आता है ।

५—एक प्रकार का लाल पत्थर, जिसके नगीने बनते और मोहरे भी खोदी जाती हैं । यह बम्बई, बांदा, खंभात, बगदाद और यमन में पाया जाता है ।

४, मौ० इबराहीम—अकीक लिखने में यह अपने भाई शर्फ अजदी का शागिर्द है, पर काम में अगले उस्तादों से भी बाजी मार ले गया है। इसका रिका और नस्तालीक खत, ख़शनबीसों से अलग नहीं किया जा सकना। राज्य के बहुमूल्य लालों पर शब्द “लालजलाली” इसी का खोदा हुआ है।

५, मौ० अलीअहमद देहलवी—फौलाद पर कोई भी इसके मटश नहीं लिख सका है। सुन्दर लेखन-कला के पागखी इसको इम गुण में अलौकिक मानते हैं। लोग इसकी लिखावट से उस्तादी सीखते हैं। तालीक को छोड़कर दूसरे खतों को इसने ऊँचे दर्जे पर पहुँचा दिया है, परन्तु यह नस्तालीक बहुत ही सुन्दर लिखता है। इसने इस पेशे का अपने पिता शेखहुसैन से सीखा, मौ० मकसूद के काम को देखकर उन्नति की, और अन्त में सब से आगे निकल गया।

## आईन २१।

### फ़र्राश खाना।

आन्तरिक और बाह्य जगत को भूषित करने वाला सम्राट् इस कारखाने को उत्तम निवास, शीतोष्ण के लिए त्राण, वर्षा का रक्त और राज्य का भूषण मानता है। वह उसकी सजावट को शासन का वैभव समझ कर उसकी पूर्ति को ईश्वरोंपासना ख्याल करता है। सम्राट् के अनुभव में इस कारखाने की स्थिति सुधरी और सामग्री के परिमाण एवं उत्तमता में उन्नति हुई तथा नई नई वज्रं और तर्जें निकाली गईं। मैं उसका कुछ हाल लिखता हूँ और अन्वेषकों के लिए आदर्श उपस्थित करता हूँ।<sup>१</sup>

१ बारगाह<sup>२</sup>—जब वह विशाल होती है, तो दस हजार मनुष्य उसकी

१—वह व्यक्ति जिसकी लिखावट बढ़िया हो।

२—“आईने-अकबरी में जो कुछ लिखा है, उसे आजकल लोग अतिशयोक्ति समझते हैं। पर उस समय यूरोप के जो यात्री भारत में आये थे, उनके लिखे हुये विवरणों से भी आईने-अकबरी के लेखों की पुष्टि होती है। भला उसकी वह शोभा कागज़ी

सजावट में क्योकर आसक्तता है” (देखिये दरबारे-अकबरी)।

३—बारगाह फ़ारसी भाषा का शब्द है। बार का अर्थ प्रतिष्ठा है और गाह स्थान को कहते हैं। बारगाह से आशय प्रतिष्ठा की जगह अर्थात् कचहरी का स्थान, राजभवन, किसी प्रतिष्ठित का प्रासाद और शाही खेमे से है।

छाया में बैठ सकते हैं। एक हजार फुर्तीले फर्राश, एक सप्ताह में, ऊपर उठाने वाले यन्त्रों की सहायता से खड़ा करते हैं। वह अधिकतर दो सरगाओं की बनाई जाती है और लोहे की चादरो से दृढ़ की जाती है। जब सादी बारगाह के बनाने में, जिसमें जरबफ्त मखमल, और सोना नहीं लगाते हैं, दस हजार रुपए और इसमें भी अधिक व्यय होते हैं तो फिर कामदार बारगाह की लागत का तो कुछ ठिकाना ही नहीं है। इसके आधार पर दूसरों की लागत का अनुमान किया जा सकता है।

२ **चोबी-रावटी**—(काठ की रावटी) दस खंभों पर खड़ी की जाती है। प्रत्येक खंभे का कुछ भाग जमीन में गाड़ा जाता है। सब तो उँचाई में बराबर होते हैं, परन्तु दो खंभे, जिन पर कड़ी पड़ती है, कुछ अधिक ऊँचे रहते हैं। खंभों को, ऊपर नीचे दामा लगाकर दृढ़ करते हैं और कुछ तड़के, बँडेरी तथा दामो पर डालते हैं। फिर सबको नरमादा के तरीके पर लोह की चादरो से जोड़ देते हैं। दीवारों और छतों नरमल की चटाइयों की बनाते हैं, और एक या दो दरवाजे रखते हैं। नीचे के दासों के अनुसार चबूतरा बनाते हैं। उसको अन्दर जरबफ्त और मखमल में और बाहर बानात से सजाते हैं, और रेशमी निवाड़ से उसमें कमर-बन्द लगाते हैं।

३ **दो आशियाना मंज़िल**—(दो खंडा मकान) इसे अट्टारह खंभों पर खड़ा करते हैं। ये खंभे छे छे गज के होते हैं। उनको तख्तों से पाट देते हैं। उसके ऊपर चार चार हाथ के खंभे खड़े कर के नरमादा के तरीके पर जोड़ देते हैं, वालाखाना तैयार हो जाता है। यह बाहर और भीतर चोबी-रावटी की तरह सजाया जाता है। यात्राओं में यह सम्राट का शयनागार होता है। यह पवित्र गृह उम ज्ञानी मनुष्य के सदृश है, जो लोक और परलोक दोनों स्थानों के कर्तव्यों को पालन करता हो। इस भवन का एक खंड एकाग्रता के भाव का उत्पादक है, और दूसरा विचित्र सृष्टि के बाहुल्य का प्रदर्शक। ईश्वरोपासना इसी दिव्य मन्दिर में होती है, और श्रेष्ठ सूर्य की आराधना का श्रीगणेश यही से होता है। इसके बाद राजभवन को बेगमें सम्राट के दर्शन लाभ के लिए उपस्थित होती

१—“दरवाजे जो चोबी को लगाकर बनाये जायें” (तारीख हिन्दुस्तान, जिल्द पंचुम, पृ० ६३६, ले० मो० जकाउल्ला)। ब्लौकमैन ने सरगा का अर्थ Door poles अर्थात् दरवाजे के खंभे किया है

(Blochmann's translation of Ain-i-Akbari, P 53)। “दरबारे-अकबरी” में बारगाह के प्रसंग में “खंभों पर दो कढ़ियों” का उल्लेख है। सरगा को विशेष रूप से समझने के लिए चित्र देखिये।

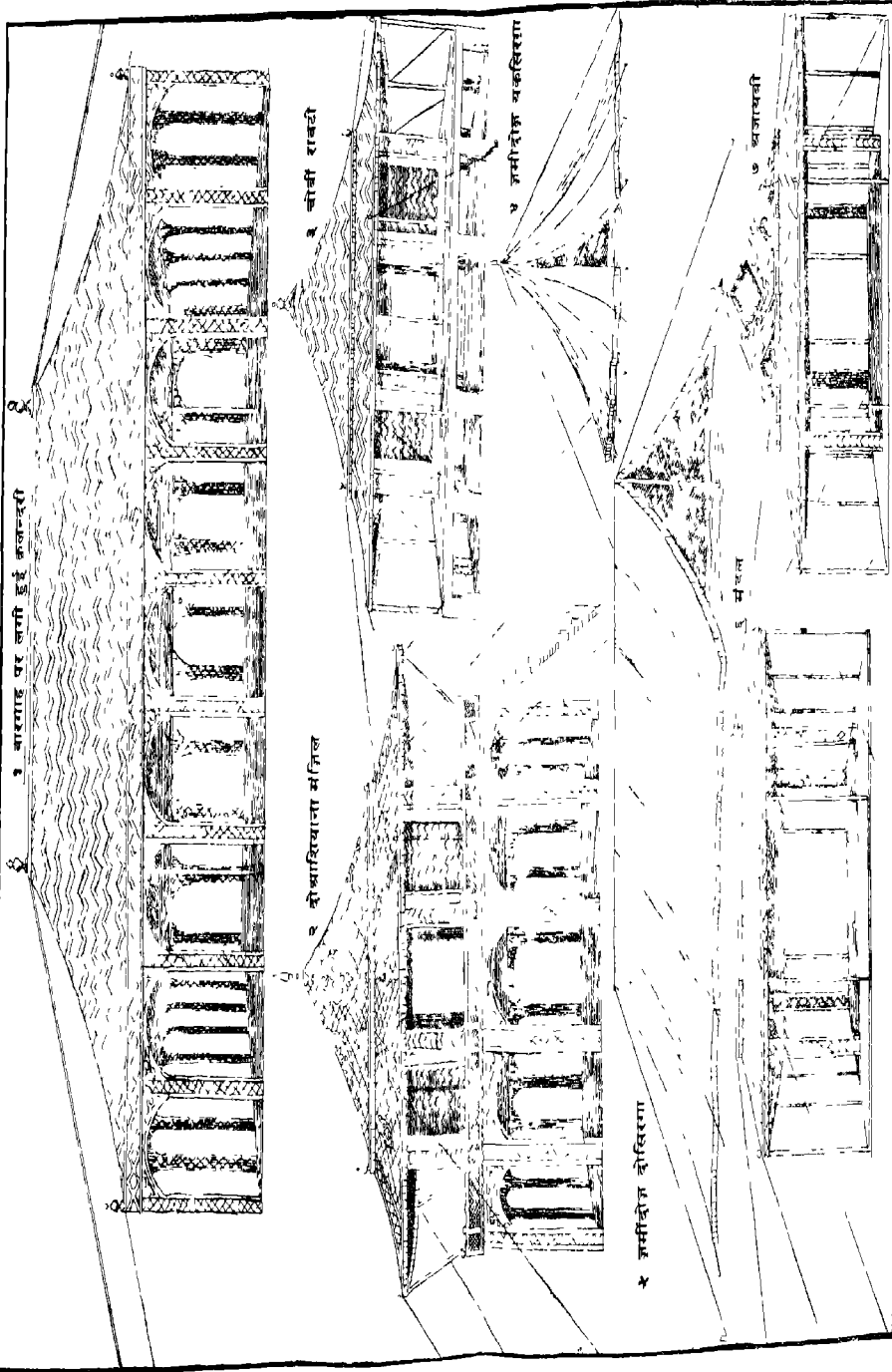


# फर्राश-खाना

१ बारगाह पर लगी हुई कलन्दरी

२

३



२ दोआशियाना मंजिल

३ कोबी राबटी

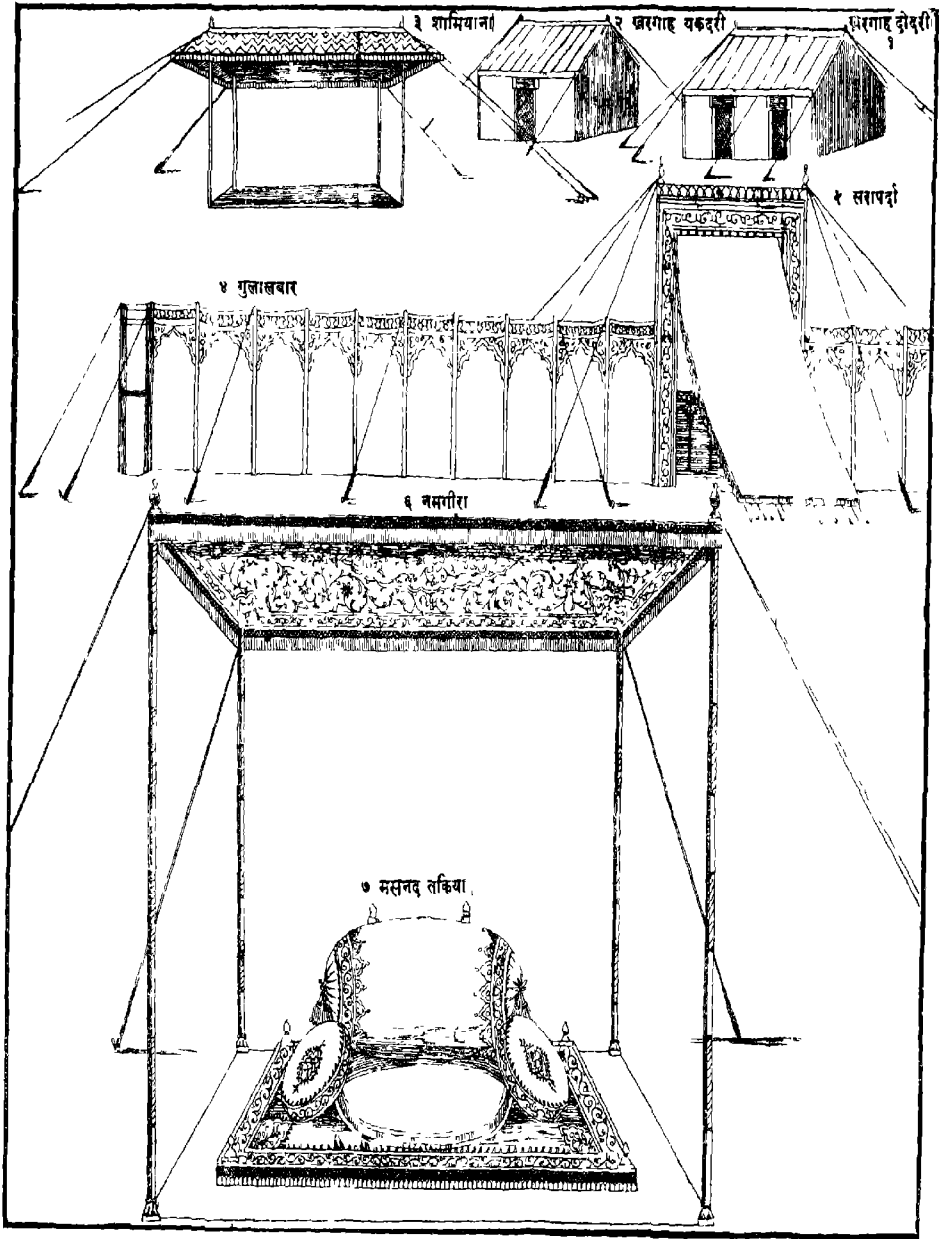
४ जमींदार अकसरगा

५ जमींदार दोसरगा

६ मंजिल

७ अजायबी

# फ़रशी-ख़ाना







हैं, और फिर बाहर के लोग प्रणाम द्वारा कृतकृत्य होते हैं। यात्राभो मे इसी स्थान मे बैठकर सम्राट् बहुधा निरीक्षण-कार्य करता है। इसे **फरीखा** कहते है।

४. **जमीनदोज़**—एक प्रकार का खेमा है, जो नाना प्रकार के आकारों का बनाया जाता है। यह एक या दो कडियों का होता है। बीच मे पट्टे डालकर कोठे अलग अलग कर देते हैं।

५. **अजायबी**—नौ शामियाने चार खम्भो पर तानते है, पांच चौकोन और चार शूंडाकार। केवल एक कोठे वाली भी बनाते है, और एक खम्भा खड़ा कर देते हैं।

६. **मंडल**—पांच शामियाने मिले रहते हैं, जो चार खम्भो पर खड़े किये जाते है। कभी कभी चार को लटका देते है, खिलवतखाना (एकात स्थान) तैयार हो जाता है। कभी चारो शामियानो को ऊपर खींच देते है और कभी एक ही ओर को खोलते हैं, और आनन्द मनाते है।

७. **आठ-खंभा**—सत्तरह शामियाने अलग अलग या मिलाकर लगाये जाते हैं, और आठ खंभो पर खड़े किये जाते है।

८. **खरगाह**—इसे कई प्रकार की बनाते है। कभी एक दर की और कभी दो दर की।

९. **शामियाना**—तरह तरह के होते है, परन्तु बारह बर्गगज से ज्यादा बड़ा शामियाना नहीं बनाते है।

१०. **कलन्दरी**—इसका वर्णन पहले हो चुका है।

११. **सरा-परदा**—पूर्वकाल मे इसे मोटी दुसूती से बनाते थे। सम्राट् ने इसको गलीम का तैयार कराया है, जो ठाठ भी बढ़ाता है और अधिक लाभदायक भी है।

१२. **गुलालबार**—काठ का सरा-परदा है, खर-गाह की दीवार के समान। यह चमड़े के तसमो से कसा जाता है। कैम्प उखाड़ते समय यह सिमट आता है। इसमे लाल कपड़ा लगाया जाता है, और निवाड के कमरबन्द बांधे जाते है।

१३. **गलीम**—सम्राट् ने विलक्षण प्रकार के बनवाये हैं, और चित्ताकर्षक गाठें लगवाई हैं। उसने इस कार्य पर अनुभवी कर्मचारियो को नियुक्त किया है

और बहुत उत्तम काम होने लगा है। लोग ईरानी और तूरानी गलीमों को भूल गये हैं, यद्यपि व्यापारी उनको अब भी गोशकान<sup>१</sup>, खोजिस्तान, किरमान सब्ज-वार आदि स्थानों से हर साल लाते हैं। हर प्रकार के कालीन बुनने वालों ने यहां अपने घर बना लिये हैं और खूब लाभ उठा रहे हैं। गलीम हर शहर में तैयार होते हैं, पर विशेषतया आगरा फतहपुर और लाहौर में वे बहुत बढ़िया बनते हैं। खास शाही कारखाने में एक अपूर्व गलीम—जो २० गज ७ तस्सूज लम्बा और ६ गज ११<sup>१</sup>/<sub>२</sub> तस्सूज चौड़ा है—बुना गया है। उस पर १८१० रु० व्यय हुये हैं। इस कला के विशेषज्ञों ने इसका मूल्य २७२५ रूपए आंका है।

१४ तकिया-नमद—विदेश (काबुल और फारस) से लाते हैं, इस देश में भी बहुत बनते हैं।

जाजम, शनरंजी, बलची और अद्भुत चटाइयों का हाल—जो रेशम की बुनी हुई मालूम होती हैं—क्या लिखूँ, क्योंकि इनकी कथा बहुत लम्बी है।

## आईन २२।

### आवदार खाना<sup>२</sup>।

सम्राट् जीवन के इस स्रोत को 'अमृत' कहता है, और उसने उसकी रक्षा का भार संतुष्ट-हृदय योग्य कर्मचारियों को सौंपा है। वह अधिक पानी नहीं पीता है, और इस विषय में विशेष ध्यान भी रखता है। घर और यात्राओं में वह गंगा-जल पीता है। कुछ भाग्यवान् विश्वासपात्र व्यक्ति गंगा के तट पर रहा करते हैं, वे सावधानी से जल भरते हैं और घड़ों पर मोहर लगाकर भेज देते हैं। जब सम्राट् का दरबार राजधानी आगरा और फतहपुर में होता था, कस्बा सोरो से जल लाया जाता था। पर आज के दिन जबकि पंजाब सम्राट् के चरणों का विश्राम-स्थल बना हुआ है<sup>३</sup>, हरिद्वार से जल आता है। भोजन बनाने में यमुना चनाब और वर्षा का जल खर्च किया जाता है। इस पानी में कुछ गंगा-जल भी

१—गोशकान या जोशकान, इराक में एक क़स्बा है। खोजिस्तान, फारस का एक सूबा है। किरमान, फारस का एक शहर या प्रान्त है। सब्जवार, फारस के प्रान्त खुरासान का एक नगर है।

२—वह स्थान, जिसमें जल का प्रबन्ध हो।

३—अर्थात् पंजाब में रहता है। यह घटना १६६६ ई० की है। १६८६ ई० से फतहपुर राजधानी नहीं रहा था। उस समय से सम्राट् बहुधा पंजाब में रहा करता था।

मिला देते हैं। सैर और शिकार में, वह इस काम के लिए सूक्ष्मदर्शी अनुभवो व्यक्ति नियत करता है, और दूरदर्शिता से वे लोग जलों की जाँच करते हैं।

सम्राट् ने अपनी दूरदर्शी बुद्धि के प्रकाश से शोरे को—जो बन्दूक के मसाले में आग लगाता है—पानी को ठंडा करने का साधन बनाया। और छोटे बड़े हपित होगये। शोरा-मिट्टी एक मिट्टी होती है। उसको एक छेददार घड़े में भर देते हैं और उस पर कुछ पानी छिड़क देते हैं। टपके हुये पानी को औटा लेते हैं, और उसको मिट्टी से पृथक् करके जमा लेते हैं। फिर एक सेर पानी को, जस्ते, चाँदी या ऐसी ही धातु के बर्तन में भरते हैं, और उसके मुँह को कसकर बाँध देते हैं, एक दूसरे घड़े में ढाई सेर शोरा और पाँच सेर पानी मिलाते हैं, और मुँह बाँधे बर्तन को उसमें डालकर आधी घड़ी तक हिलाते हैं, पानी बहुत ठंडा होजाता है। शोरा एक रूप का पौन मन से चार मन तक मिलता है।

सन् ३० इलाही<sup>२</sup> में, जब सम्राट् पंजाब (लाहोर) में ठहरा, तो हिम और बर्फ का रिवाज हो गया। लाहोर से पैतालीस कोस की दूरी पर एक कम्बा पनहार<sup>३</sup> है, उसके निकटस्थ उत्तरी पहाड़ में, डाक चौकी के द्वारा, बहलो तथा कटांगे पर जल और स्थल मार्ग से, बर्फ<sup>४</sup> लाई जाती है। व्यापारी लाभ प्राप्त करने हैं और छोटे बड़े आनन्दित होते हैं। वह रूप का दो तीन सेर बिकती है। सबमें अधिक

१—१२ मिनट का समय।

२—१५८६ ई०

३—यह पठान या पठानकोट है (Bloch-mann's trans P 616)।

४—भाप के अत्यन्त सूक्ष्म अणु, जो हवा में मिलकर ठंडक पाने पर भारी होकर ज़मीन पर आकर जम जाते हैं। उस जमी हुई तह को बर्फ़ कहते हैं। गिरते समय बर्फ़ रुई की तरह मुलायम होती है। ज़मीन पर जमने के पहले यदि एकत्र करके कोई उसका ठोस गोला बनाना चाहे तो बना सकता है। जमने पर बर्फ़ बिल्कुल सफ़ेद हो जाती है। जमे हुये पानी की बर्फ़ पारदर्शी होती है। पहाड़ों पर बर्फ़ गिरती है किन्तु अधिक सर्दी पड़ने पर समुद्र आदि का जल भी जम कर बर्फ़ बन जाता है। जब जल का तापमान ३२°

होता है तो वह जमने लगता है। ज्यों ज्यों पानी जमता जाता है, उसका आकार बढ़ता जाता है। पूर्णतया जम जाने पर उसके आकार में  $\frac{1}{9}$  अंश की अभिवृद्धि हो जाती है। तापमान ४ अंश होने तक पानी सिमटता रहता और नीचे बैठता रहता है, किन्तु चार अंश से भी कम होने पर वह हल्का होने लगता और पानी पर तैरने लगता है। साधारण पानी में तैरती हुई बर्फ़ का  $\frac{1}{10}$  भाग पानी की सतह के नीचे और  $\frac{9}{10}$  भाग पानी के ऊपर होता है (Encyclopædia Britannica, Vol 12, P 39, 1929)।

वैद्यक और संस्कृत साहित्य के ग्रंथों में बर्फ़ के उपयोग का स्पष्ट उल्लेख है। कुमारसंभव में लिखा है कि पिता के घर

सुविधा नाब पर लाने मे है, उसके बाद बहल पर और फिर कहार पर। पहाड़ी लोग, उसके गट्टे बाँध कर उपत्यका में लाते और ढेर के ढेर बेचते हैं। प्रति ढेर ३० मेर मे अधिक और २५ मेर से कम नहीं होता। उसका मूल्य पाँच दाम लेते हैं। जब बर्फ ज्यादा दूर हो जाती है, तो एक ढेर चौबीस दाम सत्रह जीतल को बेचते हैं। और जब दूरी सामान्य होती है तो ग्राहको को पन्द्रह दाम देने पड़ते हैं। बर्फ ढोने के लिए दस नावें नियत हैं, उनमे से एक नित्य राजधानी मे

में बर्फीले चट्टानों के ऊपर लेटने पर भी स्मरज्वर तप्ता पार्वती शान्ति नहीं पाती थी ( न जातु बाला लभतेस्मनिवृत्ति तुषार संघात शिला तलेष्वपि—कुमारसंभव, ५-१५ )। इसी प्रकार चरक में कहा है कि अति मदिरा पान के दाह से जो रोगी पीड़ित हो उसके शरीर पर सोने, चाँदी और काँसे के बर्तनों में ठंढा पानी भर कर लगाये, और चमड़े की पतली थैलियों में बर्फ भर कर टांग दे, जिससे उनसे संचारित होकर वायु रोगी के लगे अथवा उसके शरीर को उन थैलियों से स्पर्श करावे ( हेमराजत कास्यानां पात्राणां शीत वारिभिः, पूर्णानां हिम पूर्णानां दतीनां पवनाहताः। चरक संहिता, चिकित्सा-स्थान, अध्याय २४, श्लोक १५२ )। ऐसे ही सुश्रुत में बतलाया है कि मद्जनित दुःख से युक्त पुरुष के लिए सारे शरीर में चन्दन का पतला लेप, चन्द्रमा की किरणें और बर्फ का शीतल जल लाभदायक है ( शीत विधान भतमूर्ध्वमहं प्रवचये, दाह प्रशान्तकरमृद्धिमतां नराणाम्, तत्रादिसो मलयजेन हितप्रदेह-श्चन्द्राशुहार तुहिनोदक शीतलेन—सुश्रुत-संहिता, उत्तर तंत्र, अ० ४७, श्लोक ५५ )।

उपर्युक्त प्रमाणों से चिकित्सा के रूप में बर्फ का उपयोग होना सिद्ध है। पर्वतों की निकटवर्ती जातियाँ ग्रीष्म ऋतु में बर्फ का पानी प्राचीनकाल से पीती चली आती हैं। इतना ही नहीं उपत्यकाओं के अधिवासी ताज़े बर्फ के साथ गुड़ बड़े चाव से

खाते हैं। उन्हीं के संसर्ग से कदाचित् बर्फ के पानी पीने का शनैः शनैः रिवाज हो गया। पहाड़ी बर्फ के चलन के साथ साथ कृत्रिम बर्फ बनाने के भी तरीक़े निकाले गये। उन तरीक़ों से भारतवर्ष के अनेक स्थानों में पहले बर्फ बनाई जाती थी। उनमे से एक तरीक़े का—जोकि कानपुर के पास भजपुरवा में बर्फ बनाने में इस्तेमाल किया जाता था—उल्लेख किया जाता है। शिशिर ऋतु में भजपुरवा के नाले के इधर उधर खेतों में क्यारियां बनाते थे और उन पर प्याल बिछा देते थे। खेत के चारों कोनों पर बहुत बड़े बड़े मिट्टी के मटके पानी से लबालब भर देते थे। जिस दिन पाला या तुषार पड़ने की संभावना होती थी, उस दिन सैकड़ों मिट्टी के खूब पके हुये बड़े बड़े प्याले सीधी पक्रियों में पुराल के ऊपर जमा देते थे। जिस समय पाला गिरने को होता था, उसके कुछ ही पहिले उन प्यालों को मटकों के पानी से भर देते थे। पाले के संयोग से प्यालों का पानी सरलता से जम जाता था। सूर्योदय के पहले ही प्याले एकत्र करलिये जाते थे। इस बर्फ के सुरक्षित रखने का तरीक़ा यह था। एक कुआ खोदते थे, किन्तु उतनाही गहरा कि उसमें पानी नहीं निकलने पाता था। उसके अन्दर एक मचान बनाते थे। उस पर पयार आदि बिछा देते थे। प्यालों की बर्फ को लोहे की अंकुरी आदि से निकाल कर मचान पर जमा देते थे। फिर उसे

पहुँचती है। हर नाव पर चार मल्लाह रहते हैं। बर्फ का प्रत्येक पिण्ड बारह से छे सेर तक रह जाता है, क्योंकि गर्मी और सर्दी से उनमें अन्तर पड़ जाता है। एक बहल दो गट्टे लाती है। रास्ते में चौदह चौकी पड़ती है। एक हाथी से भी काम लिया जाता है। नित्य प्रति बारह टुकड़े आते हैं, उनमें से प्रत्येक तौल में दस सेर से चार सेर तक होता है। इस प्रकार से लाई हुई एक सेर बर्फ का मूल्य जाड़े में ३ दाम २१ जीतल, वर्षा ऋतु में १४ दाम २० जीतल और मध्यवर्ती समय में ६ दाम २१॥ जीतल होता है। साधारणतया वह ५ दाम १५<sup>१</sup>/<sub>२</sub> जीतल को बिकती है। यदि बर्फ कहारो पर लाई जाती है तो चौदह चौकियों के लिए अट्टाईस कहारो की आवश्यकता होती है। वे प्रति दिन एक गट्टा लाते हैं, जिसमें चार टुकड़े होते हैं। प्रारम्भ में एक सेर बर्फ ५ दाम १६॥ जीतल को, बीच में १३ दाम २<sup>१</sup>/<sub>२</sub> जीतल को और अन्त में १६ दाम १५<sup>५</sup>/<sub>८</sub> जीतल को मिलती है और सामान्यतः ८<sup>७</sup>/<sub>८</sub> जीतल को। जन साधारण केवल ग्रीष्म ऋतु में बर्फ का उपयोग करते हैं, पर बड़े आदमी साल भर उससे आनन्द भागते हैं।

## आईन २३।

### पाकशाला ।

सम्राट् ने इस कार्य में भी दूरदर्शिताओं से काम लिया और उत्तम नियम निर्धारित किये। वह इस पर कैसा ध्यान न देता, क्योंकि मानवीय स्वभाव का कूट कर इकट्ठा कर देते, उसका थका वध है। वहाँ कुआँ से ताज़ा पानी खींच कर जाता था। कुएँ का मुँह छोटा रहता था। गरमी में उसे निकाल कर बेचते थे। इस प्रकार बनाई हुई बर्फ पुराने लोगों के कथनानुसार अधिक स्वादिष्ट और गुणकारी थी। इस बर्फ के साथ साथ पहाड़ों से भी बर्फ आती थी, और वह बड़े बड़े शहरों में बिकती थी। धीरे धीरे मशीनरी का प्रचार हुआ और मशीनों के द्वारा बर्फ बनने लगी। अद्य प्रायः समस्त देश के बड़े बड़े शहरों में मशीनों की ही बनी हुई बर्फ हस्तेमाल की जाती है। छोटे कस्बों और देहानों में बर्फ का बिल्कुल चलन नहीं है। वहाँ कुआँ से ताज़ा पानी खींच कर पिया जाता है। कितने ही लोग दूसरे तरीकों से पानी ठंडा करते हैं और उसको पीने हैं। इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका (Encyclopaedia Britannica vol 12, P 39, 1929) में लिखा है कि भारतवर्ष में शुद्ध ठंडी रात्रियों में पानी जमाया जाता है। पानी को एक छेदद्वार बर्तन (शाटी या चटी) में भर देते हैं। उसके छिद्रों से जो भाप उठती है वह पानी की काफ़ी गर्मी खींच लेती है।

१—जहाँ घोड़े या बैल बदले जाते थे, चौकी कहलाती थी।

सामंजस्य, शारीरिक शक्तिमत्ता, आध्यात्मिक और आधिभौतिक प्रसादों की उपलब्धि का सामर्थ्य तथा लौकिक और पारलौकिक सौभाग्य की प्राप्ति, उपयुक्त आहार और यथार्थ विचार पर निर्भर है। आहार के विषय में मनुष्य पशु के समान है, परन्तु इन बातों के ज्ञान से वह उससे पृथक् हो जाता और योग्यता के गुण से भूषित होजाता है। यदि सम्राट् में विशाल साहस, उत्कृष्ट बुद्धि और विश्वव्यापी दयालुता का भाव न होता तो वह वैराग्य-पथ ग्रहण कर लेता और भोजन, विश्राम भूल जाता। आज के दिन, जब कि उसको दोनों समुदायो ( गृहस्थो और विरक्तो ) का नेतृत्व प्राप्त है, उसकी मोती बरसाने वाली जबान पर यह बात कभी नहीं आती कि “आज कौनसा भोजन तैयार किया गया है ?” रात दिन में वह केवल एक बार भोजन करता है, और वृत्त हाने के पहले ही हाथ खींच लेता है। फिर इस भोजन का भी कोई समय नियत नहीं है। कर्मचारी इस प्रकार की तैयारी रखते हैं, कि आज्ञा पाने के पश्चात् केवल ढाई घड़ी में सौ थालियाँ परोस देते हैं। राजप्रसाद की महिलाओं की जो खूराक नियत है, उसका वितरण प्रातः काल से आरम्भ हो जाता है, और बहुधा रात तक भोजन बंटता रहता है।

१—महाभारत काल में भोजन के पदार्थों में चावल, गेहूँ, ज्वार और सत्तू आदि मुख्य थे। कितने ही लोग मांस और चावल मिलाकर भी खाते थे। उद्योगपर्व की विदुर नीति में एक श्लोक है—  
आढ्यानां मांस परम मध्यानां गोरसोत्तरम्,  
तैलोत्तरं द्रिदाया भोजनं भरतर्षभ ।  
अर्थात् धनवान् लोग बहुधा ऐसा भोजन करते हैं जिसमें मांस विशेष होता है, मध्यम स्थिति के लोगों की खूराक में दूध, घी आदि गोरस की प्रधानता रहती है, और गरीब आदिमियों के आहार में तेल की अधिकता रहती है। पर इसका यह आशय नहीं है कि सभी धनवान् मांस खाते थे। महाभारत में सत्तू की प्रशंसा अनेक स्थलों पर है। शक्र में मिलाकर सत्तू खाये जाते थे। उस समय गोरस का चलन बहुत था। दूध घी बहुधा गोओं का ही खाया जाता था। भैंस का दूध बर्तोजाय, महाभारत में ऐसा वर्णन नहीं है। उस समय भैंस

और भैंसे निन्द्य माने जाते थे। गोवंश की वृद्धि के कारण गोओं का दूध प्रचुरता से प्राप्त होता था। महाभारत बनपर्व अध्याय १६० में लिखा है—  
दुहन्ताश्चाप्यजैडकं गोषु  
नष्टासु पुरुषाः—अर्थात् कलियुग में गौर्षु नष्ट हो जाने से भेड़ बकरियाँ दुही जायगी। ब्राह्मणों को अजा ( भेड़ ), घोड़ी, गधी, स्त्री और हरिणी के दूध पीने की मनाही की गई है। बासी भोजन और पुराने आटे, गन्ने, शाक, दूध और भुने हुये सत्तू से तैयार किये हुये पदार्थ—यदि अधिक समय तक रखे रहे हो तो उन्हें न खाना चाहिये। ( शन्तिपर्व अध० ३६ )। लहसुन और प्याज़ अखाद्य पदार्थों में बतलाये गये हैं।

महाभारत-काल में भोजन करते समय लोग चुप रहते थे और रसोई की निन्दा भी नहीं करते थे :— ( प्राङ्मुखो नित्यमभ्ययात् वाग्यतोऽन्मकुत्सयन्—महाभारत अनुशासन पर्व )। युधिष्ठिर के अश्वमेधयज्ञ के अवसर पर सहस्रों ब्राह्मणों चित्रियों और वैश्यों ने

सम्राट् इस काम पर विश्वासपात्र और कार्यकुशल व्यक्तियों को नियत करता है। राजभवन के नौकरो का—जोकि योग्यता के गुण से संपन्न है—यह ध्यान रहता है कि जो कार्य उनको सौंपा जाय, उत्तमोत्तम सेवा द्वारा पूर्ण हो। इस समुदाय के अध्यक्ष का सहायक नाज़िमे-कुल (प्रधान-मंत्री) है। सम्राट्

मौनव्रत सेही भोजन किया था। आश्रमवासी पर्व के अनुसार तीन प्रकार के रसोइये भोजन बनाते थे—आरालिका सूपकारा रागखाण्ड-विकास्तया, उपातिष्ठन्त राजानं धृतराष्ट्रं पुरा यथा—अर्थात् राजा धृतराष्ट्र को पहले की ही भांति युधिष्ठिर के यहा भी आरालिक, सूपकार और रागखाण्डविक पकास बना बनाकर परोसते थे। रागखाण्डविक मीठी चीज़ें बनाते थे और सूपकार शाक भाजी, कढ़ी, रायते आदि तैयार करते थे। “आरालिक लोग माम पकाते होंगे।” भक्ष्य पदार्थों के अतिरिक्त पेय पदार्थ अर्थात् खीर और रबड़ी आदि भी बनाये जाते थे। मोदकों का प्रचार था। घी सब चीज़ों में श्रेष्ठ था।

कुछ विद्वानों का मत है कि ऋषि-प्रणीत ग्रन्थों में ऋषियों तथा सत्पुरुषों के सम्बन्ध में मांस भक्षण के पक्ष में जो श्लोक, सूत्र या मन्त्र अथवा व्यवस्थाएँ पाई जाती हैं, वे प्रचलित हैं। जो जिस बात का प्रेमी हैं, उसने अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिए ऋषियों के ग्रन्थों में उन्हीं बातों को बड़ा दिया है। ऐसी ही बातों के लिखने वाले सज्जनों को भोज की “संजीवनी” के अनुसार राज भोज के द्वारा हस्तच्छेदनादि दंड की सज़ा दी गई थी। यह सजीवनी नामक इति-हास ग्वालियर राज्य के अन्तर्गत भिण्ड के तिवाड़ियों के यहा मौजूद था और उसको लखना के राव साहब तथा उनके गुमास्ते रामदयाल चौबे ने अपनी आँखों से देखा था। “उसमें स्पष्ट लिखा है कि ग्यास जी

ने ४४०० और उनके शिष्यों ने ५६०० श्लोक युक्त अर्थात् सब १०,००० श्लोकों का महाभारत बनाया था। वही महाराज विक्रमादित्य के समय में २०,००० और मेरे पिता (भोज के पिता) के समय में २५,००० और मेरी आधी उमर में ३०,००० श्लोकों का महाभारत मिलता है। यदि ऐसे ही बढ़ता चला गया तो महाभारत एक ऊँट का बोझा हो जायगा” (सत्यार्थप्रकाश, स्वामीदयानन्द सरस्वती कृत पृ० ३१५—१६, १६६६ वि०)। श्लोकों के बढ़ाये जाने की बात तो ‘महाभारत मीमांसा’ के लेखक श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य ने भी स्वीकार की है। पर मांस भक्षण वाले श्लोक बड़ा दिये गये हैं यह उनको मंज़ूर नहीं है। (महाभारत मीमांसा पृ० ३, तथा २६०, १६७७ वि०)।

चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन के प्रसंग में, फ्राहियान ने लिखा है —“समस्त देश में कोई किसी जीवधारी की हत्या नहीं करता और न मदिरा पीता, न प्याज़ और लहसुन खाता है। सुअर और मुर्गी भी नहीं पाले जाते हैं। बाज़ार में शराब और माँस की दूकानें नहीं हैं। (The Oxford History of India, by V A Smith, Ed., 1923, P 155)।

हर्ष (६०६—६४७ ई०) के राजत्वकाल में यूआनचांग ने मनुष्यों की शारीरिक शुद्धि को अवलोकन किया था, और लिखा है, “वे स्वतः पवित्र हैं, दबाव से नहीं। हरबार भोजन के पहले वे शरीर धोते हैं।



ने राज्य का कार्य भार इसी बुद्धिमान् व्यक्ति ( प्रधान मंत्री ) पर छोड़ रखा है, और विशेषकर यह श्रेष्ठ कार्य । इन सब बातों के होने पर भी, सम्राट् स्वयं चौकसी करने से नहीं चूकता । पहले वह एक शुद्ध हृदय और परिश्रमी व्यक्ति को मीरबकाबल ( रसोईघर का अध्यक्ष ) बनाता है, जो अपनी देखरेख और दूरदृष्टि से इस विभाग को परिपूर्ण रखता है । फिर उस की सहायता के लिए अनेक सुशील व्यक्ति मनोनीत करता है । उनमें से कुछ को छोटे बकाबल ( रसोइये ) बनाता है, और कुछ सत्प्रकृति मनुष्यों को नगदी और जिस का खजानाची नियुक्त करता है । इसके पश्चात् शुभचिन्तक व्यंजनपारखी नियत करता है और ठीक लिखने वाले बितक्चिया में से एक को मुशरिफ ( हिसाब-किताब लेखक ) बनाता है ।

सब देशों के पाचक ( रसोइये ) सदा नाना प्रकार के व्यंजन बनाते हैं, और हर प्रकार के अन्न, शाक, भाजी, मांस, तेल, मिठाई और भांति भांति के मसाले के भोजन तैयार रहते हैं । प्रति दिन का भोजन इतना बढ़िया बनाया जाता है कि

टुकटाक और बचाबचा भोजन दुबारा नहीं परोसा जाता । . . . मिट्टी और लकड़ी के बर्तन उपयोग के बाद फेंक दिये जाते हैं; किन्तु धातु के पात्र जो सोने, चांदी, ताँबे या लोहे के होते हैं, माफ़ करने के बाद इस्तेमाल किये जाते हैं । लहसुन और प्याज़ बहुत कम खाये जाते हैं, और जो लोग खाते हैं, वे निर्वामित कर दिये जाते हैं । मांस खाने की मनाही थी, किन्तु मृग-मांस और मेघ-मांस अपवाद स्वरूप था । मछली खाने की भी आज्ञा थी, परन्तु साधारण भोजन में दूध, घी, दानादार शकर, मिसरी, रोटी और तेल में भुना या बघारा हुआ अन्न था” ( Harsha by Dr Radhakumud Mookerji, P 174—75 ) ।

उपर्युक्त विवरणों से तीन वालों के भोजन का चित्र किसी अंश में हमारे सम्मुख खिंच जाता है । अकबर भी मांस युक्त और निरामिष—दोनों प्रकार के भोजन करता था । परन्तु वह मांसाहार का प्रशंसक नहीं था, प्रयुक्त समय समय पर उसकी निन्दा ही

करता था ( देखिये आईन २६, और पंचम ग्रंथ में सम्राट् की मनोरंजक उक्ति ) । इस आईन में कहीं भी गोमांस का या गोहत्या का जिक्र नहीं है, जिसमें प्रकट है कि अकबर हिन्दुओं के हार्दिक भावों को खूब पहिचानता था, और उनकी रक्षा करने का उपाय भी करता था ।

आजकल भारतवर्ष में मनुष्यों के आहार की वस्तुएँ विशेषतर गेहूँ, जौ, चावल, मटर, उर्द, अरहर, मूँग, ज्वार और बाजरा आदि हैं । शाकों में सोया, पालक, मूली, आलू, बैंगन, अरुई, सीताफल, लौकी, तुरई, करेला, फूलगोभी, गांठगोभी, कटहल, बन्दगोभी, कुलफ्रा, ज़िमीरुन्द, मसीडे, केला की फली आदि विशेष उल्लेखनीय हैं । मांसाहार कितने ही पुरुष नहीं करते और कितने ही आमिष भोजी हैं । हिन्दू गोमांस नहीं खाते किन्तु गोरी पकड़ें, मुसलमान और ईसाई आदि उसे विशेषरूप से खाते हैं ।

बड़ो बड़ो को उत्तमवो और त्योहारो मे भी वैसा खाना बहुत कम प्राप्त होता है। खासे (सम्राट्) के भोजन की उत्तमता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है।

नौरोज़ के प्रारम्भ मे उपकोषाध्यक्ष एक वर्ष के व्यय का अनुमान-पत्र (बराबुर्द) बनाकर देते और रुपया ले लेते है। रुपय के थैलो के मुंह पर और भंडार के दरवाजे पर मीरबकावल और मुशरिफ की मोहर से मोहर की जाती है। दैनिक व्यय के आधार पर महीने महीने का हिसाब बनाया जाता है। इसी हिसाब के अनुसार तथा उक्त दोनों अधिकारियो की मोहर से हिसाब की फर्द तैयार की जाती है, फिर वह व्यय के खाते मे दर्ज की जाती है। हर फसल के शुरू मे दीवाने-बयूतात और मीरबकावल दरदरिशा में आवश्यकीय सामग्री मंचय करलेते है। प्रायः सुखदाम (चावल) बहराइच से, देवजीग (चावल) खालियर से, जिजिन (चावल) राजोरी और नीमला से, श्री हिमाल फीरांजा से, बतखें, मुरगाबियां और कुछ शाकभाजी कश्मीर से लाते है। सबके नमूने अलहदा रख छोडते है। भेड़, बकरी, बरबरी, मुर्ग और बतख आदि का पालन पोषण बावर्ची करते है। मुर्गों को एक महीने से कम नहीं रखते है। उनकी हलाली शहर और लश्कर के बाहर होती है, इस कार्य के लिए नहर या तालाब का होना जरूरी है। फिर उसे धोकर बोरों मे भरते है और सूफकार (बावर्ची) की माहर होकर वह रसोई घर मे जाता है। वहा उसे दोबारा धोकर देग मे डालते है। पानी गीचनेवाले मशक से पानी लाकर घड़े भरते है और उनका मुंह कपडों से बांध देते है। अनुभवी लोगों की उन पर मोहर होती है। जब पानी थिरा जाता है, तब उसे काम मे लाते है। शाक भाजी खेत में बोते है और ताजी ताजी खर्च करते है। मीरबकावल और मुशरिफ हर खाद्य पदार्थ का मूल्य कृतते है, वही फिर नियम बन जाता है। वे राज-नामचा, आय-व्यय का अनुमान-पत्र, तहवील की कब्ज और नौकरो के मासिक वेतन के चिट्ठे पर, हस्ताक्षर करते है, और इस विभाग की रक्षा करते हैं। दुगाचारी, बेहदा, निकम्मा और अपरिचिन व्यक्ति

१—जितने दिनों तक सूर्य मेषराशि मे रहता है, उतना समय फ़ारसी मे फ़रवर्दीन मास कहलाता है। यह संयोग बहुधा कलहाता है।

चैत्र वैशाख में होता है। यह महीना ३१ दिन का होता है। फ़रवर्दीन का पहला दिन—जिस दिन कि सूर्य मेषराशि मे प्रवेश करता है और जो दिन प्रति वर्ष प्रायः २२ मार्च को पडता है,—नौरोज़ कहलाता है।

२—आईने अकबरी के चतुर्थ-ग्रंथ मे सूबा काबुल के वर्णन में राजोरी और नीमला का उल्लेख हुआ है।

वहां स्थान (नौकरी) नहीं पाता; बिना जमानत के कोई नहीं रखा जाता है। किसी की व्यक्तिगत पहचान वहां काम नहीं देती।

खास (सम्राट्) का भोजन सोने, चांदी, पत्थर और मिट्टी के पात्रों में तैयार होता है। उनमें से कुछ पात्र एक सहकारी बकावल को सौंप देते हैं, और उसके चातुर्य से कार्य संचालित होता है। पकाने और परोसने के समय एक सायबान तान देते हैं और किसी को उधर देखने नहीं देते। रसोइये अपने कपड़े की आस्तीने और दामन चढ़ाते रखते तथा मुंह और नाक बांधे रहते हैं। परोसने के पहले खाने को बावर्ची और बकावल चखते हैं, फिर मीरबकावल चखता है, इसके बाद थालियों में परोसा जाता है। सोने और चांदी के पात्रों (थालियों) को लाल रंग के कपड़े में बांधते हैं; और चीनी और तांबे के बर्तनों को सफेद कपड़ों में। फिर मीरबकावल अपनी मोहर लगाता तथा व्यंजनों के नाम लिख देता है। बावर्चीखाने का मुशरिफ सब बर्तनों को एक कागज पर लिखकर, मीरबकावल की मोहर करा के, अन्दर भेजता है, जिससे वे बदलने नहीं पाते। सब सामान को छोटे बकावल, बावर्ची और दूसरे कर्मचारी ले चलते हैं। चौबदार आदमियों को आसपास आने में रोके रहते हैं। जब उपर्युक्त सामान भीतर भेजते हैं तो उसी समय रकाबदार,<sup>१</sup> तरह तरह की रोटियाँ, चक्का दही, और खवाँच की चीज़ें,—जिनमें कुछ प्याले, अचार, अदरक, नीबू और भाँति भाँति के हरे शाको से भरे रहते हैं—थालियों में चुनकर, मीरबकावल की मोहर कराके खाना करते हैं। राजभवन के कर्मचारी उसको फिर में चख कर दस्तख्तान पर चुन देते हैं। जब कुछ देर होजाती है, सम्राट् जीमने लगता है। भोजन परोसने वाले आज्ञा-पालन के लिए उपस्थित रहते हैं। पहले दरवेशों (फकीरों) का भाग निकाला जाता है। खाने का आरम्भ दूध या दही से होता है। जब सम्राट् भोजन कर चुकता है, तो कृतज्ञता स्वरूप मत्था टेक कर ईश विनय करता है। मीरबकावल आज्ञा पाने के लिए तत्पर रहता है। पूर्वोक्त सूची के अनुसार पात्र वापस लिए जाते हैं। आकस्मिक अवसरों के लिए कुछ अधपका भोजन एहतियात के तौर पर सदा रख छोड़ते हैं।

तांबे के बर्तनों पर महीने में दो बार कलाई कराई जाती है, और शाहजादों तथा अमीरों के पात्रों पर एक बार। टूटे फूटे बर्तन तंबड़ों को दिये जाते हैं, और नए बनवा लिये जाते हैं।

१—सम्राट् को भोजन तथा अचार आदि परोसने वाला।

## आईन २४ ।

## व्यंजनो की सामग्री ।

व्यंजन बहुत से हैं, और उनका हाल वर्णन करना कठिन है । मैं उनमें से कुछ का उल्लेख करता हूँ और दूसरों के लिए पथ प्रदर्शित करता हूँ । सब भोजन, जो पकाये जाते हैं, तीन प्रकार में अधिक नहीं होते, यथा—(१) बेगोश्त (निगमिप) —जिसको प्रचलित भाषा में सूफियाना कहते हैं, (२) गोश्त खाबिरज आदि (जो मांस और चावल आदि को मिलाकर बनाया जाय), (३) गोश्त व अखाज़ेर (मसालेदार मांस) । प्रत्येक के दस भेद लिखता हूँ :—

पहला—१. जर्द-खिरंज—१० सेर चावल, ५ सेर कंद,  $3\frac{1}{2}$  सेर घी, आध आध सेर किशमिश, बादाम और पिस्ताकी गूदी,  $\frac{1}{8}$  सेर नमक,  $\frac{1}{2}$  सेर अदरक,  $1\frac{1}{2}$  दाम केसर,  $2\frac{1}{2}$  मिसकाल दारचीनी । चार मामूली थालियां तैयार होगी । इससे कम मसाला डाल कर भी बनाते हैं, और बिना मसाले का भी तैयार करते हैं । इसे मांसवाला भी बनाते हैं और नमकीन भी ।

२. खुश्का—१० सेर चावल में  $\frac{1}{2}$  सेर नमक डालते हैं । यह कई प्रकार का बनता है । ४ थालियां लबालब भर जाती है । १ मन देवजीरा धान में २५ सेर चावल निकलते हैं । १७ सेर से देग भर जाती है, जिजिन चावल के २२ सेर से ।

३. खिचरी—( खिचड़ी ), चावल, मूंग की दाल और घी पांच पांच सेर, नमक  $\frac{1}{3}$  सेर । ७ थालियां तैयार हागी ।

४. शीर खिरंज—( खीर ) १० सेर दूध ; १ सेर चावल, १ सेर कंद, १ दाम नमक । ५ थालियां लबालब भर जाती हैं ।

५. थूली—१० सेर गेहूँ का दलिया जिसमें से तिहाई निकल जाता है, इसका आधा घी, १० मिसकाल काली मिर्च, ४ मिसकाल दारचीनी,  $3\frac{1}{2}$  मिसकाल लोंग और बड़ी इलायची ;  $\frac{1}{3}$  सेर नमक । कुछ लोग दूध और मीठा भी मिलाते हैं । चार थालियां तैयार होती हैं ।

६. चिल्ली—१० सेर गेहूँ के आटे को खमीर बनाकर खूब धोते हैं, और उसमें से शुद्ध २ सेर निकाल लेते हैं। फिर मसाला मिलाकर अनेक प्रकार से मांस बना लेते हैं। एक एक सेर घी और प्याज; आधा आधा दाम केसर, बड़ी इलायची और लौंग; एक एक दाम दारचीनी, गोल मिर्च और धनियाँ; तीन तीन दाम अदरक और नमक। दो थालियाँ तैयार होती हैं। कुछ लोग नींबू का रस भी डालते हैं।

७. बादिजा—१० सेर चावल,  $1\frac{1}{2}$  सेर घी,  $2\frac{3}{4}$  सेर प्याज,  $\frac{1}{4}$  सेर अदरक और नींबू का रस, पाँच पाँच मिसकाल काली मिर्च और धनियाँ; आधा आधा मिसकाल लौंग, इलायची और हींग। छे थालियाँ बनती हैं।

८. पहित—बेछिलके की मसूर, उरद, चना और मूँग आदि की दाल से बनती है। १० सेर दाल;  $2\frac{1}{2}$  सेर घी, आधा आधा सेर नमक और अदरक; २ मिसकाल जीरा,  $1\frac{1}{2}$  मिसकाल हींग। १५ थालियाँ तैयार होगी। बहुधा खुश्का के साथ खाते हैं।

९. साग—इसे पालक तथा और बहुत से शाको से बनाते हैं। और बहुत से स्वादिष्ट व्यंजनो में से है। सोआ, पालक इत्यादि १० सेर; घी  $1\frac{1}{2}$  सेर; प्याज १ सेर, अदरक  $\frac{1}{2}$  सेर, काली मिर्च  $\frac{1}{2}$  मिसकाल, लौंग और इलायची आधा आधा मिसकाल। ६ थालियाँ बनती हैं।

१०. हलद्दा—मैदा, कंद और घी दस दस सेर। ५ थालियाँ तैयार होती हैं, यह कई प्रकार से खाया जाता है।

इसी प्रकार तरह तरह के मुरब्बे और शरबत हैं, जिनका हाल यहाँ पर बयान नहीं किया जा सकता।

दूसरा—१. क़बूली—१० सेर चावल; ७ सेर मास,  $3\frac{1}{2}$  सेर घी, १ सेर चने की दाल, २ सेर प्याज,  $\frac{1}{2}$  सेर नमक;  $\frac{1}{4}$  सेर अदरक, एक एक दाम दारचीनी, गोल मिर्च और जीरा, आधा आधा दाम इलायची और लौंग। कुछ बादाम और किशमिश भी डालने हैं। पाँच थालियाँ बनती हैं।

२. दुग्द बिरियां—१० सेर चावल;  $3\frac{1}{2}$  सेर घी; १० सेर माँस;  $\frac{1}{2}$  सेर नमक। पाँच थालियाँ तैयार होती हैं।

३ **क्रीमापुलाव**—१० सेर चावल, १० सेर माँस; ४ सेर घी; १ सेर चने की दाल, २ सेर प्याज,  $\frac{१}{२}$  सेर नमक;  $\frac{१}{४}$  सेर अदरक, एक एक दाम काली मिर्च, जीरा, इलायची और लौंग। पाँच थालियाँ तैयार होती है।

४ **शुक्का**—१० सेर माँस,  $३\frac{१}{२}$  सेर चावल, २ सेर घी; १ सेर चना, २ सेर प्याज,  $\frac{१}{२}$  सेर नमक,  $\frac{१}{४}$  सेर अदरक, दो दो दाम लहसुन और काली मिर्च, एक एक दाम दारचीनी, इलायची और लौंग। ६ थालियाँ बनती है।

५ **बुगरा**—१० सेर मांस, ३ सेर मैदा,  $१\frac{१}{२}$  सेर घी, १ सेर चना,  $१\frac{१}{२}$  सेर सिरका, १ सेर कंद, चौथाई चौथाई सेर प्याज, हल्दी, चुकन्दर, शलगम, पालक, सोआ, और सोठि, एक एक दाम केसर, लौंग, इलायची और जीरा, २ दाम दारचीनी, ८ मिमकाल गोल मिर्च। १२ थालियाँ बनेगी।

६ **क्रीमा-शोरबा**—१० सेर मांस, १ सेर चावल, १ सेर घी,  $\frac{१}{२}$  सेर नमक, बाकी चीजे शुल्हे की तरह। १० थालियाँ भर जायगी।

७ **हरीसा**—१० सेर मांस, ५ सेर कुटा हुआ गेहूं, २ सेर घी;  $\frac{१}{२}$  सेर नमक, २ दाम दारचीनी। ५ थालियाँ तैयार होगी।

८ **कश्क**—१० सेर मांस, ५ सेर कुटा हुआ गेहूं, ३ सेर घी; १ सेर चना,  $\frac{१}{४}$  सेर नमक,  $१\frac{१}{२}$  सेर प्याज,  $\frac{१}{२}$  सेर सोठि, एक दाम दारचीनी, दो दो मिमकाल केसर, लौंग, इलायची और जीरा। पाँच थालियाँ ऊपर तक भर जायगी।

९ **हलीम**—मांस, गेहूं, चना, मसाला और केसर कश्क के समान, १ सेर घी, चौथाई चौथाई सेर शलगम, हल्दी, पालक और सोआ। १० थालियाँ बनती है।

१० **कुताब**—हिन्दुस्तानी इसे संबोसा कहते हैं। इसे कई प्रकार से बनाते हैं। १० सेर मांस, ४ सेर मैदा, २ सेर घी, १ सेर प्याज,  $\frac{१}{४}$  सेर अदरक,  $\frac{१}{२}$  सेर नमक, दो दो दाम काली मिर्च और धनियाँ, एक एक दाम इलायची, जीरा और लौंग, चौथाई सेर सुम्माक। २० संबोसे तैयार होते है। चार थाल भर जाते है।

**तीसरा**—१ **खिरयाँ**—पूरी दाशमंदी भेड़ के लिए २ सेर नमक;

१—यह एक फल है जो खट्टा होता है।

१ सेर घी , २ मिसकाल केसर, लौंग, काली मिर्च और जीरा इस्तेमाल करते हैं; और तरह तरह से बनाते हैं ।

२ **यखनी**—१० सेर मांस , १ सेर प्याज ,  $\frac{१}{२}$  सेर नमक ।

३ **योल्मा**—एक भेड़ को पानी में इस कदर उबालते हैं कि सब बाल साफ हो जाते हैं और उसे यखनी आदि की तरह बना लेते हैं । मेमने या बकरी का योल्मा बहुत बढ़िया होता है ।

४ **कबाब**—बहुत तरह का होता है । १० सेर मांस ,  $\frac{१}{२}$  सेर घी , चौथाई चौथाई सेर नमक, अदरक और प्याज , डेढ़ डेढ़ दाम जीरा, धनियाँ, काली मिर्च, इलायची और लौंग ।

५ **मुसम्मन**—गरदन के रास्ते से एक मुर्ग की सब हड्डियाँ निकाल लेते हैं, और उसका शरीर जिन्दा की तरह बना रहता है । आध आध सेर कुटा हुआ मांस और घी , ५ मुर्ग के अंडे ,  $\frac{१}{४}$  सेर प्याज , दस दस मिसकाल धनियाँ और अदरक , ५ मिसकाल नमक , ३ मिसकाल गोल मिर्च ,  $\frac{१}{२}$  मिसकाल केसर । कबाब की तरह पका लेते हैं ।

६ **दुप्याज़ा**—१० सेर मांस मध्यम मोटी बोटी का , २ सेर घी , २ सेर प्याज ,  $\frac{१}{४}$  सेर नमक ;  $\frac{१}{२}$  सेर अदरक , एक एक दाम जीरा , धनियाँ , इलायची और लौंग , २ दाम काली मिर्च । ५ थालियाँ तैयार होती हैं ।

७ **भेड़ का मुतंजना**—१० सेर मध्यम मोटी बोटी का मांस , २ सेर घी ,  $\frac{१}{२}$  सेर चना ,  $\frac{१}{४}$  सेर सोठ , १ दाम जीरा , दो दो दाम गोल मिर्च , लौंग , इलायची , और धनियाँ । ७ थालियाँ लवालब भर जाती हैं । यह मुर्ग और मछली का भी बनाया जाता है ।

८ **दम-पुरुत**—१० सेर मांस , २ सेर घी , १ सेर प्याज , ११ मिसकाल अदरक , १० मिसकाल काली मिर्च , दो दो दाम लौंग और इलायची डाल कर बनाते हैं ।

९ **कलिया**—१० सेर मांस , २ सेर घी , १ सेर प्याज , २ दाम काली मिर्च , एक एक दाम लौंग और इलायची ,  $\frac{१}{२}$  सेर नमक । ७ थालियाँ तैयार होती हैं । कलिया में मांस की बोटी मुतंजना के विरुद्ध ज्यादा छोटी रहती है और शोरबा ज्यादा गाढ़ा होता है । हिन्दुस्तान में इसे बहुत प्रकार में बनाते हैं ।

१० मलगूबा—१० सेर मॉस, १० सेर दही; एक एक सेर घी और प्याज  $\frac{1}{2}$  सेर अदरक, ५ दाम लौंग। १० थालियाँ तैयार होती है।

## आईन २५।

### रोटी ।

यह व्यजनो से पृथक् नहीं है, परन्तु पद-विशेषता के कारण उसका वृत्तान्त अलग लिखा गया है।

रोटी रकाबखाने ( भंडारे ) में तैयार होती है। बुजुर्गे-तनूरी ( बड़ी तन्दूरी रोटी )—१० सेर मैदा, ५ सेर गाय का दूध,  $\frac{1}{2}$  सेर घी; और  $\frac{1}{4}$  सेर नमक से बनती है। इसे छोटी भी बनाते हैं। तुनके-ताबगी ( हल्की, तब पर सेकी जाती है )। एक सेर में १५ तथा इसमें भी अधिक तैयार होती हैं। यह कई प्रकार की बनाई जाती है। इसकी एक किस्म चपाती कहलाती है; जिसे कुछ लोग खुश्के में भी बनाते हैं। जब यह गरम गरम दस्तगखान पर लाई जाती है तो बहुत स्वादिष्ट मालूम होती है।

खासे ( दरबार ) के भोजन के लिए एक मन रोह में आधा मन मैदा निकालते हैं, और २ सेर दलिया और शेष भूसी। यदि मैदा इस दर्ज की नहीं चाहते, तो दलिया और भूसी घटा देते हैं।

## आईन २६।

### संयम - हयकरुथा ।

सम्राट् अपने ज्ञान के कारण मांस में बहुत कम अभिरुचि रखता है, और बहुधा मोतियों से भरी हुई जवान से कहा करता है कि यद्यपि मनुष्य के लिए भैंसि भैंसि के व्यजन विद्यमान हैं तथापि वह अपनी अज्ञानता और निर्दयता से प्राणियों के सत्ताते में मन लगाता है तथा उनकी हत्या करने और खाने से हाथ नहीं खींचता। कोई व्यक्ति पशुओं के न सत्ताते की ख़ूबी पर



अपनी आँखे नहीं खोलता, वरन् अपने को जानवरो की कन्न बनाता है। यदि उसके कंधो पर संसार का बोझ न होता, तो एकदम मांस खाना छोड़ देता, तथापि उसका विचार यह है कि शनैः शनैः उसे नितान्त त्याग दे। कुछ दिनों तक वह अपने समय के लोगो की चाल पर चलता रहा, परन्तु बाद को उसने पहले कुछ शुक्रवारो को मांस खाना बन्द किया, और फिर रविवारो को। किन्तु अब प्रत्येक सौर-मास की प्रतिपदा, रविवार, सूर्य और चन्द्र ग्रहण के दिन, संयमवाले दो दिवसो के बीच का दिन, रजब-मास के सोमवार, हर इलाही महीने के उत्सव का दिन, फरवरदीन का पूरा महीना, और समस्त आबान-मास—जोकि सम्राट् का जन्म-मास है—संयम के दिनों में और बढ़ा दिये गये हैं। आबान-मास के लिए यह निश्चय हुआ था कि सम्राट् की अवस्था के जितने साल हो, उतने दिन वह उक्त महीने में मांस न खाये। परन्तु अब उसकी अवस्था के साल आबान-मास के दिनों से अधिक होगये हैं, इसलिए आबान-महीने के भी कुछ दिनों में उसने व्रत रक्खा। परन्तु इस समय उक्त-मास के सभी दिन सूफियाना (संयमवाले) हो गये हैं। ईश चिन्तन की अधिकता के कारण उनमें प्रति वर्ष वृद्धि होती जाती है, और वह पाँच दिन से कम नहीं होती। जब व्रत के दिन एक साथ पड़ जाते हैं, तो उपवास के दिनों की कमी को पूरा कर लेते हैं, और वे दिन दूसरे महीनो में बाँट देते हैं। जब प्रतिष्ठित संयम-दिवस समाप्त होते हैं, तो आमिष-भोजन पहले मरियम मकानी के घर से आता है, फिर दूसरी बेगमो, शाहजादो और निकटस्थ सम्बन्धियो के यहाँ से।

इस विभाग में अमीर, अहदी और दूसरे सवार सेवा करते हैं। प्याद का वेतन १०० से ४०० दाम तक है।

१—“अकबरनामे” में लिखा है कि सम्राट् ने मांस खाना बिल्कुल इसलिए नहीं छोड़ा कि उसके त्यागने से और भी अनेक व्यक्ति छोड़ दें, जिससे उन लोगों को बहुत कष्ट होता और उनके स्वास्थ्य में अन्तर पड़जाता।

२—अकबर का जन्म रविवार के दिन ५ रजब सन् ९४६ हिजरी को हुआ था।

यह तारीख १५ अक्टूबर सन् १५४२ को पड़ती है। रजब-मास के सोमवारों को इसलिए व्रत रखा जाता था, कि रविवार पहले ही व्रतों की सूची में सम्मिलित हो चुके थे। दीनइलाही-मत के अनुयायी इसी प्रकार अपने अपने जन्म-मासों में व्रत रखते थे।

३—इन महीनों का पूरा हाब तृतीय-ग्रंथ में है।

## आईन २७।

## जिसों के भाव ।

यद्यपि चढ़ाइयो और वर्षा-ऋतु आदि में, जिसों के भाव में बहुत अंतर हो जाता है, तथापि इस तालिका में मैं उनके सामान्य मूल्य का उल्लेख करता हूँ और अन्वेषकों के लिए ज्ञान की सामग्री उपस्थित करता हूँ ।

## रबी की जिसों की तालिका ।

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
गेहूँ	प्रतिमन <sup>१</sup>	१२ दाम	अलमी	प्रतिमन	१० दाम
काबुली चना	"	१६ "	कुसुंभ के बीज	"	८ "
काला चना	"	८ "	मेथी	"	१० "
मसूर	"	१२ "	मटर	"	६ "
जौ	"	८ "	सरसो	"	१२ "
चना	"	६ "	केव	"	७ "

## खरीफ की जिसें ।

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
मुश्की शालि <sup>१</sup>	प्रतिमन	११० दाम	सामजीरा चावल	प्रतिमन	६० दाम
सादा शालि	"	१०० "	शकर चीनी	"	६० "
सुखदास चावल	"	१०० "	देवजीरा	"	६० "
दूनाप्रसाद चावल	"	६० "	जिजिन	"	८० "

१—अकबर का मन ४० सेर का था किन्तु वह तौल में कम था । “जिस समय अकबर ने मन की तौल में परिवर्तन करना चाहा था उसके पहले उत्तर भारत में २८ या २६ पौण्ड अवाइरडुपाइज का मन चलता था । अकबर ने सेर ३० दाम भर का चालू किया । दाम तांबे का मुख्य सिक्का था । अकबर का ४० सेरी मन तौल

में ३,८८,२७६ ग्रेन या 55½ पौण्ड अवाइरडुपाइज था । साधारण कार्यों में वह ६६ पौण्ड माना जाता था” । (India At the Death of Akbar, P 53, 1920) इस हिसाब से अकबरी मन आज कल की तौल के अनुसार लगभग २७ सेर का था ।

२—कस्तूरी के समान सुगन्धित धान ।

[ १२६ ]

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
दका चावल	प्रतिमन	५० दाम	लोबिया	प्रतिमन	१२ दाम
खिरही "	"	४० "	जुआरी	"	१० "
साठो "	"	२० "	लहड़ा <sup>१</sup>	"	८ "
मूंग	"	१८ "	कोदरम	"	७ "
उरद	"	१६ "	कूरी	"	७ "
मोठ	"	१२ "	साँवाँ	"	६ "
सफेद तिल	"	२० "	कंगनी <sup>२</sup>	"	८ "
काले तिल	"	१६ "	चेना	"	८ "

### दाल ।

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
मूंग की दाल	प्रतिमन	१८ दाम	ममूर की दाल	प्रतिमन	१६ दाम
चने की दाल	"	१६ <sup>१</sup> "	मोठ की दाल	"	१२ "

### आटा ।

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
मैदा (गेहूँ की)	प्रतिमन	२२ दाम	चने का आटा	प्रतिमन	२२ दाम
खुरका (गेहूँ का आटा)	"	१५ "	जौ का आटा	"	११ "

### शाक भाजी ।

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
सोआ	प्रतिमन	१० दाम	गोभी (करमकल्ला)	प्रतिसेर	१ दाम
पालक	"	१६ "	कंकड़ू (कश्मीर के	"	४ "
पोदीना	"	४० "	जंगल में होता है)	"	४ "
प्याज	"	६ "	दुंगेतू (अखरोट के फूल)	"	२ "
लहसुन	"	४० "	शकाकुल (जंगली गाजर)	"	३ "
मूली	"	२० <sup>२</sup> "	लहसुन के बीज	प्रतिमन	१ "

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
उपलहाक (कश्मीर में होता है)।	प्रतिमन	१ दाम	कचनार की कली	प्रतिसेर	१ २ दाम
जीतू ( लाल साग)	"	३ "	चूका	"	१ २ "
अदरक	प्रतिसेर	२ १/२ "	बथुआ	"	१ १/४ "
पोंई	"	१ "	रतसका	"	१ "
			चौलाई	"	१ १/४ "

### जीवित पशु पक्षी और मांस ।

नाम	तौल या संख्या	मूल्य	नाम	तौल या संख्या	मूल्य
दाशमंदी भेड	१ नग	६ १/२ रुपया	बतख	१ नग	१ रुपया
अफगानी भेड प्रथम श्रेणी	"	२ "	तुगदगी	"	२० दाम
" द्वितीय श्रेणी	"	१ १/२ "	कुलंग	"	२० "
" तृतीय श्रेणी	"	१ १/४ "	चर्ज	"	१८ "
काश्मीरी भेड	"	१ १/२ "	दुर्गज	"	३ "
हिन्दुस्तानी भेड	"	१ १/२ "	चकोर	"	२० "
बरवरी बकरी प्रथम श्रेणी	"	१ "	बोदना	"	१ "
" बकरी द्वितीय श्रेणी	"	३ ४ रु०	लवा	"	१ "
भेड का मांस	प्रतिमन	६५ दाम	करवानक	"	२० "
बकरे का मांस	"	५४ "	फाग्वता	"	४ "
काज	१ नग	२० "			

### घी, तेल आदि ।

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
घी	१ मन	१०५ दाम	दूध	१ मन	२५ दाम
तेल	"	८० "	दही	"	१८ "

**शक्कर आदि ।**

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
मिसरी	१ सेर	६ दाम	सफेद शक्कर	प्रति मन	१२८ दाम
सफेद कंद	"	५ <sup>१</sup> / <sub>२</sub> "	लाल शक्कर	"	५६ "

**मसाले ।**

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
केसर	१ सेर	४०० दाम	अजवाइन	प्रतिसेर	२ "
लौंग	"	६० "	हल्दी	"	१० "
बड़ी इलायची	"	५२ "	धनियाँ	"	३ "
काली मिर्च	"	१७ "	कलौजी	"	१ <sup>१</sup> / <sub>२</sub> "
लाल मिर्च	प्रतिसेर	१६ दाम	हाग	"	२ "
सोठि	"	४ "	सौफ	"	१ "
अदरक	"	२ <sup>१</sup> / <sub>२</sub> "	दारचीनी	"	४० "
जीरा	"	२ "	नमक	प्रतिमन	१६ "

**खटाइयाँ ।**

नाम	तौल	मूल्य	नाम	तौल	मूल्य
नींबू की खटाई	प्रति सेर	६ दाम	गाजर का अचार	प्रतिसेर	१ <sup>१</sup> / <sub>२</sub> दाम
नींबू का रस	"	५ "	सिरके के नींबू	"	२ "
अगूर का सिरका	"	५ "	नमक के पानी के नींबू	"	१ <sup>१</sup> / <sub>२</sub> "
शक्कर का सिरका	"	१ "	नींबू के रस के नींबू	"	३ "
अश्वत्थगार का अचार	"	८ "	अदरक का अचार	"	२ <sup>१</sup> / <sub>२</sub> "
तेल के आम का अचार	"	२ "	अदरशाख	"	२ <sup>१</sup> / <sub>२</sub> "
मिरके का आम	"	२ "	सिरके का शलगम	"	१ "
तेल के नींबू	"	२ "	बांस का अचार	"	४ "

## A few opinions of eminent scholars.

**Sir Abdur Rahim, Ex Chief Justice, Madras High Court, President, Legislative Assembly**—I have read some of the opinions expressed on the translation of Ain-i-Akbari into Hindi in which Pandit Ramlal Pandey is engaged. It is an undertaking which is bound to prove very useful to students of Indian History, and I trust that learned Pandit is certain to receive encouragement and support

**The Honorable Justice Uma Shanker Bajpai, Additional Puisne Judge, Allahabad High Court.**—Pandit Ramlal Pandey is a Hindi scholar of repute and he has added greatly to that reputation by his translation of Abul Fazl's immortal work, the Ain-i-Akbari. This book is written in highly ornate Persian and any one who attempts at its translation must have a wonderful command over two languages. The learned Pandit is to be warmly congratulated for his work and I am sure his efforts extending over a period of about 8 years will receive recognition at the hands of an appreciative public.

**Dr Bhagwandas, M A, D Litt, M L A, Benares.**—I have been convinced that the translation is accurate and has been done with much literary skill and excellence besides. The translator has enhanced the value of the work by copious bibliography and research. He has set an example for others to follow. I earnestly hope that the growth of really good Hindi literature will be the result of this publication and its wide circulation.

**वीर सेवा मन्दिर  
पुस्तकालय**

Pandit  
I have  
to judge

का नं०  
लेखक

**University—**  
Ain-i-Akbari".  
are competent  
imply superb.

had the  
the on  
render  
esteem  
Akbari  
succeeded  
more on

**University—**I have  
compared with  
have indeed  
command the  
The "Ain-i-  
translation has  
all I once

**University—**  
of The  
ment po

**University, Calcutta**  
in lost sight  
encourage-  
appreciation

**Mr.**  
has inde  
Ain-i-Ak  
like to sa  
Ain-i-Ak

**Lall Pande**  
translating  
ce I would  
language  
nment.

**Acharya Narendra Deo, M.A., Principal, Kashi Vidyapith**—In my opinion the work is of great literary and historical merit. It is not difficult for any one to find out that the writer has bestowed much thought and care over the work and has made conscious efforts to make the Hindi version a faithful translation of the original with due regard to the peculiarities of the Hindi idiom.

---

**Dr. S. K. Banerji, M A , Lt., Ph D , (Lond ) Reader, Lucknow University**—It was with some scepticism that I commenced the review of Pandit Ram La Pandey's Hindi translation of Abdul Fazl's *Ain-i-Akbari* and was agreeably surprised to find it to be a work of a high order and considerable merit. On comparison with the Persian text, Pandity's work can easily be pronounced to be a faithful and accurate rendering of the original. His erudition is seen in every line of the work, his complete mastery of Persian and the rich and lucid style of his Hindi translation. I was particularly pleased at his attempt at thoroughness and clearing the allusions in the text and settling the different readings of the manuscripts. It is the dearth of such scholars that has hindered the progress of research-work on mediaeval India, those that command mastery over several languages. I firmly believe, it is going to be a monumental work in the Hindi historical world and will be hailed by all lovers of Hindi.

---

**Dr. Ishwari Prasad, M A , D Litt , University of Allahabad**—The *Ain-i-Akbari* is a monumental work in Persian written by one of India's greatest literary giants in a style which does not easily lend itself to translation. An attempt to translate such a work in Hindi requires not merely ability and knowledge of Persian but indefatigable labour and inexhaustible patience. I was delighted to come across a learned man in the United Provinces who has had the rare patience to go through the work and critically examine the text. I have no doubt Mr. Pandey's labours in the field of scholarship will receive, at the hands of historians and orientilists, the recognition which they so really deserve. The translation seems to have been prepared with great care and reproduces, in my judgment, the spirit of the original. The copious foot-notes supplied by the translator greatly add to the value of this work. As for me I can only bow before such a heroic labour of love.

---

**Dr. Ram Prasad Tripathi, M.A , D Sc., (London) Depart of History, University of Allahabad**—I was extremely delighted to see the herculean translation of the *Ain-i-Akbari* into Hindi. Pt. Ram Lal Pandey deserves our highest congratulation for not only undertaking the difficult task but also for having accomplished it with extraordinary ability and singular success. He is one of those high souled workers who undertake labour of love for no other object but service of knowledge and literature. His translation of the *Ain-i-Akbari* will add to Hindi literature a precious gem which will enrich the treasure of our vernacular literature as a whole.

---

**Dr. Har Dutt Sharma, M A , Ph D., German University, Prague, S. D. College, Cawnpore, U P.**—Mr. Ramlal Pandey is to be congratulated and he has earned the everlasting gratitude of the scholars of Hindi. Not only this, but the Hindi literature is richer today by this translation. It will instil the spirit of research and awaken the critical faculty of all who read this work. This, of course, would have been impossible for any other person except Mr. Pandey who has a wonderful command over the Persian idiom and who is quite at home in Hindi and English also.

---





## हमारे सुरुचि पूर्ण प्रकाशन

### [ प्राकृत ग्रन्थ ]

महाबन्ध ( महाभारत सिद्धान्त )	१२)
कर लक्षण ( सांख्यिक शास्त्र )	१)

### [ संस्कृत ग्रन्थ ]

मदन पराजय	८)
कक्षउ प्राश्नीय नाडपत्रीय प्रथमूची	१३)
न्यायविनिश्चय विवरण ( प्रथम भाग )	१४)
तत्त्वार्थवृत्ति ( हिन्दीसार महिन )	१६)
सभाष्य रत्नमञ्जूषा	२)
नाममाला सभाष्य	३॥)
वैयनज्ञानप्रश्नचूडामणि	८)

### [ हिन्दी ग्रन्थ ]

मुक्तिदूत ( पाराणिक रोमांस )	६॥)
पथचिन्ह ( स्मृति रेखाएं )	२)
दो हजार वर्ष पुरानी कहानियां	३)
पाश्चात्य तकशास्त्र ( प्रथम भाग )	६)
शेर-ओ-शायरी	८)
आधुनिक जैन कवि	३॥)
जैन शासन	११)
हिन्दी जन साहित्यका संक्षिप्त इतिहास	॥॥)
कुन्दकुन्दाचाय के तीन रत्न	२)

ज्ञानपीठ का उद्देश्य प्राचीन साहित्य का उद्धार तथा नवान लोकोद्देशकारी साहित्य का निर्माण और प्रचार है । पुस्तकों का मूल्य अत्यल्प और कितने ही ग्रंथों का लागत से भी कम रखा जाता है ।

ज्ञानपीठ के ग्रन्थों के प्रचार में निम्न प्रकार सहयोग दिया जा सकता है —

१—दूर रफ़्फा शक्ति भेजकर रफ़्फा ग्राहक स्वयं बनकर और अपने दृष्ट मित्रों का बनाकर ।

२—शास्त्रभण्डारा, सन्दिश और साव-जनिक पुस्तकालया आदि में ग्रन्थ खरीद कर ।

३—तीर्थ, सदिश, गुरुवाओ, व्यागियों और विद्वानों को सामर्थ्यानुसार अपनी और से ग्रन्थ भेंट भिजवाकर ।

४—अपने यहाँ के पुस्तकावकताओं को ज्ञानपीठ के ग्रन्थों की बिक्री के लिये प्रेरणा करके ।

भारतीय ज्ञानपीठ, नूतनकुण्ड, बनारस